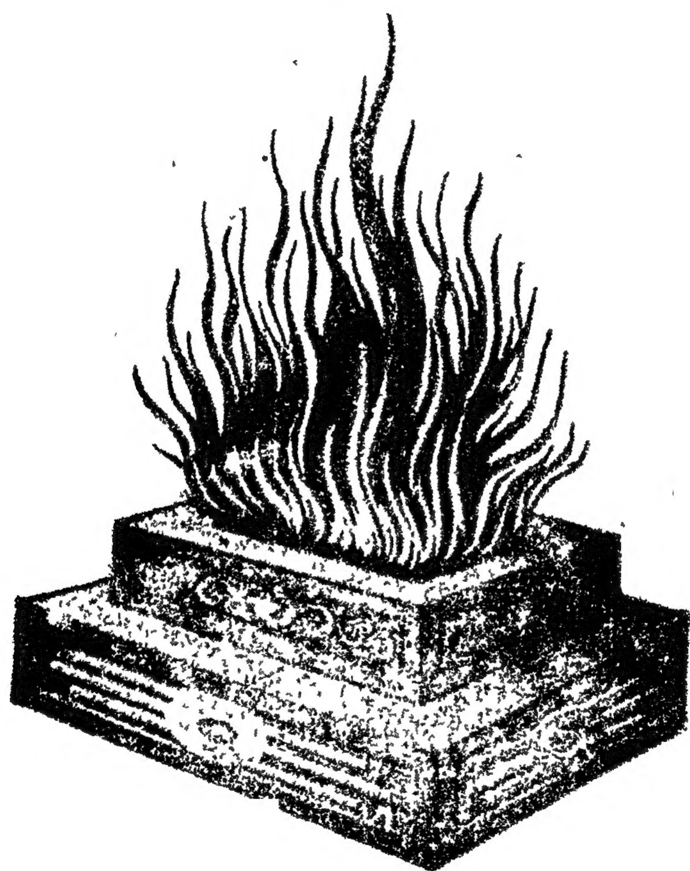
विक्रम सं० २००० समाप्त होने के उपलक्ष में नियोजित

श्री विष्णु-महायज्ञ [रत्नपुर]

स्मारक-ग्रन्थ



" शक्तोपि तस्यै जनतायै कल्पति "



माघ कृष्ण १५ से माघ शुक्ल १० संवत् २००० विक्रम

विक्रम संवत् २००० समाप्त होने के उपलक्ष में नियोजित

श्री विष्णु--महायज्ञ (रत्नपुर)

स्मारक-ग्रन्थ

सम्पादक—श्रीप्यारेलाल गुप्त

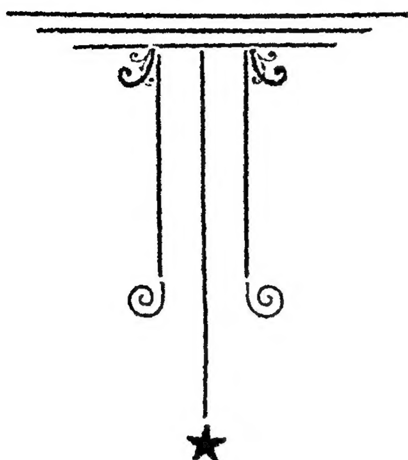


प्रकाशक—
श्रीविष्णु महायज्ञ-समिति,
रत्नपुर, जिला बिलासपुर (म० प्र०)



मुद्रक—
दी सेंट्रल इंडिया प्रिंटिंग वर्क्स,
सीताबर्डी, नागपुर

समर्पण





भगवन् !

तुम्हारी दी हुई यह वस्तु
तुम्हें ही समर्पित है।

प्रस्तावना



छत्तीसगढ़ की प्राचीन राजधानी रत्नपुर के निवासियों ने जब भारत-गौरव-सम्राट महाराजाधिराज श्री विक्रमादित्य के चलाये हुए संवत्सर के दो हज़ार वर्ष समाप्त होने के उपलक्ष में श्री विष्णु महायज्ञ करना निश्चय किया और साथ ही उसके स्मरणार्थ 'श्री विष्णु महायज्ञ-स्मारक-ग्रंथ' प्रकाशित करने की घोषणा श्री यज्ञ-समिति ने की, तब कागज और अच्छे प्रेस का सहयोग प्राप्त करने में इस समय में, जो कठिनाइयां हैं, उनका उसे ज्ञान था पर अनुभव नहीं था। और प्रत्यक्ष अनुभव करने का जब अवसर आया तब तो ऐसा जान-पड़ने लगा कि यज्ञ-समिति की यह घोषणा या तो निरर्थक सिद्ध होगी या उसे कार्य रूपमें, परिणत करने में, युद्ध काल तक ठहरना पड़ेगा। परंतु उन श्री विष्णु भगवान की अनंत कृपा से जिनके अनुग्रह मात्र से विक्रमोत्सव सम्बन्धी सारा कार्य क्रम निर्विघ्न और सानंद सम्पन्न किया जासका, ये कठिनाइयां भी धीरे धीरे दूर हो गईं। टीटागढ़ पेपर मिल्स ने कागज दिया, शिवराज फाइन आर्ट लिथो वर्क्स, नागपुर ने चित्रों के ब्लाक बनाये और सेंट्रल इंडिया प्रिंटिंग वर्क्स, नागपुर ने ग्रंथकी छपाई कर दी। सभी ने अपना अपना काम अच्छा ही किया जिसके लिए हम उनके कृतज्ञ हैं और कृतज्ञ हैं उन लेखक और कवियों के जिन्हों ने हमारी प्रार्थना पर स्मारक-ग्रंथ में प्रकाशित करनेके लिए अपनी अपनी बहुमूल्य रचनाएँ भेज दीं। ग्रंथ का कलेवर बढ़ जाने का डर नहीं रहता तो कुछ और अच्छे तथा उपयोगी रचनाओं का समावेश इस ग्रंथ में होजाता।

विषय विभिन्नता पर ध्यान रखते हुए यह ग्रंथ चार खण्डों मे विभाजित कर दिया गया है—१ विक्रम-खण्ड, २ धर्म्म चर्चा-खण्ड, ३ इतिहास-खण्ड और ४ यज्ञ-खण्ड। चारों खण्ड इसी ग्रंथ में हैं। कोई पाठक यह न समझ लें कि वे अलग अलग जिल्दों में प्रकाशित किये गये हैं। ग्रंथ के अंत में परिशिष्ट भी एक भाग है जिसमें यज्ञ सम्बन्धी सारी आवश्यक सूचनाएँ प्रकाशित कर दी गई हैं जिनसे तत्सम्बन्धी बातों की जानकारी भी होगी और भविष्य के लिए पथ-प्रदर्शन भी होगा।

इस ग्रंथ में प्रकाशित चित्रों के सम्बन्ध भी कुछ निवेदन कर देना आवश्यक जान पड़ता है। ऐतिहासिक और धार्मिक स्थानों के सिवाय उन उदारचेता सज्जनों का भी चित्र इस ग्रंथ में प्रकाशित करना निश्चय किया गया था जिन्होंने दो सौ रुपये या इससे अधिक रकम इस पुनीत कार्य के लिए दिया है। ऐसे सज्जनों में से केवल दो या तीन के चित्र प्रकाशित नहीं हो सके क्यों कि बारंबार प्रार्थना करने पर भी इन्हों ने अपना फोटो भेजने की कृपा नहीं की। ग्रुप-फोटो मे जिन थोड़े से मुख्य कार्यकर्ताओं का फोटो नहीं आसका है उनका चित्र यज्ञ-समिति ने साग्रह इसी ग्रंथ में अलग प्रकाशित किया है।

बहुत सावधानी रखने पर भी प्रूफ की अशुद्धियां रह गई हैं। इनके सुधार के लिए शुद्धि-पत्र लगाना व्यर्थ समझा गया। पाठकगण इन्हें पढ़ते समय सुधार लेने की कृपा करेंगे। भिन्न भाषा भाषी प्रेस, और प्रेस और सम्पादक के बीच में २७५ मील का अंतर, इन अशुद्धियों के लिए जिम्मेदार हैं। हम अपने परम स्नेही श्री पं. प्रयागदत्त शुक्ल, नागपुर के उपकृत हैं जिन्होंने अपनी अस्वस्थता में भी इस सम्बन्ध में तथा दूसरे ढंग से हमें सहायता पहुंचाई। यहां, यह भी उल्लेख कर देना आवश्यक जान पड़ता है कि लेखों और चित्रों के चयन में तथा और कई प्रकार से यज्ञ-समिति के उपमंत्री श्री शंकर प्रसादजी अग्रवाले वकील से बड़ी सहायता मिली है। स्थायी-समिति ने इस ग्रंथ की परीक्षा के लिए १. पं. सदाशिव रामकृष्ण शेंडे, २. पं. कपिलनाथ द्विवेदी और ३ ठाकुर मेहरबानसिंह इन तीन सज्जनों की एक उपसमिति बना दी थी जिसने इसकी परीक्षा प्रेस में देने के पहले करली थी। फिरभी असावधानी के कारण या प्रमादवश कोई भूल या त्रुटि रह गई हो तो उसके लिए इन पंक्तियों का लेखक ही जिम्मेदार है।

मनुष्य के जीवन का बहुतसा भाग नैसर्गिक प्रेरणाओं से भरा रहता है। ये प्रेरणाएं मूलतः परम सत्य, शुभ और कल्याणकारिणी होती हैं। परंतु मनुष्य जब जीवन संग्राम के क्षेत्र में उतरता है तब विजय की लालसा उसे अंधा बना देती है और वह क्षणिक सुख, मिथ्या अभिमान या धन और यश प्राप्ति के लिए आत्मा की पुकार पर दुर्लक्ष देने लगता है; और धीरे धीरे पतन के गहरे गर्त में जा गिरता है चाहे संसार की दृष्टि में वह भले ही ऊंचा चढ़ गया हो। प्रभो! हम आप से इतना ही बल चाहते हैं कि भारी से भारी प्रतिकूल अवस्था में भी हम नैसर्गिक प्रेरणाओं की पुकार को न भूलें और कर्तव्यच्युत न हों तथा बने रहें सदा आपके सेवक—

बिलासपुर,
दीपमालिका, सं. २००१
ता. १६-१०-१९४४

प्यारेलाल गुप्त,
सम्पादक



अनुक्रमाणिका

पृष्ठ संख्या

१ विक्रम-खण्ड

२ धर्म-चर्चा-खण्ड

३ इतिहास-खण्ड

४ यज्ञ-खण्ड

परिशिष्ट



चित्र-सूची



B



विक्रम संवत् २००० समाप्त होने के उपलक्ष में नियोजित

श्री विष्णु-महायज्ञ (रत्नपुर)

स्मारक-ग्रन्थ

प्रभु-स्तवन



(अनुवादक—प्रो० श्री मुंशीराम शर्मा, एम. ए. सोम द्वारा कल्याण में प्रकाशित)

तस्य वयं सुमतौ० यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम।
स सुत्रामा स्ववाँ इन्द्रो अस्मे आराच्चिद् द्वेष: सनुतर्युयोतु॥
ऋक ६।४७।१३, ऋक १०।१३।१७, यजुः ०२०।५२।

वह उत्तम रक्षक जगदीश्वर सतत स्वकीव शक्ति सम्पन्न।
द्वेष भाव को दूर हटादे होकर हम पर परम प्रसन्न॥
उस यजनीय देव की मंगल सुमति हमें हो प्राप्त महान।
उसकी कल्याणी प्रसन्नता करे हमें कल्याण प्रदान॥

(२)

(अनुवादक—(स्वर्गीय) रायदेवीप्रसाद 'पूर्ण' बी. ए., बी. एल.)

आब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम्। आराष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽति व्याधी महारथो जायताम्। दोग्ध्री धेनुर्वोढ़ानड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योसा जिष्णु रथेष्ठाः। सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायताम्। निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु। फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्ताम्। योगक्षेमो नः कल्पताम्॥

यजुर्वेद २२।२२

हे जगदीश दयाल ब्रह्म प्रभु ! सुनिए विनय हमारी ।
हों ब्राम्हण उत्पन्न देशमें धर्म कर्म व्रतधारी ॥
क्षत्रिय हों रणधीर महारथ धनुर्वेद अधिकारी ॥
धेनु दूधवाली हो सुन्दर, वृषभ तुङ्ग बलधारी ॥
हो तुरंग गति चपल, अङ्गना हों स्वरूप गुणवाली ।
विजयी रथी पुत्र जनपदके रत्न तेज बलशाली ॥
जब ही जब जग करे कामना जलधर जल बरसावैं ।
फलें पकें बहु सुखद वनस्पति योग क्षेम सब पावैं ॥

(३)

(अनुवादक-काव्य-विनोद पं लोचन प्रसाद पाण्डेय)

पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती ।
यज्ञं वष्टु धिया वसुः ॥

ऋग्वेद १।१।६।१०

हमारी वाणी हो पावन
सरस्वति का हो आराधन ॥
करें हम नित गुरुजन सेवन
लहें धन, स्वास्थ्य, दीर्घ जीवन ॥
बुद्धि हो हम सबकी शुभतर
तजें हम छल, विरोध, मत्सर ॥
देश को नव बल दें प्रभुवर ।
प्रजा हो ताकि सुखी सत्वर ॥
यत्न हम करें देश हितकर,
सत्य का करें सदा आदर ॥
प्रार्थना है इतनी ईश्वर !
न औरों पर हम हों निर्भर ॥



हे जगदीश दयाल ब्रह्म प्रभु ! सुनिए विनय हमारी ।
हों ब्राम्हण उत्पन्न देशमें धर्म कर्म व्रतधारी ॥
क्षत्रिय हों रणधीर महारथ धनुर्वेद अधिकारी ॥
धेनु दूधवाली हो सुन्दर, वृषभ तुङ्ग बलधारी ॥
हो तुरंग गति चपल, अङ्गना हों स्वरूप गुणवाली ।
विजयी रथी पुत्र जनपद्के रत्न तेज बलशाली ॥
जब ही जब जग करे कामना जलधर जल बरसावें ।
फलें पकें बहु सुखद वनस्पति योग क्षेम सब पावें ॥

(३)

(अनुवादक-काव्य-विनोद पं लोचन प्रसाद पाण्डेय)

पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती ।
यज्ञं वष्टु धिया वसुः ॥

ऋग्वेद १।१।६।१०

हमारी वाणी हो पावन
सरस्वति का हो आराधन ॥
करें हम नित गुरुजन सेवन
लहें धन, स्वास्थ्य, दीर्घ जीवन ॥
बुद्धि हो हम सबकी शुभतर
तजें हम दल, विरोध, मत्सर ॥
देश को नव बल दें प्रभुवर ।
प्रजा हो ताकि सुखी सत्वर ॥
यज्ञ हम करें देश हितकर,
सत्य का करें सदा आदर ॥
प्रार्थना है इतनी ईश्वर !
न औरों पर हम हों निर्भर ॥



विक्रमाभिनन्दन ।



रचयिता—पं. शिवनाथ मिश्र, एम. ए, एल. एल. बी.

बूढ़ा भारत कहता पुकार,
बीते संवत्सर दो हज़ार।
तुम आए बनकर एक स्वप्न। कुछ भूली स्मृतियां उठीं जाग।
भारत के क्षीण कलेवर में लग गया गर्व का अङ्गराग।
विस्मित, देखा आँखें उघार,
"बीते संवत्सर दो हजार।"
अभिनन्दन करतीं झूम झूम कविता की अलकें दो हज़ार।
हैं अभिवादन-हित निर्निमेष सुरपति की पलकें दो हज़ार।
झंकार उठा मन का सितार,
"बीते संवत्सर दो हज़ार।"
देखीं फणीन्द्र ने जब यश के पङ्कज की पाँखें दो हज़ार,
अभिशाप वधिरता का भूले, खोलीं जब आँखें दो हज़ार।
कह उठे धरा का लिये भार,
"बीते संवत्सर दो हज़ार।"
पर, नहीं जानते शक्र-शेष, अवनी का अंचल हुआ लाल।
दो-दो हज़ार नर-रत्नों का हर घड़ी लिये आ रहा काल।
कह रही रक्त की तप्त धार,
"बीते संवत्सर दो हज़ार।"
उस कालिदास के मेघदूत को बैठी है दुनिया विसार।
छाते नभ में बन कालदूत अब वायुयान दो-दो हज़ार।
करते हैं पावक के प्रहार,
"बीते संवत्सर दो हज़ार।"
उस शस्य-श्यामला बङ्गभूमि में बीर! छा रहा है विषाद।
सुनते जाओ कर कठिन वक्ष, शिशु-अवलाओं का आर्तनाद।
कहती है भूखों की कतार,
"बीते संवत्सर दो हज़ार।"
विक्रम! क्या यही दिखाने को विधि ने यह चक्र चलाया है?
"तुम को खोकर इस जगती ने कैसा नरवीर गवाँया है।"
हम भी कुछ लें मन में विचार,
"बीते संवत्सर दो हज़ार।"
हे वीर! छोड़ तुम दूर देश आगए आज इतने समीप,
विक्रमादित्य के स्वागत को जब नहीं गेह में एक दीप।
अर्पित है कवि का अश्रुहार,
"बीते संवत्सर दो हज़ार।"

विक्रमादित्य का संदेश।



(लेखकः—माननीय जस्टिस डब्ल्यू० आर० पुराणिक बी. ए., एल एल. बी.,
व्हाइस चांसलर, नागपुर-विश्वविद्यालय)

उस समय को व्यतीत हुए दो हज़ार वर्ष हो गये जब महाराज विक्रमादित्य ने शकों को पराजित कर भारत के इतिहास में एक ऐसी महत्वपूर्ण घटना ला दी जो स्वर्णाक्षरों में लेखबद्ध करने योग्य है और उसी महत्वपूर्ण घटना को चिरस्थायी करने के लिये ही उन्होंने अपने नाम पर संवत्सर चलाया। भारत के कोने कोने में आज-इस संवत्सर के कारण उनका नाम प्रख्यात है और जब कभी हमारे धार्मिक या अन्य कृत्यों में इस शुभ और पवित्र विक्रम संवत् का उपयोग होता है तब उस विक्रम शब्द को सुनते ही हमें उस प्रबल प्रतापी, पराक्रमी और शौर्यवान महाराजा विक्रमादित्य का स्मरण हो आता है जिसने शकों के अत्याचार से पीड़ित प्रजा को मुक्त कर सुख, समृद्धि और शांति का साम्राज्य स्थापित किया था।

महाराज विक्रमादित्य के सम्बन्ध में अनेक कहानियाँ प्रचलित हैं। भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों में इनकी आयु, जन्मस्थान, वंश, राजविस्तार, राज्यकाल आदि के सम्बन्ध में भिन्न भिन्न मत हैं। और सच पूछिये तो इस महान् व्यक्ति के सम्बन्ध में उपर्युक्त बातों का ज्ञान प्राप्त करने के लिये इतनी कम सामग्रियाँ उपलब्ध हैं जिनसे इनकी जीवनी पर पूरा प्रकाश नहीं पड़ता। कुछ परस्पर-विरोधी भी हैं। कुछ बातें तो ऐसी मालूम हुई हैं जिनसे यह प्रकट होता है कि 'विक्रमादित्य' केवल उपाधि मात्र है जिसे राजा अपने किसी पराक्रम-पूर्ण कार्य या राज्यविस्तार करने के उपलक्ष में प्रजा की अनुमति से धारण करता था। इसीलिये विक्रम संवत् के चालक विक्रमादित्य के सम्बन्ध में अत्यंत प्रमाणिकता के साथ कुछ कहना कठिन हो जाता है। दो हजार विक्रम संवत् समाप्त हो जाने के उपलक्ष में अनेक स्थानों पर जो महोत्सव हो रहे हैं उनसे ऐतिहासिकों और अन्वेषकों को इस सम्बन्ध में अपने अपने विचार प्रकट करने का अच्छा सुअवसर मिल गया है।

उपलब्ध ऐतिहासिक सामग्री की सावधानी के साथ छान-बीन करने पर इस परिणाम पर पहुँचना पड़ता है कि विक्रम संवत् के चालक विक्रमादित्य गंधर्व-कुल के स्थापक गंधर्वसेन के पुत्र थे। इनकी राजधानी अवन्ती या उज्जैन थी; जहाँ इन्होंने वेध-शाला की स्थापना की थी-जिससे यह पता लगता

है कि ये अत्यन्त विद्याव्यसनी और नाना प्रकार के शास्त्रों में पारङ्गत थे। इनके भिन्न भिन्न सद्गुणों के सम्बन्ध में अनेक कहानियां प्रचलित हैं जिनसे स्पष्ट है कि ये बड़े शूर वीर, पराक्रमी, न्यायप्रिय, दानी उदार, गुणग्राहक, प्रजापालक और विद्वान थे। यह निस्संदेह कहा जा सकता है कि पिछले काल में भारतवर्ष जिन सम्राटों के द्वारा शासित हुआ था-उनमें महाराजा विक्रमादित्य का बहुत काफी ऊँचा स्थान है और इनका नाम लेते ही आज भी प्रत्येक भारतवासी का मस्तक इनके प्रति श्रद्धा और आदर से झुक जाता है। इनकी महानता का प्रबल प्रमाण यह है कि इन्होंने दो सहस्र वर्ष पूर्व जिस संवत का प्रचलन किया था-उसका उपयोग आज भी प्रत्येक व्यवहारिक बातों में यथा स्थान किया जाता है। इनके सद्गुण, इनकी महानता और इनके पराक्रम के कारण ही ये भारतीय कहानियों में असाधारण शक्तियों के आधार माने गये हैं।

यहाँ पर मैं विक्रमादित्य के संबंध में प्रचलित असंख्य कहानियों के विषय में कुछ लिखना नहीं चाहता। पर यह निस्संदेह कहा जा सकता है कि जो कुछ बातें उनके संबंध में ज्ञात हुई हैं उनपर विचार करने से यह स्पष्ट सिद्ध है कि वे एक सामान्य राजा नहीं थे प्रत्युत एक माहन् सम्राट थे-जिनकी ऐतिहासिकता पर कोई प्रश्न नहीं उठ सकता। प्राचीन भारत में अनेक आदर्श राजा हो गये हैं और इस बात में कोई संदेह नहीं कि २००० वर्ष पहिले महाराज विक्रमादित्य ने एक आदर्श राजा की भाँति भारतवर्ष के एक बड़े भाग पर राज्य-शासन किया था। भारतवासियों को विक्रमादित्य के सदृश आदर्श राजाओं पर अभिमान है जिनके राजत्वकाल में सुख, शांति और समृद्धि चहुँ ओर दिखाई देती थी; और सबके साथ समान रूप से न्याय किया जाता था। 'विक्रमादित्य' यह शब्द ही पूर्ण-विजय का द्योतक है।

विक्रमादित्य से हमें यही संदेश मिलता है कि यदि भारतवासी देश में शांति और समृद्धि स्थापन करना चाहते हैं तो उन्हें उच्च आदर्शों को सम्मान देकर अपना कर्तव्य पालन बड़ी योग्यता और सजीवता के साथ करना चाहिये। भारत का गौरववान प्राचीन इतिहास ही उनका पथ-प्रदर्शक है तथा विक्रमादित्य के सदृश महान् पुरुषों की जीवनी ही से उन्हें उत्साह, साहस और स्फूर्ति की प्राप्ति होगी और साथ ही भविष्य के सम्बन्ध में उनके हृदयों में विश्वास उत्पन्न होगा। विक्रमादित्य तथा उनके चलाये हुए संवत्सर की महानता इन्हीं बातों में निहित है।

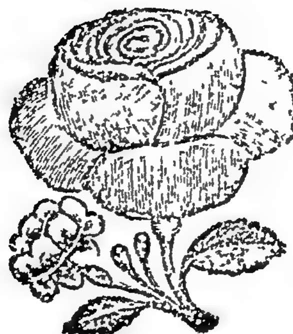
विक्रम-श्रद्धांजलि



(रचयिता:- श्री घनश्यामप्रसाद 'श्याम')

दो हज़ार वर्षों की सुस्मृति का शुभ दिन आया है।
भारत वसुधा के कण कण में, नव जीवन छाया है॥
तृण पल्लव द्रुम ललित-लतायें, अपना रूप संवारें।
विहँस विहँस कर बाँध रहीं हैं, स्वागत वंदन-वारें॥
जनपद में नंदन कानन में, नव-उल्लास समाया।
लता कुंज में वन विहंग ने, नव जीवन सरसाया॥
इतिहासों की अमर लेखनी के फिर शब्द तुले हैं।
भारत की गौरव गाथा के, स्वर्णिम पृष्ठ खुले हैं॥
धारा नगरी के कुंजों में, मधु पराग बिखरा है।
आज भारती का गुण गौरव, द्विगुणित हो निखरा है।
विक्रम की प्यारी अवन्तिका, आज पुनः मुस्काई।
आज सिन्धिया के गौरव की, कीर्ति ध्वजा फहराई॥
मानव की मर्यादा जागी, भाव सरस निखरे हैं।
नव रत्नों की अमर माल के मोती से बिखरे हैं॥
विक्रम का सन्देश जगा है, नव उमंग आई हैं।
मानव जीवन की विशालता का परिचय लाई हैं॥
विक्रम, क्या थे ? उन्नत मानव गीत पवन गाता है।
विक्रम, क्या थे? उन्नत-शासक, जग को बतलाता है॥
विक्रम, क्या ? थेदेव पुजारी मन्दिर से ध्वनि आती।
विक्रम, क्या थे? महाप्राण थे, प्रति ध्वनि कह कह जाती॥
राजा और प्रजा का नाता विक्रम ने बतलाया।
राजतंत्र में प्रजातंत्र का प्रिय सिद्धान्त सिखाया॥
गूँज रहे थे, वेद मंत्र इस वसुधा के कण कण में।
भारत भाग्य विधाता जग का, था उन्नत जीवन में॥
नदियाँ दूध दही की बहतीं, दिव्य प्रभा भरिता थीं।
भारत में सर्वत्र शान्ति थी, सौख्य सुधा सरिता थीं॥
किन्तु देश में डंके बजते, आज दैन्य दुर्गत के।

भीख मांगते से फिरते हैं अमररत्न भारत के ॥
कवि अनुरागी, त्यागी राजा, पड़ते नहीं दिखाई ।
भारत के विशाल वैभव पर, घोर कालिमा छाई ॥
बन्धन में जकड़ा है जीवन दस्यु दाँव डाले हैं ।
रक्षक नहीं किसी का कोई प्राणों के लाले हैं ॥
युग युग के बीते वैभव के कैसे पन्ने चीरें ।
रोतीं हैं जब फूट फूट कर, मन्दिर की प्राचीरें ॥
दुर्दिन के दिन को गिनतीं हैं, ये टूटी दीवारें ।
ढूंढ़ रहीं हैं राजमुकुट को, टूटी हुई कगारें ॥
आज जगी इनकी अभिलाषा, बन अनुराग उठी है ।
दो हज़ार वर्षों की सुस्मृति घर घर जाग उठी है ॥
ज्योतिष शास्त्र तथा वैद्यक के अनुपम भाग्य विधाता ।
विश्व वराहमिहिर धन्वन्तरि ऋषि के आश्रय दाता ॥
गुणग्राही विद्या के पूजक, कालिदास अनुरागी ।
खोज रहीं भारत की आँखें, ओ विक्रम ! बड़भागी ॥
सिप्रा की वह दुग्ध धार भी, मन में आशा धारे ।
प्रेम अश्रुओं की 'धारा' से, तेरे चरण पखारे ॥
विक्रम ! इस जीवन के क्रम में, श्रद्धाँजलि स्वीकृत हो ।
आज तुम्हारे पुण्य पर्व से नव जीवन निर्मित हो ॥



विक्रमादित्य और विक्रम संवत्।



(लेखकः-प्रो० हीरालालजी जैन एम. ए; किंग एडवर्ड कालेज, अमरावती)

भारतीय संस्कृति में जो स्थान विक्रमादित्य को प्राप्त है वह शायद ही किसी दूसरे महापुरुष को नसीब हुआ हो। शताब्दियों से यह नाम भारतवर्ष के घर घर में गूँज रहा है। गरीब और अमीर सभी इस नाम से परिचित हैं। कवि गण उन पर कविता करते हैं, विद्याप्रेमी उनके गुणगान का स्वाद लेते हैं और वीर पुरुष उनके नाम से पराक्रम का आवाहन करते हैं। जन साधारण में भी जब चार जने मिलकर बैठते हैं तो 'राजा वीर विकरमाजीत' के किस्से कहानी सुनते सुनाते हैं। और व्यापारी वर्ग के लोग जिन्हें अवकाश का सदा अभाव रहता है और जो अपने प्रतिक्षण का मोल रुपया आना पाई से करते हैं इनका नाम नित्य प्रति खाता वही में मिति तिथि का उल्लेख करते समय करते हैं। इनकी चिट्ठी पत्रियों में भी हिन्दू तिथियों के साथ साथ विक्रम संवत को ही मान दिया जाता है।

संस्कृत साहित्य में 'वेताल पञ्चविंशतिका' और 'सिंहासन द्वात्रिंशिका' नामक कथा ग्रंथ सुप्रसिद्ध हैं। इनके द्वारा विक्रमादित्य ने अनेक शताब्दियों तक बालकों की बुद्धि का विकास और बड़े-बूढ़ों का मनोरंजन किया था। यही कार्य वे अभी भी हिन्दी की 'वैताल पच्चीसी' और 'सिंहासन बत्तीसी' के द्वारा कर रहे हैं। शूरवीरता, दानशीलता, राजनीतिज्ञता, विद्वत्ता और कला कौशल के आदर्शों द्वारा विक्रमादित्य इस देश की अमरनिधि हैं। पर इतना होते हुए भी उनके विषय की एक बात ध्यान देने योग्य है। कहा जाता है कि विक्रमादित्य का संबंध एक वैताल से था और उन्हें परकाय प्रवेश विद्या सिद्ध थी। इस विद्या के बल से वे अपना रूप बदल सकते थे और दूसरे के शरीर में अपनी आत्मा का प्रवेश कराकर संसार को नाना रूप दिखा सकते थे। कहा नहीं जा सकता कि वे अपने जीवन में ऐसा कर सके थे या नहीं। किन्तु यह बात बिलकुल सत्य है कि अपने मरने के पश्चात गत दो हजार वर्षों से वे हमें अपनी वह अद्भुत लीला दिखा रहे हैं जिसके फल स्वरूप आज के गरुड़ दृष्टि ऐतिहासिक भी यह नहीं पहचान सकते कि यह विक्रमादित्य आखिर है कौन व्यक्ति। जहाँ कवियों को वे प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं वहाँ ऐतिहासिकों को वे ढूँढ़े भी नहीं मिलते। और ऐतिहासिक यदि किसी व्यक्ति को उस नाम से पकड़ पाता है तो देखता है कि वह उन घटनाओं का जिम्मेदार है ही नहीं जिन्हें लोग विक्रमादित्य कृत कहते हैं। इतिहासने ऐसे पाँच सात-राजाओं को अपनी हिरासत में ले रक्खा है जो

विक्रमादित्य कहलाते थे। पर अपने सच्चे आसामी का उन्हें अभी तक पता नहीं चल पाया। कोई कहता है-हमने विक्रमादित्य को कविसम्राट् कालिदास के साथ देखा है, तो कोई कहता है कि वे आयुर्वेदनिधान धन्वन्तरि के साथ थे। किसी ने उन्हें वररुचि और अमरसिंह के साथ शब्दार्थ करते देखा, तो किसी दूसरे ने उन्हें वराहमिहिर के साथ तारामंडल का विहार करते पाया। विक्रम की सभा के ये नौ रत्न माने जाते हैं-धन्वंतरि, क्षपणक, अमरसिंह, शंकु, वेतालभट्ट, घटकर्पर, कालिदास, वराह मिहिर और वररुचि। पर जब अन्वेषक इनसे अलग अलग जिरह करता और पूछता है तो वे शपथपूर्वक साफ इन्कार करते हैं कि हम विक्रमादित्य नाम के व्यक्ति को जानते भी नहीं, उसकी सोहबत करना तो दूर की बात है। इस प्रकार विक्रमादित्य आज भी अपढ़ और अनजानों का ही मनोरंजन नहीं कर रहे हैं, किन्तु अच्छे अच्छे पढ़े लिखे विद्वानों, अन्वेषकों और समालोचकों के साथ भी वे 'लुकचुकौआ' 'भूलभुलैया', 'हत्थाछुट्टी', और 'आँखमिचोनी' के खेल खेल रहे हैं। उनकी यह लीला किसी एक क्षेत्र में नहीं प्रत्युत उनके नाम से संबंध रखने वाली सभी बातों में दिखाई दे रही है। हम यहाँ केवल उनके नाम से प्रचलित विक्रम संवत् के संबंध में ही विचार करेंगे।

विक्रम संवत् के नाम से सभी लोग परिचित हैं। इस देश में अत्यन्त प्राचीन काल से बड़े बड़े महापुरुष हुए-धर्मसंस्थापक, राष्ट्रनिर्मापक, समाजसुधारक इत्यादि, इत्यादि। इनमें से अनेकों के नाम से या उनकी घटनाओं पर से कालनिर्णय के लिये संवत् भी चले। महाभारत काल से कलियुग संवत् भी चला। जैन तीर्थंकर महावीर के निर्वाण से और बुद्ध भगवान् के निर्वाण से अलग अलग संवत् चले। मौर्यसंवत्, गुप्त संवत्, कलचुरि संवत् और अन्य अनेकानेक संवत् विक्रम के पहले और पश्चात् चले। पर आज ऐसे कितने व्यक्ति हैं जो उनका नाम भी जानते हों? और यदि कुछ लोग कुछ का नाम जानते भी हों तो उनमें से कब, किस संवत् का, कहाँ उपयोग करते हैं? भारत के इतिहास में अमरत्व प्राप्त करना एक विक्रम संवत् के ही भाग्य में लिखा था। अन्य संवत् दूसरी घटनाओं के कालनिर्णय में तो सहायक क्या होंगे स्वयं उनके जन्म कालादि के निर्णय के लिये यही विक्रम संवत् का मापदंड लगाना पड़ता है। दूसरा संवत् जो विक्रम के जोड़ का कहा जा सकता है वह है उससे १३५ वर्ष पीछे प्रचलित हुआ-शक संवत्। पर इस संवत् का प्रचार अधिकतर केवल दक्षिण भारत में ही हुआ है, उत्तर भारत में नहीं। सिवाय इसके मानो विक्रम की उसी परकाय प्रवेशविद्या के बल से उनका नाम उस शक संवत् में भी जा घुसा है जिससे शक संवत् का उल्लेख भी विक्रमांकशकराज,[1] विक्रमार्क शकाब्दीय[2] तथा विक्रमरायकिए सुसगणा में,[3] आदि रूप से पाया जाता है। इस प्रकार इस

---

१ त्रिलोकसार गाथा ८५० की टीका। २ अकलंक चरित ३ धवला टीका की प्रशस्ति का [देखो षट्खंडागम भाग १ भूमिका पृष्ठ ४० आदि]

संवत् के आगे अभी तक कोई दूसरा संवत् अपनी हस्ती कायम नहीं कर सका है। या तो विक्रम ने उन्हें सर्वथा ही मार भगाया, या उन्हें अपने में हजम कर लिया।

आज विक्रम संवत् का दो हजारवाँ वर्ष चल रहा है। किसी से भी पूछ लीजिये-यह संवत् किसने चलाया था? उत्तर मिलेगा-भारत सम्राट् विक्रमादित्य ने। सुखी रहेंगे वे ही जो इतने में सन्तोष मान लेंगे। पर यदि इस उत्तर से सन्तुष्ट न होकर ऐतिहासिक कुछ नुकताचीनी करने लगेंगे तो विक्रम भी उन्हें अपनी बहुरूपिणी विद्या के खेल दिखाने लगेंगे। चलिये पाठक, हम सब भी इतिहास प्रेमियों के कौतुक से उत्पन्न विक्रम के कुछ अनोखे खेल देखलें।

ऐतिहासिक पूछता है—विक्रमादित्य कहां पर हुए? उत्तर मिलता है—उज्जयिनी में। चलो भाई दो हजार वर्ष पूर्व की उज्जयिनी में चलकर खोज करें। पर वहां तो उस नाम से कोई हूँ इकार भी नहीं करता। उज्जयिनी का कोना कोना ढूँढ़ लिया पर विक्रमादित्य का कोई पता नहीं। अच्छा चलो आस पास पता लगावें। पर पूर्व दिशा में जाते हैं तो लोग कहते हैं पश्चिम में ढूँढ़ो। पश्चिम की ओर गये तो कहते हैं पूर्वकी ओरही जाओ। दक्षिण की ओर पता लगाया तो सलाह मिली कि उत्तर में शायद मिल जाँय और उत्तर में पूछताछ करते हैं तो उत्तर मिलता है कि वे दक्षिण में ही मिलेंगे। बहुत खोजने पर एक वृद्ध जैन गुरु मिल जाते हैं जो हमारी परेशानी पर तरस खाकर हमारी सहायता करते हैं और कुछ पते की बात बताते हैं। वे कहते हैं-"हमारे गुरु के गुरु के गुरु के गुरु कालकसूरि थे। उनकी, उज्जयिनी के राजा गर्दभिल्ल से मुठभेड़ हुई थी। राजा ने उनके साथ एक बड़ा अत्याचार किया जिसके प्रतिरोध के लिये उन्होंने एक शकवंशीय राजा को उभाड़ा और उज्जयिनी पर आक्रमण करा कर गर्दभिल्ल के दुराचार का सदा के लिये अन्त कर दिया ❀। ऐतिहासिक पूछता है-तो इससे हमें विक्रमादित्य का क्या पता चला? गुरुजी कहते हैं-अरे भाई, लोग कहते हैं कि उसी गर्दभिल्ल का पुत्र तो विक्रमादित्य था जिसने पीछे शकों को मार भगाया और उज्जयिनी में धर्मराज्य कायम किया। हम उनसे पूछते हैं-गुरुजी, यह गर्दभिल्ल कौन था*? और विक्रमादित्य ने क्या शकों को जीत कर उसीके स्मरणार्थ यह विक्रम संवत् चलाया था। गुरुजी उत्तर देते हैं-हो सकता है. पर हम साधुओं को कौन, कौन था और कौन नहीं, इन सब झगड़ों से क्या मतलब? ये सब प्रश्न तुम किसी और से पूछो। देखा पाठक,

---

❀ यह वृत्तान्त कालकाचार्य कथानक में पाया जाता है जिसे ऐतिहासिक तथ्य पूर्ण मानते हैं।

* डा. सेठ ने अपने एक लेख Kharavela and Gardhabhilla में यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि कलिंग के राजा खारवेल ही गर्दभिल्ल थे और विक्रमादित्य संभवत उन्हीं के पुत्र थे (देखो नागपुर युनीवर्सिटी जर्नल संख्या ८)

इतना सिर तोड़ परिश्रम करने पर भी ऐतिहासिक को विक्रमादित्य का कितना पता चल पाया।

अच्छा मान भी लिया जाय कि विक्रमादित्य उज्जयिनी के राजा थे। तो उन्होंने फिर किस घटना पर से संवत् चलाया? वही अपनी शकों के ऊपर विजय पर से न? जान तो यही पड़ता है, फिर भी कुछ पूछताछ कर लेना अच्छा होगा। पर कोई कुछ वतलाता भी तो नहीं है। यदि कुछ सहानुभूति दिखाते हैं तो ये ही दयालु जैन साधु। अच्छा, उन्हीं से इस विषय में पूछा जाय? पर यह क्या, उनमें भी इतना मतभेद? एक कहता है-विक्रम के जन्म दिवस की यादगार में विक्रम संवत् चलाया गया। दूसरे कहते हैं—नहीं नहीं, विक्रम ने अपने राज्यारूढ़ होने के समय से संवत् चलाया। तीसरे दल का कहना है कि नहीं, उनके मृत्यु-काल से यह संवत् प्रारंभ होता है×। ऐतिहासिक फिर चक्कर में पड़ गये। जन्म, मरण और राज्यप्राप्ति इनमें कौनसा अवसर संवत् चलाने के लिये अधिक उपयुक्त कहा जा सकता है? हाँ याद आया। महावीर और बुद्ध के संवत् उनके मृत्युकाल से ही तो चालू हुए थे, अतएव विक्रम की मृत्यु से ही विक्रम संवत् का प्रारम्भ मानना ठीक होगा। पर अरे, वे तो धर्म संस्थापक थे। विक्रम के पश्चात् कलचुरि, गुप्त आदि राजाओं ने तो अपने राज्यारूढ़ होने के काल से संवत् चलाया था। तब कदाचित् यही ठीक हो। पाठक हम, कहाँ तक ऐतिहासिकों की इस उधेड़ बुन में पड़े रहें। चलो उन्हें धक्का देकर आगे बढ़ावें। ऐतिहासिकजी, यह गुनावीधी और सिर खुजला खुजला कर एकार्थ निर्णय आप घर में बैठकर फुरसत से करते रहिये, पर अभी तो कृपा कर आगे कदम बढ़ाइये।

अच्छा मान लो कि विक्रम संवत् चल पड़ा। तो यह किस मास से आरंभ होता है? यह बात तो ज्योतिषी बता सकते हैं या बता सकते हैं व्यापारी जो अपनी खाता-बही प्रति वर्ष बदलते और नये संवत् का प्रारंभ करते हैं। पर यहाँ भी हमें दो दल मिलते हैं। कुछ ज्योतिषी और व्यापारी चैत्र से विक्रम संवत् का प्रारम्भ मानते हैं, तो कुछ कार्तिक से उसका प्रारम्भ स्वीकार करते हैं। कहिये ऐतिहासिक महोदय, अब क्या निर्णय करते हैं आप? अच्छा चैत्र या कार्तिक किसी भी मास से प्रारंभ हुआ, पर मासारंभ किस पक्ष से माना जाय और उसका अंत किस पक्ष में होता है? लीजिए, यहाँ भी दो मत मौजूद हैं। एक कहता है—महीना वदि १ से प्रारम्भ होकर सुदी १५ को पूरा होता

× प्रथम मत दिगम्बरों की नन्दीसंघ की प्राकृत पट्टावली में, दूसरा मत अनेक श्वेताम्बर पट्टावलियों में और तीसरा मत अमितगति के सुभाषित रत्नसंदोह, देवसेन के दर्शनसार, वामदेव के भावसंग्रह तथा रत्ननन्दी के भद्रबाहुचरित में पाया जाता है। इनके अवतरण मैं अपने एक लेख Date of Mahavira's Nirvana (नाग. युनी. जर्नल व्हा. ६) में दे चुका हूं।

चाहिए। तो दूसरा कहता है, नहीं यह ठीक नहीं है, वह सुदी एक से प्रारंभ होकर अमावस्या के दिन पूरा होता है, तभी तो अमावस्या के दिन पञ्चांग में ३० लिखा जाता है। तो अब प्रश्न यह उठता है कि विक्रम संवत् का मास पूर्णिमांत होता है कि अमान्त ?

अच्छा, संवत् का आरंभ कार्तिक से हो या चैत्र से, महीना पूर्णिमान्त हो या अमान्त; पर यह तो पता चले कि जो संवत् लिखा जाता है वह उतने वर्ष पूर्ण हो जाने का सूचक है या उसके आरंभ होने का ? लीजिए, इस विषय में भी भिन्न भिन्न मत हैं। एक झमेला और है, यह संवत् सदैव विक्रम संवत् ही कहलाता रहा है कि और कुछ ? पता चलता है कि हजार डेढ़ हज़ार वर्षों से तो अवश्य किसी न किसी रूप में विक्रम का नाम इस संवत् के साथ जुड़ा हुआ है। किन्तु उससे पूर्व यह मालव संवत् कहलाता था। कहीं कहीं यह कृत संवत् भी कहा गया है। मालव और कृत का उल्लेख तो साथ साथ मिलता है, पर वहाँ विक्रम का उल्लेख नहीं मिलता। तौ भी इसमें तो सन्देह नहीं है कि वह विक्रम संवत् ही है जिसका आरम्भ ईस्वी से ५७ वर्ष पूर्व हुआ था।

चलिए ऐतिहासिकजी, अब तो आप थक गये होंगे। जितनी उल्टी सीधी बातों का पता आपको जांच पड़ताल से लगा उन सब को पिटारे में भरकर घर ले चलिए और फुरसत से उनका निर्णय करते रहिए। ऐतिहासिक ने घर आकर अपने उस पिटारे को खोला और बड़े परिश्रम पूर्वक उनमें से ये तथ्य रूपी रत्न निकाले:—

(१) जो विक्रमसंवत् प्रचलित है उसका प्रारम्भ ईस्वी सन् से ५७ वर्ष पूर्व पाया जाता है।

(२) छठीं शताब्दि से पूर्व के लेखों में इस संवत् के साथ विक्रम नाम नहीं पाया जाता, किन्तु 'मालव गण स्थिति', 'मालवगण आम्नाय', या 'मालव पूर्वा', आदि पद भिन्न भिन्न स्थानों पर पाये जाते हैं जिनसे अनुमान होता है कि इस संवत् रूपी काल गणना का उपयोग मालवगणों ने किया था। मालवों से भी पूर्व पहली-दूसरी शताब्दि में पश्चिमोत्तर भारत के सिथियन और पार्थियन राजाओं ने भी इसी संवत् का बिना किसी नामनिर्देश के उपयोग किया था। संभव है कि इन्हीं राजाओं ने यह काल-गणना प्रारंभ की हो ❀। पीछे मालवों ने इसकी चैत्रादि या कार्तिकादि एवं अमान्त अथवा पूर्णिमान्त संबंधी किसी एक पद्धति को अपना लिया हो और वही पद्धति 'कृत' नाम से प्रसिद्ध हुई हो +।

❀ देखो केम्ब्रिज हिस्ट्री आफ् इंडिया, व्हा १ पृ. ५७१

+ देखो डा. भंडारकर का लेख "The Vikrama Era" भंडारकर कमोमरेशन व्हाल्यूम १९१७ में प्रकाशित।

(३) प्रतीत होता है कि प्रारम्भ में यह संवत् कार्तिकादि रहा। वर्षा काल के पश्चात् शरद काल दिग्विजय आदि पराक्रम के लिये उपयुक्त होता था इसीसे विक्रमकाल कहलाया। पश्चात् धीरे धीरे विक्रम के स्थान पर विक्रमादित्य राजा का आदेश हो गया। यह परिवर्तन या तो आंध्र वंश के शालिवाहन के संबंध से हुआ होगा या गुप्तवंश के चन्द्रगुप्त द्वितीय या कुमारगुप्त के, क्योंकि ये राजा भी विक्रमादित्य की उपाधि से विभूषित पाये जाते हैं।

(४) बहुलता से इस संवत् का उपयोग पूर्ण हुए वर्षों के लिये ही किया गया है, पर कहीं कहीं चालू वर्ष के लिये भी उसका प्रयोग पाया गया है। १५० तिथियों की जाँच करने पर केवल ९ तिथियाँ ऐसी पाई गईं जिनमें निस्संदेह रूप से चालू वर्ष के लिये इसका उपयोग किया गया था*।

(५) प्राचीनतर उल्लेखों में कार्तिकादि पद्धति का प्रयोग पाया जाता है, पर पीछे चैत्रादि का उपयोग अधिक प्रचलित हुआ। जिन १५० तिथियों की जाँच की गई उनमें संवत् १४०० तक दो तिहाई कार्तिकादि हैं और एक तिहाई चैत्रादि। किन्तु उसके पश्चात् के उल्लेखों में उनका परिमाण ठीक विपरीत हो गया है। जान पड़ता है कि पहले विक्रमसंवत् कार्तिकादि ही था। पीछे संभवतः शक संवत् के प्रभाव से वह चैत्रादि भी हो गया और यही पद्धति उत्तर भारत के उल्लेखों में विशेष रूप से प्रचलित हुई।

(६) संवत् १२०० तक के उल्लेखों में लगभग ७१ प्रतिशत पूर्णिमान्त और शेष अमान्त पाये जाते हैं। पर संवत् १२०० और १४०० के बीच पूर्णिमान्त उल्लेखों का प्रमाण ५५ प्रतिशत, १४०० और १६०० के बीच ५० प्रतिशत एवं १६०० और १८७७ के बीच ८२ प्रतिशत हो जाता है। इसका फलितार्थ यह निकलता है कि पहले पूर्णिमान्त पद्धति का ही विक्रमसंवत् में विशेष प्रचार था, पश्चात् संभवतः शकसंवत् के प्रभाव से अमान्त पद्धति का उपयोग बढ़ गया। किन्तु अन्ततः वही पुरानी पद्धति पूर्णिमान्त फिर स्थापित हो गई जो आज तक चली जाती है।

(७) विक्रमसंवत् का उल्लेख लगभग ९०० संवत् तक, सभी मालवा तथा उसके आस पास के प्रदेशों में ही पाये जाते हैं फिर वहाँ से उसका प्रचार उत्तर और पूर्व की ओर बढ़कर कन्नौज, ग्वालियर और बुन्देलखंड तक पहुँचता है। तत्पश्चात् दक्षिण, पूर्व और दक्षिण में उसका प्रसार होते हुए पश्चिम में वह काठियावाड़ तक पहुँच जाता है। लगभग १३०० तक विक्रम संवत् के प्रचार के क्षेत्र की यदि हम मर्यादा रेखा खींचना चाहें तो नर्मदा के मुख से गया, गया से दिल्ली, दिल्ली से कच्छ की खाड़ी और वहां से समुद्र के किनारे किनारे चल कर पीछे नर्मदा के मुख पर आजाने से उसका प्रचार-क्षेत्र निर्दिष्ट हो जाता है।

---

* यह तथा आगे दिये हुए निष्कर्ष विक्रमसंवत् के संबंध में कीलहार्न द्वारा की गई खोजों और इंडियन एंटीक्वेरी में प्रकाशित लेखों के आधार पर निकाले गये हैं।

(८) उपर्युक्त निर्दिष्ट सीमा के भीतर विक्रमसंवत् का उपयोग चालुक्य, वघेल, परमार, चन्देल तथा कन्नौज और राजपुताने के राजवंशों द्वारा किया गया है।

देखा पाठक हमने सच कहा था न कि इस झंझट में जो न पड़े वही सुखी रहेगा, नहीं तो उसे विक्रमादित्य की वहुरूपिणी विद्या के खेल भी देखना पड़ेंगे। किन्तु आप सुखी न हों तो न सही संतुष्ट तो अवश्य होंगे कि चलो विक्रमसंवत् के संवंध में किसी निश्चित परिणाम पर तो पहुँच गये।

विक्रम-स्मृति।



(रचयिताः—पं० द्वारिकाप्रसाद तिवारी "विप्र")

भारत के वक्षस्थल पर,
उज्जयिनी का पुण्स्थल।
करता जहँ प्रतिपल कलकल,
शिप्रा गंगा का शुचि जल ॥ १ ॥

विक्रमादित्य से भूपति,
नवरत्नों के ये नरपति।
भारत की प्यारी संस्कृति,
होने न दिया इसकी क्षति ॥ २ ॥

निर्माण किया संवत्सर,
जिसका गौरव हम करकर।
कहते ऊँचा मस्तक कर,
विक्रम जीवित है मरकर ॥ ३ ॥

इस दिन है विषम परिस्थिति,
वाधायें विघ्न उपस्थित।
कर विक्रम उन्हें व्यवस्थित,
दो सहस्राब्दि की स्मृति ॥ ४ ॥

भारत के सव संतान,
इतना तो निश्चय ठान।
करना स्वदेश उत्थान,
तव है विक्रम की शान ॥ ५ ॥

संवत्सरों का संक्षिप्त इतिहास।



(लेखकः—पं० प्रयागदत्त शुक्ल, नागपुर)

ऐतिहासिक खोज से जान पड़ता है कि आज से दो सहस्र वर्ष पूर्व उज्जैन के सम्राट् विक्रमादित्य ने अपने पराक्रम से (विदेशी) शकों को परास्त कर भारत भूमि की स्वतन्त्रता की रक्षा की थी और अपने शासन-काल में वैदिक संस्कृति, साहित्य, शिल्प और विविध प्रकार के कला कौशल की प्राण प्रतिष्ठा कर विश्व में भारत के गौरव की पताका फहराई थी। इसी कारण से महा प्रतापी विक्रमादित्य के नाम पर विक्रमसंवत् प्रचलित हुआ। विक्रम-संवत् विश्व के संवत्सरों में (भारत के मध्ययुगीन इतिहासकाल में) विशेष महत्व रखता है।

विक्रम संवत् के पूर्व, भारत में अनेकों संवत् भिन्न भिन्न प्रतापशाली सम्राटों ने चलाये थे। काल गणना में जनता उनका उपयोग करती थी। उनमें से कुछ संवत्सरों का परिचय इस प्रकार है।

सबसे प्राचीन संवत् वैदिक संवत् (आर्य संवत् या सृष्टि संवत्) है जिसका उल्लेख धार्मिक कृत्यों में आज तक किया जाता है। वर्तमान जो बीत रहा है वह ब्रह्मा के दिवस का द्वितीय प्रहर, श्वेतवाराह कल्प, कलियुग का प्रथम चरण है। उसकी संख्या दो अब्ज वर्षों से न्यून है।

कलिवर्ष—यह संवत् ईसा से पूर्व ३१०२ वर्ष से आरम्भ होता है। आज उसका ५०४३ वां वर्ष चल रहा है। भारत के प्रसिद्ध पांडुवंशी सम्राट् युधिष्टिर ने यह संवत् (अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न करके) जारी किया था। भारत में "कलि" का आरम्भ इसी समय से होता है।

जनश्रुति के अनुसार भारतवासी कलियुग में ६ प्रधान संवत् मानते हैं। (१) युधिष्ठिर संवत् (२) विक्रम संवत् (३) शालिवाहन संवत् (४) वैतरणी के किनारे-विजयाभिनन्दन संवत् (आगे प्रतिष्ठित होगा) (५) गौड़देशीय-नागार्जुन संवत् और (६) भविष्य का कल्कि-संवत्।

जैनियों का "महावीर-निर्वाणसंवत्" आज भी यहाँ जैनियों में कुछ कुछ प्रचलित है। विक्रम संवत् में ४७० वर्ष जोड़ने से [आश्विन-बदी अमावस्या से] इसका आरम्भ-काल शुरू होता है। इसीदिन जैन तीर्थंकर महावीरजी

का निर्वाण हुआ था। प्रतापी चन्द्रगुप्त मौर्य ने भी [ईसा से ३१५ वर्ष पूर्व] एक संवत् स्थापित किया जो कुछ दिनों तक मौर्य संवत् के नाम से चला।

शालिवाहन शक—दक्षिण भारत में इसी शक का प्रयोग करते हैं। भारतीय इतिहास में आंध्रवंशी शालिवाहन या सातवाहन राजों का प्रमुख स्थान है। विक्रमसंवत् में १३५ वर्ष घटाने से इसका आरम्भ काल निकल आता है।

प्राचीन शिलालेख और ताम्रप्रशस्तियों से पता चलता है कि भारत के कई प्रतापशाली राजाओं ने अपने अपने नाम से संवत् प्रचलित करने का उद्योग किया था, जैसे, (१) अनंद विक्रम शक (२) कपिल संवत् (३) कोल्लम शक (४) गंग संवत् (५) गुप्त संवत् (६) चालुक्य संवत् (७) चेदि संवत् (८) जव्हार संवत् (९) नेवार संवत् (१०) पार्थियन संवत् (११) परशुराम संवत् (१२) बंगाली संवत् (१३) मगी संवत् (१४) लक्ष्मणसेन संवत् (१५) वल्लभी संवत् (१६) कलचुरि संवत् (१७) सप्तर्षि [काफिरी] संवत् (१८) सिंह संवत् (१९) सूर संवत् (२०) हर्ष संवत्, आदि।

भिन्न भिन्न समय में भारत पर कई विदेशी राजाओं ने चढ़ाइयाँ की और उसके कुछ हिस्सों का शासन भी किया था: और कुछ ने यहाँ का शासक होने के नाते अपना अपना संवत् भी जारी किया। जैसे ईस्वी सन् [२] इलाही सन् [३] अमली अन् [४] जुलूसी सन् [५] तुर्की सन् [६] पार्थियन सन् [७] पारसी सन् [८] फसली सन् [९] हिजरी सन्, आदि।

विक्रम-संवत्—आज समस्त उत्तरीय भारत में विक्रम-संवत् का प्रचार है। नर्मदा के उत्तर में इस संवत् का आरम्भ चैत्र मास से (पौर्णिमान्त) होता है। गुजरातादि में कार्तिक (अमान्त मास) से मानते हैं। भारत के इतिहास में विक्रमादित्य (जिसने यह संवत् चलाया) के संबंध में विद्वानों के भिन्न भिन्न अनुमान हैं। बौद्ध और जैनों के संघर्षकाल में "युधिष्ठिर संवत्" लुप्त हो गया। बौद्ध काल में (संवत् ५०० के पूर्व से लेकर १२८ वर्ष पूर्वतक) वैदिक धर्म तथा भारत के प्राचीन राजवंश लुप्त से हो गये थे। साथ ही मौर्यों के समय में यूनानियों ने भारत पर आक्रमण करना शुरू कर दिया था। मौर्य-काल में वर्णाश्रम-धर्म का बौद्ध और जैनियों ने प्रकट विरोध किया जिससे द्विजातियों की भावनाओं पर गहरी चोटें पहुँची। यवन भी इस देश में पहुँच कर अत्याचार करते थे जिसका विवरण पुराणादि ग्रन्थों में भी पाया जाता है। मौर्य राजा जयद्रथ के समय में वर्णाश्रम-धर्म के संरक्षकों ने संगठन करके भारत की राजधानी पाटली पुत्र में शुङ्ग वंश (ब्राह्मण राज्य) की स्थापना की। उस प्रधान वंश का प्रधान नायक मौर्य सेनापति पुष्यमित्र शुङ्ग (ब्राह्मण) था। पुष्यमित्र ने बौद्ध, म्लेच्छ, यवन और कलिंग के राजा खारवेल के वंशज (जैन) को परास्त

करके अश्वमेध यज्ञ किया। पांडुवंशी जनमेजय के पश्चात् पुष्यमित्र तक (ईसा से १८० वर्ष पूर्व) किसी ने भारत में अश्वमेध यज्ञ नहीं किया था। पुष्यमित्र ने समस्त राजाओं को पराजित कर इस यज्ञ को बड़े समारोह के साथ सम्पन्न किया। सम्भव है कि इस यज्ञ-तिथि से एक "नया संवत्" चलाया गया हो जो सम्भवतः मालव-संवत् ही हो। कहते हैं कि उसने वर्णाश्रम-धर्म की रक्षा के लिए धन रत्नों से भरे बौद्ध-मठों को लूट लिया और असंख्य बौद्धों का संहार किया। साथ ही शाकल (सियालकोट के) यवन राजा मन्डोवर को सिन्धु के किनारे तक खदेड़ दिया।

"मध्यदेशे न स्थास्यान्ति यवनः युद्ध दुर्मदाः।"

शुङ्ग-वंश की प्रान्तिक राजधानियां उज्जैन, मथुरा और सांकल थीं। शुङ्गों का राजशासन ईसा से ७३ वर्ष पूर्व ब्राह्मण वंशी वसुदेव कण्व ने हस्तगत कर लिया। कण्व-राजवंश के शासन समय में मालवा का प्रसिद्ध "विक्रमाब्द संवत्" आरंभ हुआ। पुरातत्व के विद्वान कहते हैं कि विक्रम संवत् ८ वीं सदी तक "मालव संवत" कहलाता था।

प्रशस्तियों में विक्रमसंवत् का प्रयोग ८ वीं सदी से मिलता है। विक्रम पद से विक्रमादित्य का अर्थ निकलता है। डॉ. कीलहार्न अनुमान करते हैं कि विक्रम संवत् का सम्बन्ध विक्रमादित्य नामक राजा से न था। शरद् ऋतु से (विक्रम काल में) इसका आरम्भ होने से विक्रम संवत् कहलाया। हर्ष चरित्र से भी इसका समर्थन होता है। पर जनश्रुति के अनुसार भारतवासी विक्रम संवत् का प्रवर्तक प्रमार वंशी सम्राट् विक्रमादित्य को मानते हैं। प्रसिद्ध कवि कुलगुरु कालिदास उसके दरबार के रत्नों में प्रधान थे। विक्रम और कालिदास का इतना घनिष्ट संबंध है जिसे कोई अलग नहीं कर सकता।

विक्रमादित्य कौन थे ? इसका ठीक ठीक उत्तर देने के लिये आज प्रामाणिक साधन उपलब्ध नहीं है। तथापि जनश्रुति यह निश्चित करती है कि कण्व-काल में उज्जैन में एक महान प्रतापशाली सम्राट् विक्रमादित्य अवश्य हुए, जिन्होंने यवन और म्लेच्छों से भारत को रहित किया। प्रसिद्ध विद्वान हाल ने (ई० सन् १०२) सतसई ग्रन्थ में विक्रम के दातृत्व के उल्लेख की चर्चा की है। कथासरित्सागर और बृहत्मंजरी ग्रंथों में विक्रमादित्य के पराक्रम का सगर्व उल्लेख पाया जाता है। उस समय के जैन आचार्य कालकाचार्य ने लिखा है कि पराक्रमी राजा विक्रम ने विदेशी शकों को देश से निकाल बाहर किया और भारत में स्वतंत्रता स्थापित की। इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि प्रतापी कण्व राजाओं के शासन समय में विक्रम संवत् के प्रवर्तक सम्राट् विक्रमादित्य उज्जैन के प्रतापशाली नरेश थे।

ईसा से १ शताब्दि पूर्व यवनों के समान अफगानिस्थान होते हुए शकों ने भी (जो क्षत्रप और महाक्षत्रप कहलाये) काठियावाड़, मालवा, गुजरात, कोंकण

और महाराष्ट्र पर चढ़ाई कर अपना अधिकार जमाया। नाशिक, कार्ले आदि स्थानों की प्रशस्तियों में इसका उल्लेख है। भारत के कई प्रतापशाली राजाओं ने समय समय पर विक्रमादित्य, विक्रमाङ्क, श्री विक्रम, अजितविक्रम, सिंह विक्रम की उपाधियां धारण की थीं जिनका उल्लेख प्रशस्तियों में मिलता है। पर लोगों का विश्वास है कि विक्रम संवत् चलाने वाला विक्रमादित्य प्रमार वंश में उज्जैन में हुआ था। यह भी संभव है कि कुछ काल के पश्चात् प्रमार वंश शिथिल हो गया हो।

इतिहास से पता चलता है कि भारत में अनेक विदेशी जातियों ने यहाँ आकर इसे अपना निवास स्थान बनाया और कुछ ने कुछ काल तक यहाँ शासन भी किया जिनमें यवन, म्लेच्छ, शक, हूण. वाल्हिक, पल्लव, कुषाण, नाग, आभीर आदि जातियां प्रमुख थीं। इन जातियों का शासन जिन जिन राजाओं ने उखाड़ फेंका उन्होंने भी विक्रमादित्य की उपाधि धारण की थी। ऐसे राजाओं का संक्षिप्त परिचय नीचे दिया जाता है—

ईसा से ५७ वर्ष पूर्व उज्जैन में गर्दभिल्ल राजा का पुत्र विक्रमादित्य राज्य करता था। उसके पिता और उसने शकों को (राजा शाहानुशाही को) परास्त करके सारा राज्य हस्तगत कर लिया। प्रसिद्ध विद्वान सिद्धसेन दिवाकर इसी विक्रम का आश्रित था। दूसरे पैठन के सातवाहन, शालिवाहन (कुन्तलः शातकर्णिः) या आन्ध्रभृत्यु (ईसा से १८२ वर्ष पूर्व से ई० सन् २४० तक) राजाओं ने शकों की कमर तोड़ दी थी और उन्होंने अपना नया संवत् चलाया था जो कि "शालिवाहन शक" कहलाता है। कथासरित्सागर ग्रंथ में शकों के अत्याचारों का वर्णन मिलता है।

"भारतीय इतिहास की रूप रेखा" नामक ग्रन्थ में सातवाहन युग को ५ भागों में विभक्त किया है—(१) ईसा के पूर्व २१२ से लेकर १०० वर्ष पूर्व तक चार प्रबल शक्तियों में होड़ थी—उसे "चेदि-सातवाहन-यवन-शुंग-युग" कहते हैं। (२) ईसा के १०० से ५२ वर्ष पूर्व तक शक जाति की प्रधानता रही। (३) ई० सन् ७८ तक "शालिवाहनों का समृद्धि युग" कहलाता है। इस युग में शालिवाहन भारत के चक्रवर्ती राजा थे। (४) यह युग ई० सन् १८० तक "तुखार–सातवाहन" कहलाता है और (५) सातवाहनों का "वृद्धापकाल" सन् २३९ ई० तक रहा। भारत का विक्रमी संवत् और शालिवाहन शक द्वितीय युग में प्रचलित हुए। शालिवाहनों के २९ राजाओं के नाम मिलते हैं, उनमें से कुछ राजाओं ने "विक्रमादित्य" की उपाधि धारण की थी।

"म्लेच्छ संहाश्च विहिताः शेषाश्च स्थापिता वशे।
ते ते विक्रम शस्तेऽच प्राविष्टाः कटके नृपाः॥"

प्रसिद्ध विद्वान गुणाढ्य का आश्रयदाता सम्राट विक्रमादित्य ने सन् ७८ ईस्वी में शकों पर विजय संपादन किया और उज्जैन में उसका महोत्सव मनाया गया, तभी से शक संवत् प्रचलित हुआ।

गुप्तवंशी चन्द्रगुप्त द्वितीय (ई० सन् ३८०–४१३) भी विक्रमादित्य कहलाता था। उसका पिता समुद्र गुप्त (भारतीय नेपोलियन) ने अश्वमेध करके सम्पूर्ण राजाओं को परास्त किया था। उसका पुत्र "शकारि चन्द्रगुप्त" था। अधिकांश पुरातत्व के विद्वान कहते हैं कि महाकवि कालिदास इसी राजा के आश्रित थे ये लोग।

"वर्णाश्रम व्यवस्थापन प्रवृत" थे।

हूण और शकों को इन्होंने अच्छी प्रकार हराकर देश से खदेड़ दिया। ई० सन् ४५५ में समस्त भारत में हूण-सम्राट तोरमाणशाह ने समस्त भारत में आतंक मचा दिया था। भिटारी की प्रशस्ति में लिखा है—

"हूणैर्यस्य समागतस्य समरे दोर्भ्यां धरा कम्पिता।"

इन अत्याचारी हूणों को गुप्त-राजाओं ने पराजित किया। उनकी रही सही शक्ति उज्जैन के प्रतापी यशोवर्मा द्वारा [ई० सन् ५३३] नष्ट कर दी गई जो मंदसोर की प्रशस्ति में विक्रमादित्य की उपाधि से विभूषित किया गया है। फिर तो प्रत्येक प्रतापशाली राजा अपने को विक्रमादित्य कहलाने लगे। प्रशस्तियों में इसका सगर्व उल्लेख मिलता है। अस्तु,

इतिहास के जानकार विक्रम संवत् और विक्रमादित्य के विषय में भिन्न भिन्न मतों का प्रतिपादन करते हैं। पर बहुमत यह है कि ईसा के ५७ वर्ष पूर्व एक महान पराक्रमी राष्ट्र वीर (National Hero) विक्रम नामक राजा उज्जैन में हुआ जिसने यवन और शकों के अत्याचारों से अवन्ती देश की रक्षा की थी। जनश्रुति, पुराण, आख्यायिकाएँ, प्रबन्ध, काव्यों द्वारा इसका समर्थन किया जा सकता है। जैन ग्रन्थकारों ने भी इसका समर्थन किया है। प्रभावक चरित्रकार ने लिखा है—

"शकानां वंशमुच्छेद्य कालेन कियतापिहि।
राजा विक्रमादित्यः सार्वभौमोपमो भवत्॥
सचोभव महासिद्धिः सौवर्णपुरुषोदयात्।
मेदिनीमनृणां कृत्वाचीकरद्वत्सरं निजम्॥"

जैनग्रन्थों से पता चलता है कि आर्य-धर्म और वैदिक-संस्कृति के रक्षक पराक्रमी विक्रम ने ईसा से ९९ वर्ष पूर्व जन्म लिया था। २४ वर्ष की अवस्था में वह "सार्व भौमोपम" कहलाया और ईसा से ४४ वर्ष पूर्व उसका अन्त हो गया। यही बात प्रसिद्ध विद्वान डॉ. जायसवाल भी लिखते हैं।

महाकवि कालिदास इसी विक्रम के आश्रित थे। विक्रम की अखंड परम्परा दो बातों से आज तक संसार में कायम रही—(१) महाकवि कालिदास के

काव्य और (२) आद्य सूर्य सिद्धान्तनामक ज्योतिष ग्रन्थ। यदि इस संवत् के साथ ये दो बातें न होतीं तो वल्लभी, चेदि, कनिष्क, हर्षादि संवतों की जो गति हुई वही विक्रम संवत् की भी होती यह निश्चय पूर्वक कहा जा सकता है। अवन्ती में विक्रम ने प्राचीन सूर्य सिद्धान्त का संशोधन किया था। वहीं पर वाराहमिहिर की पंच सिद्धान्तक रची गई थी—

शास्त्र माद्यं तदेवेदं यत्पूर्वं प्राह भास्करः ॥

इसी पद्धति को हम "मालव गणना" कह सकते हैं। वास्तव में इस संवत् का आरम्भ कार्तिक से है। तात्पर्य यह है कि विक्रम ने जो "संवत्सर-चक्र" प्रारम्भ किया उसका स्थायित्व केवल राजकीय ही न था बल्कि काव्य, ज्योतिष और धार्मिक विधान में इसे स्थान मिल जाने से आज तक वह अखंड रूप से चल रहा है।

विक्रम का महत्व राजनैतिक, धार्मिक और सांस्कृतिक होने से उसकी अखण्ड परम्परा आज तक स्थिर है। इसलिए लोग उसे यवन-शकों का उच्छेद कर्त्ता, सूर्य सिद्धान्त-प्रवर्तक, वैदिक-धर्म-रक्षक अर्थात् आर्य संस्कृति का प्रतीक, रघुवंश काव्य के कर्त्ता महाकवि कालिदास के आश्रयदाता के नाम से स्मरण करते हैं। यही इस संवत् की विशेषता है।

दो हज़ारवाँ संवत् का सन्देश।



(रचयिता--श्री रामेश्वर प्रसाद श्रीवास्तव "व्यग्र")

दो हज़ारवाँ सम्वत् आया,
लाया है यह फिर सन्देश।
विक्रम की यदि लाज तुम्हें है,
स्वतः सम्हालो अपना देश ॥



सम्राट विक्रमादित्य।

(लेखक—पं० रजनीकांत शुक्ल)

विक्रम संवत्सर के संस्थापक विक्रमादित्य 'शकारि' भारतीय इतिहास के उस युग में हुए थे, जिसे 'अंधकार-युग' कहा जाता है। उस समय के इतिहास के पुष्टिकरण के लिए इतिहासज्ञों को कोई सामग्री प्राप्त नहीं हुई है। विद्वानों ने अनुमान से ही तात्कालीन भारतीय इतिहास का छाया-निरूपण किया है। विक्रमादित्य के सम्बन्ध में जन-श्रुति अब तक यह कहती है कि वे सन् ईस्वी के ५६-५७ वर्ष पूर्व हुए थे, और उनकी सभा के नौ रत्नों में कवि कालिदास प्रमुख थे। विदेशी इतिहासकारों के अतिरिक्त प्राचीन पौराणिक ग्रंथों में भी गाथाओं के रूप में विक्रमादित्य का उल्लेख आया है। भारतीय कथा-साहित्य में अट्ट कथा संग्रह और बृहत्कथा-सरित्सागर और विक्रम कथानक में ही भारतीय प्राचीन इतिहास जीवित है।

परन्तु इतिहासज्ञों को विक्रमादित्य के समय की कोई ताम्रलिपि, सिक्का या लेख अब तक प्राप्त न होने के कारण यही मानना पड़ता है कि ईसा के पूर्व विक्रमादित्य नामक कोई सम्राट नहीं हुआ। गुप्तवंशीय कई प्रसिद्ध राजाओं ने अपनी उपाधि "विक्रमादित्य" धारण की थी, और उन्हीं के काल में अर्थात् ५ वीं शताब्दि के लगभग कवि कालिदास का भी आविर्भाव लोग मान लेते हैं। इस परिणाम पर पहुंचने के लिए उन्होंने अनेकानेक प्रमाण दिये हैं।

डाक्टर कीलहार्न का अनुमान है कि ईस्वी सन् ५४४ (वि० सं० ६०१) में मालवे के प्रतापी राजा यशोधर्मा ने करूर (मुलतान के पास) हूण-नरेश मिहिर-कुल को हराकर विक्रमादित्य की उपाधि धारण की थी और उसी समय अपनी इस विजय के उपलक्ष में पूर्व प्रचलित मालव संवत् में ५६ वर्ष जोड़कर उसे ६०० वर्ष पुराना घोषित कर दिया था। साथ ही उसका नाम बदलकर विक्रम संवत् रक्खा। पर यह युक्तिसंगत नहीं जान पड़ता, क्योंकि एक तो करूर का युद्ध ५४४ ईस्वी के बहुत पहिले हुआ था, और मिहिरकुल की मृत्यु भी ५४२ ईस्वी में हो गई थी। फिर दूसरे, यशोधर्मा के लेख में भी उसके उक्त उपाधि धारण करने का कहीं उल्लेख नहीं मिलता और न उसके नये संवत् का ही कहीं जिक्र है। यह बात भी मन में जंचती नहीं कि एक प्रतापी राजा अपने निज का संवत् न चलाकर दूसरे के चलाये हुए सम्वत् में ५६ वर्ष जोड़ उसे ६०० वर्ष पुराना घोषित कर फिर उसे विक्रम संवत् के नाम से क्यों प्रचलित करेगा?

डाक्टर फ्लीट कनिष्क को विक्रम संवत् का चालक मानते हैं। पर यह भी कोरा अनुमान ही प्रतीत होता है, क्योंकि इतिहास में इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता। जनश्रुति के अनुसार कवि-कुल-गुरु कालिदास का विक्रमादित्य के साथ अखण्ड सम्बन्ध माना जाता है। अतएव कुछ विद्वानों ने कालिदास के कतिपय ग्रंथों से कुछ उद्धरण देकर यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि सन् ईस्वी के पूर्व विक्रमादित्य हुए ही नहीं।

रघुवंश के श्लोकों में गुप्त और कुमार शब्दों केउल्लेख से वी० ए० स्मिथ ने यह अनुमान लगाया है कि कालिदास ने चन्द्रगुप्त द्वितीय और कुमार गुप्त का वर्णन किया है, और रघु की विजय-यात्रा का विवरण एवं अश्वमेध यज्ञ का उल्लेख यथार्थ में समुद्र गुप्त का है, क्योंकि पौराणिक काल के बाद गुप्त वंशीय राजाओं ने ही अश्वमेध यज्ञ किया था। पर शंका यह होती है कि यदि कालिदास अपने आश्रयदाता-गुप्त राजाओं का प्रताप वर्णन करते तो क्यों इतना घुमा फिरा कर करते, और क्यों नहीं सीधा एक ग्रंथ उनके यश-वर्णन में लिख देते। मि० स्मिथ का दूसरा अनुमान है कि चन्द्रगुप्त द्वितीय ही ने, जिसकी उपाधि विक्रमादित्य थी, मालव संवत् का नाम वदल कर विक्रम संवत् कर दिया। चन्द्रगुप्त द्वितीय चक्रवर्ती सम्राट था। उसके पश्चिमी प्रान्त की राजधानी उज्जैन थी। स्मिथ का कथन है कि शकों की दूसरी शाखा का जो कि काठियावाड़ में वस गई थी, चन्द्रगुप्त द्वितीय ने ही पूरा नाश किया था, और उसीके उपलक्ष में उसने 'विक्रमादित्य' उपाधि धारण की थी तथा विक्रम संवत् चलाया था। कालिदास को भी उन्होंने इन्हीं का दरबारी मान लिया है। परन्तु इसका भी कोई प्रमाण नहीं मिलता कि चन्द्रगुप्त द्वितीय ही ने मालव संवत का नाम परिवर्तन कर विक्रम संवत चलाया था। दूसरे, उसके पूर्वजों का चलाया हुआ गुप्त-संवत् उसके वाद भी चलता रहा और क़रीव ६०० वर्ष चलने के वाद वल्लभी-संवत् के नाम से प्रचलित था। साथ ही यह भी युक्ति संगत नहीं जान पड़ता कि चन्द्रगुप्त द्वितीय, अपने पूर्वजों के चलाये संवत् का तिरस्कार कर, क्यों दूसरे संवत की संस्थापना करता। अतएव यह निश्चय पूर्वक कहा जा सकता है कि चन्द्रगुप्त द्वितीय एवं विक्रम संवत के प्रवर्तक दो भिन्न व्यक्ति थे।

कई विद्वानों ने स्कन्द गुप्त को विक्रम संवत् का प्रवर्तक माना है क्यों कि उसकी उपाधि भी विक्रमादित्य थी। कवि कालिदास का आविर्भाव-काल भी उन्होंने कुमार गुप्त (स्कन्दगुप्त के पिता) के समय सिद्ध किया है। प्रमाण वे इस प्रकार देते हैं कि कथा सरित्सागर के १८ वें भाग में राजा विक्रमादित्य की कथा दी हुई है। उसमें महेन्द्रादित्य के पुत्र विक्रमादित्य के द्वारा म्लेच्छों के नाश का वर्णन है। कुमार गुप्त के सिक्कों में उसकी उपाधि महेन्द्रादित्य पाई जाती है। अतएव महेंद्रादित्य से उक्त विद्वानों ने कुमार गुप्त का ही तात्पर्य लिया है। किंतु इतिहास से पता चलता है कि हूणों के द्वितीय आक्रमण द्वारा स्कन्दगुप्त के अधिकार से

पश्चिमी प्रान्त निकल गये थे। और इस आक्रमण के पश्चात् गुप्त-वंश का अधिकार केवल पूर्वी प्रान्तों पर रह गया था।

इस तरह ऐतिहासिक गवेषणाओं से यह बात सिद्ध होती है कि विक्रमादित्य 'शकारि' नामक सम्राट ने सन् ईस्वी के ५७ वर्ष पूर्व विक्रम संवत् का संस्थापन किया था। एवं उन्हीं के राज सभा में कवि कालिदास थे, जिन्होंने मेघदूत, रघुवंश, शाकुन्तल-अभिज्ञान, विक्रमोर्वशी इत्यादि श्रव्य काव्य एवं दृश्य काव्य संस्कृत में लिखे थे। इसकी पुष्टि के लिए निम्नलिखित प्रमाण और दिये जाते हैं--

ईस्वी सन् के क़रीब १५० वर्ष पूर्व (वि० सं० से ९३ वर्ष पूर्व) उत्तर पश्चिम से शक जाति भारत में आई थी। उनकी एक शाखा ने काठियावाड में तथा दूसरी ने मथुरा में अपना अपना राज्य स्थापित किया था। यद्यपि शकों की दूसरी शाखा का जो क्षत्रप कहलाते थे, चन्द्रगुप्त द्वितीय ने नाश किया था परन्तु उनकी पहली मथुरावाली शाखा का ई० सन् से ५७ वर्ष पूर्व कुछ पता नहीं चलता अतएव यह अनुमान होता है कि उपर्युक्त शकों की शाखा का अन्त मालव नरेश विक्रमादित्य ने ही किया था, और उस महान विजय के उपलक्ष में उन्होंने विक्रम संवत् का संस्थापन किया था तथा अपनी उपाधि 'शकारि' धारण की थी।

आन्ध्र वंश के १७ वें राजा हाल (सात वाहन) ने प्राचीन मराठी में एक पुस्तक 'गाथा-सप्तशती' नामक लिखी थी। डा० भण्डारकर का अनुमान है कि या तो यह पुस्तक स्वंय हाल ने ही लिखी होगी या किसी ने उन्हें समर्पण किया होगा। इस पुस्तक के ६५ वें पद्य में राजा विक्रमादित्य की दान शीलता का वर्णन है। उसका संस्कृतानुवाद इस प्रकार है—

संवाहन-सुखरस सतोपितेन ददता तव करे लक्षम।
चरणेन विक्रमादित्य चरित मन शिक्षितं तस्याः।

इसमें विक्रमादित्य द्वारा १ लाख मुद्रा दान दिये जाने का उल्लेख है। मि० विन्सेन्ट स्मिथ, हाल का समय ई० सन् ६८ (वि० सं० १२५) अनुमान करते हैं। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि उक्त समय के पहिले ही विक्रमादित्य अपनी दानशीलता के लिये सुदूर भारत में भी प्रसिद्ध हो गये थे। सुदूर दक्षिण में उनकी ख्याति फैलने के लिए उस समय लगभग ५० वर्ष तो अवश्य ही लगे होंगे। स्मिथ ने पेशावर के पास तख्तेबाही नामक स्थान में प्राप्त एक लेख में पाये गये १०३ के अंक को वि० संवत् ही माना है। यह लेख पार्थियन राजा गुड्फार्स के समय का है। इस राजा का नाम तीसरी शताब्दि में लिखी गई एक यहूदी पुस्तक में आया है। इससे भी प्रतीत होता है कि वि० संवत् का

प्रचार बहुत दूर दूर तक हो गया था और इस प्रचार को १०० वर्ष से कम न लगे होंगे। इन सब बातों से यह सिद्ध होता है कि विक्रम संवत्सर के संस्थापक राजा विक्रमादित्य ईसा के पूर्व ही हुए थे।

कालिदास रचित 'माल विकाग्निमित्र' नामक नाटक में शुंगवंशी "अग्निमित्र" का वर्णन है। यह अग्निमित्र शुंगवंश के संस्थापक पुष्यमित्र का पुत्र था और वि० सं० से ९२ वर्ष पूर्व गद्दी पर बैठा था। उक्त नाटक में कालिदास ने छोटी छोटी बातों तक का उल्लेख किया है जो किसी भी पुराण और इतिहास में नहीं है। अतएव यह निश्चय पूर्वक कहा जा सकता है कि कालिदास अवश्य ही उस समय रहे होंगे अथवा उसके कुछ समय पश्चात् हुए होंगे। जनश्रुति के अनुसार कालिदास का विक्रमादित्य के दरबार में होना पाया जाता है। अतएव विक्रमादित्य का आविर्भाव-काल ई० सन् से ५७ वर्ष पूर्व फिर भी सिद्धहोता है।

स्वर्गीय श्री आचाय द्विवेदीजी ने भी अपने एक लेख में (सितम्बर १९१८) पं० रामचन्द्र विनायक पटवर्धन, बी.ए., एल-एल.बी. की एक ज्योतिष गणना दी है। उससे उन्हों ने सिद्ध किया है कि मेघदूत की रचना के समय सूर्य जब पुष्य नक्षत्र के प्रथम चरण में आता था तब नभोमास अर्थात् सायन-कर्क-संक्रान्ति (Summer-solastice) का आरम्भ होता था। पर अब वह आर्द्रारम्भ में होता है। अर्थात् नभोमास अब २८'-३१' अंश पीछे हटकर होता है। इस पर से पटवर्धनजी ने गणित करके यह सिद्ध किया है कि वर्तमान स्थिति के उत्पन्न होने के लिए १८०० वर्ष चाहिए। मतलब यह कि कालिदास को हुए कम से कम इतने वर्ष अवश्य हुए होंगे। इस तरह भी विक्रमादित्य का अस्तित्व ईस्वी सन् के ५७ वर्ष पूर्व ही पाया जाता है।

विक्रम संवत् का प्रारंभ कलियुग संवत् के ३०४४ वर्ष बाद हुआ था। इसमें ५६ वर्ष घटाने से ईसवी सन और १३५ वर्ष घटाने से शक संवत् आ जाता है।

विक्रमादित्य की उपाधि मालवा खण्डल तथा अवन्तीनाथ भी थी। विद्वानों का मत है कि विक्रम संवत् पहिले मालव संवत् के नाम से प्रचलित था। विक्रमादित्य की 'मालवा खण्डल' उपाधि से सूचित होता है कि विक्रमादित्य उस समय समस्त मालव जाति के मुखिया थे। इतिहास में मालव जाति के गणतंत्र (प्रजासत्तात्मक) राज्य का निर्देश है। अतएव हो सकता है कि विक्रमादित्य ने शकों का नाश कर, मालव जाति के चलाये मालव संवत का नाम परिवर्तन कर उसे विक्रम संवत् कर दिया हो। विक्रमादित्य की राजधानी उज्जैन नगरी थी। प्राचीन समय में यह अवन्तिका के नाम से प्रसिद्ध थी और क्षिप्रा नदी के तट पर कई योजनों के विस्तार में बसी थी। संस्कृत-साहित्य में उज्जैन का नाम भारत की सात प्रसिद्ध नगरियों में आया है—

अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची अवन्तिका।
पुरी द्वारावती चैव सप्तैताः मोक्षदायिकः ॥

अर्थात्, (१) अयोध्या (२) मथुरा (३) हरिद्वार (४ बनारस (५) कांजीवरम् (६) अवन्तिका (उज्जैन) और (७) द्वारिका, ये सात नगरियां बड़ी पवित्र और मोक्ष-दायिनी समझी जाती थीं। पश्चिमी समुद्र के निकटवर्ती होने के कारण उज्जैन व्यापार का भारी केन्द्र था तथा ज्योतिर्विद्या में भी अग्रगण्य था। कला कौशल एवं विद्या का तो वह क्षेत्र ही था।

भविष्य पुराण के अनुसार विक्रमादित्य की उत्पत्ति परमार वंश में हुई थी। उसमें उनका वंश-वृक्ष नीचे लिखे अनुसार है—

(१) प्रमर — मूल पुरुष
(२) महामद — १ ले का पुत्र
(३) देवापि — २ रे का पुत्र
(४) देवदूत — ३ रे का पुत्र
(५) गंधर्वसेन — ४ थे का पुत्र
(६) शंख — ५ वें का पुत्र
(७) विक्रमादित्य— ६ वें का भाई।

मालवे के परमार राजा अपने को इसी के वंशज मानते हैं। विक्रमादित्य ५ वर्ष की आयु में वन चले गये। फिर १२ वर्ष तपस्या करने के बाद वे पुनः अम्बावती नगरी में आये। और १०० वर्षों तक उन्होंने राज्य किया। इनकी माता का नाम वीरमती तथा पिता का नाम गंधर्वसेन (महेन्द्रादित्य) था। भविष्य पुराण के एक श्लोक से यह ज्ञात होता है कि विक्रमादित्य ने अपने भाई भर्तृहरि के वनगमन पर ही राज्य प्राप्त किया था। कदाचित् शंख ही का दूसरा नाम भर्तृहरि रहा हो। विक्रमादित्य की दानवीरता की कहानियां अब तक प्रचलित हैं। वैताल पच्चीसी और सिंहासन बत्तीसी में उनके पौरुष, विक्रम, एवं दानशीलता की अनेक कथाएँ हैं। इनकथाओं में मानव जाति के जिन मनो-भावों, आकांक्षाओं और आदर्शों का प्रस्फुरण हुआ है उसे एकदम असत्य नहीं माना जा सकता। विक्रमादित्य संस्कृत साहित्य के उच्च कोटि के विद्वान थे। उनकी सभा के नौ रत्न ये कहे जाते हैः—

(१) धन्वन्तरि (२) क्षपणक (३) अमर सिंह (४) शंकु (५) वेतालभट्ट (६) घट कर्पर (७) कालिदास (८) वराहमिहिर और (९) वररुचि।

किंतु इतिहास से पता चलता है कि ये सब विद्वान समकालीन न थे, फिर भी कालिदास का नाम इनके साथ लिया जाता है।

विक्रमादित्य शैव मतावलम्बी कहे जाते हैं। जनश्रुति के अनुसार उनका जन्म भगवान शंकर के प्रसाद से हुआ था। उनका खड्ग 'अपराजित' भी उन्हें स्वयं भगवान शंकर से मिला था। उनकी इष्ट देवी दुर्गा थी। कुछ विद्वानों ने उनके राज्य काल की अवधि १३५ वर्ष माना है। भोज पुराण में यह अवधि १०० वर्ष है। उनका राज्य दक्षिण में भी बहुत दूर तक माना जाता है। दक्षिण भारत के तंजोर ज़िले के एक गांव में 'विक्रमादित्य काली' नामक मन्दिर है। जनश्रुति है कि विक्रमादित्य ने दक्षिण भारत के जीतने पर अपने राज्य की सीमा पर इस मन्दिर की स्थापना की थी। तभी से यह मन्दिर उनके नाम से प्रसिद्ध है। इससे भी सिद्ध होता है कि विक्रमादित्य का आधिपत्य सुदूर दक्षिण में भी था। हो सकता है कि उस समय के चोल और पांड्य उनके करद राजा रहे हों।

कालिदास के ग्रंथों को देखने से पता लगता है कि उस समय का संस्कृत साहित्य अत्यन्त उच्च कोटि का था। धारावती नगरी सभ्यता और संस्कृति की केन्द्र स्थल थी। कालिदास स्वयं ज्योतिष, अलंकार शास्त्र, नीति शास्त्र, वेदान्त, पदार्थ-विज्ञान इत्यादि का ज्ञान रखते थे। अनुमानतः उस समय उपर्युक्त प्रत्येक विषयोंपर काफी उच्च कोटि के ग्रंथ लिखे जा चुके रहे होंगे। उस समय चित्र कला, गृहनिर्माण कला, संगीत एवं नाट्य कला, वनस्पति-शास्त्र आदि शास्त्र उन्नति की चरम सीमा में पहुंच चुके थे। चारों ओर ऐश्वर्य बिखरा हुआ था। स्त्री-पुरुषों में विद्या का समान रूप से प्रचार था। स्त्रियों में वैवाहिक स्वतन्त्रता थी।

भिन्न भिन्न ग्रंथों के अवलोकन से जो बातें ज्ञात हुईं उनका तात्पर्य ऊपर दिया गया है। पाठक उन्हें चाहे जिस दृष्टि से देखें। पर यह सत्य है कि सम्राट विक्रमादित्य अपने समय के बड़े शूर वीर एवं महान शासक के गुणों से युक्त थे। उनसा दानी, विद्या-व्यसनी और दुःख त्राता राजा उस समय कोई दूसरा न था। उनका स्थापित किया हुआ संवत् भारतीय संस्कृति का सर्वोच्च विजय स्मारक और उनके गौरव का महान प्रतीक है।



धर्म-धारणा



(रचयिताः—डा० गोविन्द प्रसाद शर्मा, ए. एम. एस (व. हि. वि. वि., विद्यालंकार, साहित्यशास्त्री, और आयुर्वेदाचार्य)

धर्म क्या ? गुरुजन बताते बाल को,
ब्रह्मचर्याध्ययन व्यायाम तथा ।
करें अर्जन युवक पालें धर्म निज,
अतिथि-सेवा प्रभृति मनु लिखते यथा ।
प्रौढ़-दम्पति वन सिधारें त्याग सब,
संयमादिक आचरें नित हरि-कथा ।
वृद्ध विरती बनें नित परमार्थ-रत,
ज्ञान दे सुविमल हरें जग की व्यथा ।
व्यक्ति-मुक्ति हितार्थ सब अनुकूल ये,
किन्तु जिनने समय-धर्मों को मथा ।
देश-सेवा एक उनका धर्म है,
धर्म के हित सोचते वे अन्यथा ।
धर्म वह जो प्रीति कर दे ईश में,
त्याग होवे सत्य परहित सर्वथा ।



हिन्दूधर्मः सत-जीवन का मार्ग❀



(लेखकः—डा० राधाकुमुद मुकर्जी, एम. ए., पी. एच. डी.)

हिन्दुत्व एक विशेष धर्म है क्योंकि उसका आविर्भाव एक विशेष देश में हुआ था जिसे 'सिन्धु भूमि' कहते थे। एक मीनियन सम्राट डेरियस द्वितीय ने अपने बहिस्तुन-शिला-लेख में सिन्धु शब्द का उल्लेख और उच्चारण हिन्दु Hi(n)du किया है और तब से भारतवर्ष को हिन्दुस्थान अर्थात् हिन्दुओं की भूमि संज्ञा मिल गई है। परन्तु हिन्दुओं के धर्म को किसी एक खास जाति या जनसमूह

❀ The Aryan Path में प्रकाशित लेख का श्री श्यामानन्द वर्मा "आनन्द" और श्री शंकरप्रसाद अग्रवाल, बी. ए., एल-एल-बी., द्वारा अनुवाद ।

का धर्म नहीं समझना चाहिए। यह धर्म उन सिद्धान्तों और साधनाओं का समूह है जो मनुष्य मात्र को लागू होते हैं एवं सर्वथा सर्वमान्य होने योग्य हैं। यह एक ऐसा विश्व धर्म है जिसके सिद्धान्त और साधनाएं वैज्ञानिक आधार पर स्थित हैं, और जो मनुष्य के कल्याण और मोक्ष-प्राप्ति के संग्राम में अधिकार पूर्वक पथप्रदर्शक का काम करते हैं। यह सब प्रकार के दैहिक तापों से छुटकारा पाने का सुन्दर मार्ग है।

हिन्दुत्व आरम्भ होता है इस कल्पना को लेकर कि इस ब्रम्हांड में जो स्थान संसार के नाम से पुकारा जाता है वह दुःख, विकार और बन्धनों से जकड़ा हुआ है, फलतः वह रहने योग्य नहीं है। अनेक विचारशील पुरुषों को इन दुःखद दृश्यों ने जीवन से विमुख और विरक्त कर दिया है। उदाहरण के लिए गौतम ही को लीजिए। ये भावुक राजकुमार थे। राजमहल में विलासिता और आमोद-प्रमोद में गले तक डूबे हुए जीवन बिता रहे थे। सहसा इन्हें जीवन की वास्तविकताओं ने जगा दिया। इन्हें ऐसा लगने लगा कि इस जीवन का प्रयोजन ही क्या है जो जन्म-मृत्यु, रोग-ताप, वृद्धि-क्षय, दुःख और विकारों से भरा हुआ है। ये अत्यन्त व्याकुल हो उठे और तब इनके मुँह से इनकी हृदयगत अवरुद्ध भावनाएँ संकल्प के रूप में व्यक्त हो उठीं—"अब मैं क्या करूँ? मैं-जो जन्म, वृद्धि और क्षय, रोग, मृत्यु, पीड़ा और अशौच के बन्धनों से जकड़ा हुआ हूँ। और इन सब का कारण क्या है? मैं-ढूढूंगा-उसे जो जन्म-मरण, रोग-ताप और विकारों से रहित है।" बौद्धमत में जीवन के तात्पर्य और लक्ष्य को 'चार आर्य सत्य' में बड़ी सुन्दरता के साथ निचोड़ कर रख दिया गया है जिनका सम्बन्ध (१) दुःख (२) दुःखसमुदाय (३) दुःखनिरोध (४) दुःख निरोध-गामिम-प्रतिपाद अर्थात् दुःखों के अंत होने के मार्ग से है।

इस प्रकार हिन्दू धर्म मृत्यु की सत्यता को ही जीवन की सत्यता मानता है। इसके विश्वास के अनुसार जीवन वृद्ध, क्षय, पतन और मृत्यु के क्रम से प्राणितत्व का अवश्यम्भावी परिणाम है। अब प्रश्न यह है कि किन सिद्धान्तों को लेकर जीवन बिताया जाय जिससे अनिवार्य रूप से आनेवाली मृत्यु के साथ उसका समझौता हो सके और मृत्यु के प्रश्न को जीवन की योजनाओं में कौनसा स्थान दिया जाय? क्या मनुष्य मृत्यु को अपनी अंतिम गति मान ले या इस नश्वर जीवन का महत् उद्देश अमरत्व की प्राप्ति समझे। क्या शिवजी मृत्युञ्जय अर्थात् मृत्यु के विजेता नहीं कहे जाते? उनकी यह उपयुक्त उपाधि मनुष्य के जीवन का चरम लक्ष्य क्या है इस बात की ओर स्पष्ट रूप से संकेत करती है। और वह लक्ष्य है-अमरत्व की प्राप्ति।

हिन्दू धर्म का उन विचार वालों से मेल नहीं खाता जो जीवन के बन्धनों पर इस दृष्टिकोण से विचार नहीं करते और न जो उसके लिए अनिवार्य रूप से होने वाले दुःखों से मुक्ति पाने की आवश्यकता समझते।

इस प्रकार मनुष्य के सामने इस नश्वर जीवन में अमरत्व की प्राप्ति ही एक मुख्य प्रश्न रह जाता है। यदि उसे सत्य और नित्य की खोज में जीवन समर्पण करना है न कि उसकी खोज में जो सत्य नहीं है और जो अनित्य है, तो फिर उसे सम्पूर्णतः सत्य के लिए और केवल सत्य के ही लिए जीवित रहना पड़ेगा। उसके लिए यह परम आवश्यक होगा कि वह क्षणिक सुख, मिथ्यावाद, वितण्डावाद, अर्द्धसत्य, सहायक सत्य और मध्यस्थित सत्य से अपने को सर्वथा अलग रक्खे। धार्मिक जीवन का एक मात्र लक्ष्य रहे सत्य की साधना और असत्य का परित्याग।

मनुष्य को मृत्यु, जीवन और अमरत्व के तत्वों को समझना चाहिये। मृत्यु होती है, व्यष्टि (अंश) की न कि समष्टि (सम्पूर्ण) की। मनुष्य का कर्तव्य है कि वह मृत्यु के पंजों से बचने के लिए अपने को समष्टि में लीन कर दे। इस लीनता को 'योग' कहते हैं जिसके द्वारा व्यष्टि-आत्मा, समष्टि-आत्मा में लीन हो जाता है। योग द्वारा जीवात्मा का परमात्मा से जो कि जीव का आदि स्रोत है एकाकार हो जाता है। जीव व्यष्टि रूप में परमात्मिक ज्योति की एक चिनगारी मात्र है। मृत्यु का अर्थ है व्यष्टि का विश्व से वियोग और व्यष्टि का समष्टि से योग अर्थात् मृत्यु पर विजय। उनका इस प्रकार का संबंध (योग) सर्वथा निर्भर है विषयजनित वासनाओं के नाश पर और मन का पदार्थ से वियोग पर।

इस प्रकार धर्म की मुख्य साधना यही है कि मनुष्य मन को सांसारिक विषयवासनाओं से विरक्त करने का अभ्यास करे। मानव का सर्वोच्च धर्म है कि वह अपने दृष्टि-कोण तथा सहानुभूति में अधिक से अधिक सर्वभूतात्मक (Universal) हो और उसमें वैयक्तिक भाव कम से कम हो। धर्म इस प्रकार से हृदय की शुद्धता और व्यापकता के आधार पर आत्म विस्तार का साधन बन जाता है। "हृदय से जो शुद्ध हैं वे धन्य हैं" क्योंकि वे परमात्मा से साक्षात्कार करेंगे। कुछ विशेष प्रकार के सद्गुणों और सद्वृत्तियों की प्राप्ति ही पर हृदय की पवित्रता निर्भर है। महर्षि पतञ्जलि के योग सूत्र इन पर कुछ प्रकाश डालते हैं; प्रत्येक साधक का हृदय मैत्री भाव से पूर्ण हो, अर्थात् दूसरों के सुख के हेतु उसकी निष्कपट इच्छाएँ वैसी ही हों जैसे अपने हेतु हों और दूसरों के सुख से वह वैसा ही प्रसन्न हो मानो वे अपने ही सुख हों। "सर्वे सुखिनः भवंतुः" हमारी यही प्रार्थना हो कि सब सुखी हों।

विश्व बन्धुत्व की यह भावना मानव स्वभाव की साधारण दुर्बलता को जिसे ईर्षा या पर-श्री कातरता कहते हैं दूर कर देती है। "मैत्री" इस पाप (ईर्षा) का मारण (antidote) है। इसी भाँति प्रत्येक मानव का हृदय करुणा अर्थात् पर-दुःख कातरता से परिपूर्ण हो। "करुणा" का अर्थ होता है कि

मनुष्य दूसरों के दुःख को अपने ही दुःखों के समान समझे, और उन्हें दूर करने के लिए उतना ही प्रयास करे जितना वह अपने दुःखों से मुक्ति पाने के लिए करता है।

उपर्युक्त स्पष्ट सद्गुणों के अतिरिक्त जिनके द्वारा 'चित्त शुद्धि' की उपलब्धि होती है कुछ और स्पष्ट सद्गुण (यम) हैं। इनमें से प्रथम "अहिंसा" है जिसका अर्थ है-समस्त जीवित प्राणियों के प्रति घृणा और हिंसा की भावना से सर्वत्र और सर्वदा बचना। महर्षि याज्ञवल्क्य अहिंसा की परिभाषा करते हैं-मनसा, वाचा, कर्मणा से किसि को क्लेश न पहुँचाना। द्वितीय यम 'सत्य' है। "जो कुछ भी देखी, अनुमानित तथा सुनी गई हो उससे संबंधित वाणी और विचार की यथातथ्यता का नाम ही 'सत्य' है। वाणी की सत्यता का अर्थ होता है कि सुनने वाले को उसके अर्थ समझने में या उसके भीतरी भावों को समझने में या उसका प्रयोजन समझने में किसी प्रकार का भ्रम न हो। प्राणिमात्र की कल्याण कामना-उनकी बुराई का ध्यान तक न लाना (सर्व भूतोपकारार्थम् न भूतोपघाताय) सत्य की सीमा के अंदर आता है। अतएव मनुष्य विश्व कल्याण का ध्यान रखते हुए सत्य वचन बोले (तस्मात् परीक्ष्य सर्वभूतहितम्) वस्तुतः सब प्रकार की चित्त शुद्धि और निजत्व की व्यापकता मन के संयम पर निर्भर है। हिन्दू-विचार प्रणाली की मुख्य शिक्षा मन को इस प्रकार से शिक्षित और संबंधित करती है जिससे कि वह अधिक से अधिक आत्म सम्पूर्णता और उसके विकास का साधन हो सके। मनुष्य मात्र को इस सत्य पर स्थित रहना चाहिए कि योग सूत्रों में दिये हुए सर्व प्रथम आदेश अर्थात् "चित्तवृत्तिनिरोध" के अतिरिक्त और कोई ऐसा दूसरा साधन नहीं है जिससे मन की प्रगति और उसकी शक्तियों की वृद्धि हो सकती हो। योगशास्त्र के अनुसार मन "पांच अवस्थाओं" में जिसे "चित्तभूमि" कहते हैं, रहता है। पहली अवस्था "क्षिप्त" में मन अशान्त और अस्थिर हो एक ठौर से दूसरे ठौर पर भटकता रहता है। दूसरी अवस्था "मूढ़" में वह अधिक स्थिर रहता है पर विषयगत सुखों या विलासिता में निमग्न रहता है और क्रोध ऐसे विकारों के प्रति उन्मुख रहता है। तीसरी अवस्था "विक्षिप्त" में मन क्षणिक एकाग्रता की ओर बढ़ता है और उसकी वृत्ति सुख प्राप्ति की ओर अधिक रहती है और वह दुःखों से बचने की चेष्टा करता है। तदुपरान्त मन "एकाग्र" अवस्था को प्राप्त होता है अर्थात् वह एक ही वस्तु या तत्व के विचार में अपने को स्थिर कर सकता है। मन की सबसे ऊंची अवस्था "निरुद्ध" है जिसमें मन को पूर्ण एकाग्रता की शक्ति प्राप्त हो जाती है और मन के संघर्षमय क्रम तथा वृत्तियों में इस प्रकार रुकावट (अवरोध) हो जाती है कि मन अपने प्रकृत रूप को प्राप्त हो जाता है (निरुद्ध-सकल-वृत्तिकं संस्कारा अवशेषम्)

योग का उद्देश है मन को पहली तीन अवस्थाओं से मुक्त करना जो उसकी एकाग्रता के पोषक नहीं है तथा उसे अन्तिम दो अवस्थाओं में स्थिर रखना जिससे "चित्तभूमि" का निर्माण हो। इससे इस प्रकार की मनोस्थिति प्राप्त हो जायगी जिससे योग के अभ्यास में अनुकूलता होगी।

इस बात में कुछ भी शंका नहीं हो सकती कि आत्म विस्तार के हेतु अनन्त शक्तियों से परिपूर्ण मन का साधनत्व ही केवल एकमात्र उपाय है और मनकी आन्तरिक शक्ति का असीम विकास केवल चित्तवृत्ति निरोध रूपी मानसिक साधना अथवा मन का विषयों से अनासक्त रहने पर ही निर्भर है। इस प्रकार धर्म की पहिली सीढ़ी है--मन को वाह्य पदार्थ विषयक ज्ञान का मार्ग बनाने से रोकना–उसे व्यक्तिगत (मैं-तू) भावों का आवासस्थान न बनने देना। व्यष्टि अहंभावना से ही मन का इन्द्रियों के द्वारा वाह्य विषयों से संबंध जुटता है और वह सुखों का भोग करने लगता है। मन इस प्रकार विषयों की ओर दौड़ने लगता है और अधिक से अधिक अस्थायी और अनित्य विषय-भोगों की खोज में लिप्त हो जाता है। कहना न होगा कि यह सत्य की खोज नहीं है। सत्य तो अपरिवर्तनशील और स्थायी है। विषयों की ओर प्रवृत्तियों को झुकाने का अभ्यास करना मानो अपने को मृत्यु के मार्ग पर ढकेलने के समान है। सारांश यह है कि व्यष्टि अहं की भावना, मृत्यु की भावना के सदृश्य है।

अमरत्व तथा पूर्णता की प्राप्ति के हेतु अग्रसर होने के लिए दूसरे ही मार्ग से चलना पड़ेगा जिससे व्यष्टि अहंभाव का लोप होना एवं व्यष्टि भावना का समष्टि रूप में अधिक से अधिक मिल जाना आवश्यक है। इसलिए मन का पूर्ण रूप से परिवर्तन हो जाना अनिवार्य है। उसे प्रत्येक प्रकार की अशुद्धता तथा विचारों से जो कि उसे प्रवृत्ति के संसर्ग से प्राप्त हुए हैं, मुक्त हो जाना चाहिए। ये विकार तथा अशुद्धताएँ संस्कार (छाप) रूप हैं, जो विशेष पदार्थों तथा विषयों के मानसिक भोग द्वारा तथा वासनागत अनुभव के फलस्वरूप मन पर अंकित हो जाते हैं। जब मन भोग, वासना, अनुभव तथा उनकी प्रतिक्रियाओं के जाल से मुक्त हो जाता है और स्वसंतुष्ट तथा अपने ही में स्वतंत्र होकर स्थिर हो जाता है तब मन में समस्त पदार्थ-ज्ञान का प्रकाश स्वतः ही हो जाता है और उसे सर्वज्ञता प्राप्त हो जाती है। इस प्रकार आध्यात्मिक साधना "चित्तवृत्ति" की साधना है।

व्यष्टिगत अहंकार भाव को "प्रवृत्तिमार्ग" के रूप में हम वर्णन कर सकते हैं जिसका अर्थ वाह्यगमन होता है; और जो निवृत्ति "अन्तर्गमन" के रूप से भिन्न है। वाहयगमन की प्रवृत्ति सृष्टि क्रम का एक अंग है जिसके फलस्वरूप इस जगत की स्थिति है। ऋग्वेद में इस सृष्टि के लौकिक उद्देश्य तथा विश्व रचना की उपयोगिता का वर्णन है। समष्टि का लौकिक नियम ही इस विश्व

में व्यष्टि का नियम निर्धारित करता है। यह सृष्टि उस परब्रह्म की इच्छा का फल है जो अपने को अनेक रूपों में प्रदर्शित करना चाहता है-" स एकामयता बहुस्याम प्रजायेय "। उस परब्रह्म ने चाहा कि वह सृष्टि-कर्तृत्व का आनन्द उठावे पर सृष्टि उस समय तक नहीं हो सकती थी, जब तक वह स्वयं (ब्रह्म) इसमें आत्म रूप से निवास नहीं करने लगा। फलतः वह अपने को भौतिक पदार्थों में, जिनमें उसे प्रवेश (व्याप्त) भी करना पड़ा वाह्यरूप से प्रदर्शित कर सका। परब्रह्म को सृष्टि रचना के हेतु ऐसे पदार्थों को प्राप्त करना पड़ा जो इस सृष्टि का सृजन कर सकें तथा इसका आधार बन सकें जिस पर यह सृष्टि स्थिर रह सके। इन दोनों पदार्थों को उसे अपने ही में से निकालना पड़ा क्योंकि एक ब्रह्म के अतिरिक्त वहाँ कुछ दूसरा है भी नहीं। "विराट पुरुष" को सृष्टि-सृजन के हेतु ही विराट-देह की बलि देना पड़ी और इतना ही नहीं प्रत्युत उसे स्वनिर्मित सृष्टि के कण कण में प्राण फूंकना भी पड़ा। एक पल के लिए भी विश्व का निर्माता सुषुप्ति अवस्था को प्राप्त नहीं कर पाता। यदि वह ऐसा करता है और अपने निराकार आत्मस्वरूप में जिसे "हिरण्यगर्भ" कहते हैं, लीन हो जाता है तब उसका अर्थ यही होगा कि सृष्टि अपने आदि रूपमें प्रलयको प्राप्त हो जायगी जहाँ से उसका विकास हुआ था। इसलिए परमात्मा इस स्वरचित सृष्टि के निमित्त अपने पुरुषार्थ से पल भर भी विश्राम नहीं कर पाता। वह गुडाकेश अर्थात् निद्राविजयी है। जिस प्रकार मां का संबंध अपने गर्भस्थित बच्चे से होता है उसी प्रकार ब्रह्म का अवयवी संबंध स्वरचित सृष्टि से है। एक दूसरे का पोषण करता है। इस प्रकार हिन्दू दार्शनिक-विचार इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि अपने पदार्थ विषयक बाह्यगमन क्रम से जिसके फलस्वरूप इस सृष्टि का जन्म हुआ है परब्रह्म प्रत्येक प्राणी में व्याप्त है और साथ ही साथ अंत में प्रत्येक प्राणी अनिवार्य रूप से उसी एक परब्रह्म में अन्तर्गमन के क्रम से विधिवत् निवास करता है अर्थात् अन्त में प्रत्येक प्राणी अन्तर्गमन-नियम के अनुसार बिना किसी रोक टोक के परब्रह्म में लीन हो जाता है।

परमात्मा स्वतः स्वनिर्मित सृष्टि को अपने ही प्रति बलिदान करता है। सृष्टि-रचना विकास क्रम से होती है। अपने आदि स्रोत में जहाँ से उसका विकास हुआ था, वहीं सूक्ष्म रूप से स्थित हो जाने का क्रम ही प्रलय कहलाता है।

प्रत्येक मनुष्य अपने छोटे से संसार का निर्माता है। उसके साथ उसका संबंध ठीक उसी प्रकार का होना चाहिए जिस प्रकार सृष्टिकर्त्ता का अपनी सृष्टि के साथ होता है। धर्म वह संबंध स्थापित करने वाला सूत्र है जो कर्त्ता को अपने कर्म समूह (रचना) से बाँधता है और जो उसे दृढ़रूप स्थिति में रखता है। विराट पुरुष धर्म के आदर्श रूप हैं। ब्रह्म जिन नियमों के आधार पर सृष्टि की रचना और उसकी स्थिति रखता है वे ही नियम प्रत्येक प्राणी के लिए आदर्श रूप होना चाहिए। ईश्वर प्रतिमा के समरूप ही मानव की रचना

हुई है। अंश का रूप पूर्ण के सदृश्य ही होता है। परमात्मा सृष्टि की रचना और स्थिति अपने अनन्त आत्मोत्सर्ग से करता है। इसलिए मनुष्य का भी कर्तव्य है कि वह अपनी रचना की स्थिति अपने आत्म त्याग से करता रहे। मनुष्य ईश्वर की भाँति अपना समूल रूप में आत्माहुति करने की सामर्थ नहीं रखता है परन्तु जितना इस अपूर्ण मनुष्य की शक्ति है उतना आत्मत्याग उसे अवश्य करना चाहिए। धार्मिक शास्त्र प्रत्येक मानव के लिए दैनिक यज्ञों के करने का विधान करते हैं जिनके आधार पर वह अपना आत्म विकास और अपने हृदय की शुद्धि अधिक से अधिक कर सकता है। विराट पुरुष के बृहद लौकिक आत्मोत्सर्ग के आदर्शानुरूप ही इन पञ्च महायज्ञों का विधान किया गया है। इस प्रकार से धर्म आत्मोत्सर्ग का दूसरा नाम है जिसके अनुसार व्यष्टि क्षेत्र का संकीर्ण आतमभाव, समष्टि क्षेत्र के सर्वभूतात्मक भाव में लय हो जाता है।

पहिला यज्ञ "देव-यज्ञ" कहलाता है जिसमें देवताओं या इष्टदेवता को पूजा अर्पित की जाती है क्योंकि मनुष्य का सर्व प्रथम कर्तव्य अपने इष्टदेवता के प्रति ही है। दूसरा यज्ञ "पितृयज्ञ" है जिसमें पितरों अर्थात् अपने पूर्वजों के प्रति श्रद्धा अर्पित आती है जिनसे उसे बहुत कुछ मिला है। प्रत्येक मनुष्य में अपने वंश के लिए अभिमान होना चाहिए और उसे उसके प्रति अतीव सम्मान प्रदर्शित करना चाहिए। तीसरा यज्ञ "ऋषियज्ञ" है जिसके अनुसार ऋषियों की पूजा की जाती है। ऋषि गण ही संस्कृति और ज्ञान के पिता हैं जिनसे मनुष्य मात्र ने भौतिक और आध्यात्मिक ज्ञान पैतृक संपत्ति के रूप में पाया है। चौथे यज्ञ के द्वारा मनुष्य को अधिक से अधिक उदारता तथा सार्वभौमिक दृष्टि कोण बनाने की शिक्षा दी जा सकती है। इस यज्ञ में मनुष्य अपरिचित अतिथि के रूप में समस्त मानव मात्र की पूजा प्रतिदिन करता है। उपनिषदों का आदेश है कि प्रत्येक मनुष्य अतिथियों को देवता के समान माने (अतिथि देवोभव) अतिथि की पूजा देवता की पूजा के सदृश्य है। यही "नृयज्ञ" है। अन्त में "भूतयज्ञ" का विधान है जिसके अनुसार प्रतिदिन समस्त प्राणी की पूजा करके हृदय को विशाल बनाया जा सकता है। समस्त भूतों (प्राणी) की पूजा का इस-लिए विधान है जिससे मनुष्य विश्व से अपने निकटतम संबंध के भाव को प्राप्त कर केवल एक ब्रह्म में लीन हो सके।

इस प्रकार से हिन्दू धर्म सात्विक तथा मूल रूप में सिद्धान्तों और साधनाओं का ही समूह मात्र नहीं है जो किसी एक विशेष जाति को ही मान्य हों। यह आत्म सुधार के हेतु सिद्धान्तों का प्रतिपादन करता है और मोक्ष प्राप्ति के लिए मुमुक्षुओं के खातिर सत्य मार्ग का निर्देशन करता है। यह धर्म को आचार-विचार तथा नैतिक नियमों का शास्त्र मानता है जिसकी सहायता से इसके सिद्धान्तों को जीवन में व्यवहारिक रूप दिया जा सके। ब्रह्मचर्ययुक्त तथा

संयम पूर्ण जीवन अथवा सत्कर्मों के फलस्वरूप मनुष्य आत्मज्ञान, ब्रह्मज्ञान अर्थात् "सर्वथा सत्य" का ज्ञान प्राप्त करता है।

धर्म आत्मविस्तार अथवा आत्मपूर्णता का नियमबद्ध व्यापार है। इसका तात्पर्य यह है कि मनुष्य अपनी व्यष्टि रूपी अहंभाव को प्रगतिशील क्रम से समष्टिगत सर्वभूतात्मक रूप में लय करता जाय और इस लक्ष्य पर पहुँचने के लिए उसे दृढ़ रूप से विश्व बन्धुत्व तथा सार्वभौमिक प्रेम की महत भावना की प्राप्ति का अभ्यास करना चाहिए जैसा कि मैत्री, करुणा, अहिंसा और सत्यरूपी सद्‌गुणों में बताया गया है। ये सद्‌गुण मनुष्य के स्वभाव में निहित हो जाना चाहिए। मस्तिष्क तथा हृदय के पारस्परिक सहयोग से ही हृदय की यह विशालता तथा पवित्रता प्राप्त की जा सकती है। चित्तशुद्धि के लिए मन का योग देना आवश्यक है। इसे (मन) इंद्रियों के वशीभूत होकर विषयों के संबंध में चिन्तन करना छोड़ देना चाहिए। मन का भोग-वासनाओं से सम्पर्क होने पर वे इसे अपवित्र तथा विषयी बना देती हैं; और साथ ही साथ उसके मूलतत्व (आन्तरिक सार) को नष्ट करने का प्रयत्न करती हैं। जड़वादी (संसारी माया ग्रसित) मन अपने को जड़वाद ही में प्रतिबिम्बित करता है। इस पतन से रक्षा तभी हो सकती है जब कि उपर्युक्त बताए हुए उपायों से मन को निवृत्ति की शिक्षा देकर उसे विषय वासनाओं के चंगुल से मुक्त कर लिया जाय। इस प्रकार की निवृत्ति, योग तथा उसके शारीरिक, मानसिक और नैतिक नियमों के अभ्यास से ही प्राप्त हो सकती है।



यज्ञ का स्वरूप



(लेखक– श्री विष्णु महायज्ञ-रत्नपुर के आचार्य श्री पं० भगवत्प्रसाद मिश्र
वेदाचार्य, प्रोफेसर गवर्नमेंट संस्कृत कालेज, बनारस)

यज्ञ के द्वारा प्रजापति ने हमलोगों की मानसिक कामनाएं पूर्ण होने का आदेश दिया है, वह यज्ञ अग्निसन्तर्पण रूप है। अर्थात् अग्नि (देवता) के लिए सौमिक पदार्थों को देने की क्रिया ही यज्ञ है।

श्रुतियों ने "पाङ्क्तो वै यज्ञः" (श० ब्रा० १।१।२।१६) इत्यादि वचनों से आदिभौतिक यज्ञ को पाँच अङ्गों युक्त बताया है। उन प्रधान पाँच अङ्गों का स्पष्टीकरण वायुपुराण, मत्स्यपुराण, और ब्रह्माण्डपुराण में इस प्रकार किया गया है—

" देवानां द्रव्यहविषामृक्सामयजुषां तथा।
ऋत्विजां दक्षिणानां च, संयोगो यज्ञ उच्यते ॥"

अर्थात्, १—देवता, २—हविर्द्रव्य, ३—मन्त्र, ४—ऋत्विज् और ५-दक्षिणा इन पाँचों का सविधि एकत्र कार्यान्वित होना ही यज्ञ होता है।

(१) सम्पूर्ण विश्व की सञ्चालिका, एक महान् आत्मा की अनेक रूपापन्न दिव्य विभूति ही देवता है। प्रधानतया देवताओं की तीन श्रेणियाँ हैं—१—आजानज-देवता, २—कर्मदेवता, ३—आजानदेवता। इन तीनों श्रेणियों में से प्रारम्भ की दो श्रेणियों में हमलोग शरीरत्याग के बाद अपने सत्कर्म की योग्यतानुसार किसी एक दिव्य लोक में अपना फल भोग करते हैं। तीसरी 'आजानदेवता' श्रेणी के सब देवता सर्वदा स्थायी, सृष्टि के प्रारम्भ में प्रजापति से उत्पन्न हैं। इनका पुण्य क्षीण नहीं होता है। वेदमन्त्रों द्वारा इन्हीं सूर्य, चन्द्र, वरुण, रुद्र आदि आजानदेवताओं को स्तुतियों से तथा आहुतियों से सन्तुष्ट किया जाता है। यज्ञ के फल देने का अधिकार भी इन्हीं देवताओं को है। आजान श्रेणी के प्रत्येक देवता दिव्यस्वरूप, मनुष्य की तरह चेतन, हाथ पैर आदि अङ्ग, एवं हाथी घोड़ा आदि भोग्य दिव्य पदार्थों से सम्पन्न रहते हैं। ये अपने दिव्य स्वरूप में सुखानुभव करते हुए, लोकस्थिति के उद्देश्य से सूर्यमण्डल, चन्द्रमण्डल आदि अपुरुषविध प्रत्यक्ष दृश्य स्वरूप रखते हैं। प्राचीन काल में हमारे पूर्वज महर्षि इनके दिव्य

चेतन पुरुषविध स्वरूप का भी दर्शन तथा इनसे बातचीत किया करते थे। और कभी कभी देवता भी उन महर्षियों के आश्रमों में आया करते थे ❀। आज हम में दिव्य स्वरूप के प्रत्यक्ष दर्शन की योग्यता नहीं है, क्योंकि हम अपने को उतने योग्य बनाने के शास्त्रीय उपायों—संस्कार, ब्रह्मचर्य, वेदाध्ययन, श्रौतस्मार्त महायज्ञानुष्ठान, योगाभ्यास, तपश्चर्या आदि को भूल गए हैं। तथापि अब भी पूर्वाचार्यों के उपदिष्ट मार्ग से चलने पर हम देवताओं की प्रसन्नता से अपना मनोरथ सिद्धि प्राप्त कर लेते हैं।

(२) इन आजान देवताओं के विषय में वेद में कहा गया है कि-" इतः प्रदानाद्धि देवा उपजीवन्ति " (श. ब्रा. १।८।५।२४) अर्थात्-महैश्वर्यसंपन्न होते हुए भी देवतागण यज्ञ में दी गई आहुतियों के अभिलषित हविर्द्रव्य-अमृत को पाकर अपनी भूख शान्त करते हैं। एक वार हविर्द्रव्य का जितना अंश देवताओं को दिया जाता है उसे ' आहुति ' कहते हैं। ऐतरेय ब्राह्मणमें बताया गया है कि—

' आहुति एक प्रकार से आहूति है, क्योंकि इन आहुतियों के द्वारा यजमान देवताओं को आहूत करता है अर्थात् बुलाता है। इन आहुतियों को रक्षक होने के कारण ' ऊति ' भी कहा जाता है। ये आहुतियाँ फल प्राप्त करने की सड़कें या गलियाँ हैं। इनके द्वारा यज्ञकर्तृगण अभीप्सित फल प्राप्त करते हैं।' †

शास्त्रीय विधान से दिए गए थोड़े भी हविष् को देवता पर्वतवत् मान लेते हैं। अर्थात् वे उसी हविष् से सन्तुष्ट हो जाते हैं§। अग्निमें हविष् को हवन करना देवताओं के मुखमें ही देना है×। हविष् अग्नि में पक जाने से अमृत हो जाता है‡। देवताओं का आहार अमृत है इसलिए हविर्द्रव्य को अग्नि में छोड़ा जाता है।

(३) उक्त हविर्द्रव्य को देवताओं के पास पहुँचाने के लिए तथा यज्ञसम्बन्धी क्रियाओं में विनियुक्त होने वाले जिस नियमित पदसमूह का उच्चारण किया जाता है उसे 'मन्त्र' कहते हैं।

नित्यज्ञानसंपन्न देवताओं के सन्तोष होने की स्थिरता के लिए भी वाणी के नियमों का निश्चित करना अत्यावश्यक होता है। उन्हीं नियमों का निश्चित स्वरूप—वेदमन्त्र हैं। वेद चार हैं। उनके मन्त्रों का ऋग्, यजुः, साम, अर्थात्

❀ श्रीमद्भागवत ६।१०॥

† "आहुतयो वै नामैता यदाहुतयः एताभिर्वै देवान् यजमानो ह्वयति, तदाहुतीनामाहूतित्वम्, ऊतयः खलु वै ता नाम याभिर्देवा यजमानस्य हवमायान्ति, ये वै पन्थानो याः स्रुतयस्ता वा ऊतयस्त उ एवैतत्स्वर्गयाणा यजमानस्य भवन्ति" (१।२)—

§ "यद्वै देवा हविर्जोषयन्ते तदपि गिरिमात्रं कुर्वते" (श. ब्रा. १।९।१।१०)

× "स यदग्नौ जुहोति तद्देवेषु जुहोति" (श० ब्रा० २।३।१।१९)।

‡ 'एतद्वै हविरमृतं भवति यदग्निना पचन्ति' (श० ब्रा० ६।२।१।९)

पद्य, गद्य, गान, ये तीन रूप हैं। इसलिए चारों वेदों को 'त्रयी' भी कहा जाता है। प्राचीन आर्ष परम्परा में त्रैवर्णिक के लिए उपनयन होने के बाद ब्रह्मचर्याश्रम में आज्ञा दी जाती है कि-❀ 'त्रैवर्णिक को विना किसी उद्देश्य के षडङ्ग वेद का अध्ययन एवं ज्ञान संपादन करना चाहिए'। इस आदेश का भारतवर्षीय त्रैवर्णिक निरन्तर पालन करते रहते थे। आज हम वेदाध्ययन से उदासीन हैं, वैदिक मूलतत्त्वों के अविचार से हम अपनी संस्कृति के प्रति दूषित विचार या अश्रद्धा प्रकट करते हैं। यह भी भारतवर्ष की अवनति का एक प्रधान कारण कहा जाता है। परन्तु हर्ष है अब कुछ भारतीय इस ओर सचेत होने की चेष्टा कर रहे हैं। ईश्वर हम भारतीयों को सुबुद्धि देवे जिससे हम पुनरपि वेदप्रिय बनें और इनके द्वारा अपना उद्धार करें।

(४) यज्ञ के कार्यों का यथाविधि अनुष्ठान करने या करवाने के लिए जिस विद्वान् ब्राह्मण को वरण अर्थात् शास्त्रीय वस्तु देकर अपनाया जाता है उसे 'ऋत्विज्' कहते हैं।

(५) 'दक्षिण' उस देयद्रव्य को कहते हैं जो देवता और ब्राह्मणों को पूजा या यज्ञ के अन्त में दिया जाता है।

ये यज्ञ के प्रधान पांच अङ्गों के सूत्रमात्र रूप हैं।

क्या यज्ञ आवश्यक है ?

भगवती श्रुति ने कहा है कि—"ऋणं ह वै जायते योऽस्ति स जायमान एव देवेभ्य ऋषिभ्यः पितृभ्यो मनुष्येभ्यः ॥"—[श० ब्रा० १।७।२।१]

मनुष्य के जन्म लेते ही उसके चार ऋण (कर्ज़) हो जाते हैं। १—देवऋण, २—ऋषिऋण, ३—पितृऋण और ४—मनुष्य ऋण। अथर्ववेद में प्रार्थना है कि *हम सब इस मृत्युलोक, दूसरे अन्तरिक्ष लोक, तीसरे द्युलोक से अनृण (कर्जरहित) रहें। हम अपने गन्तव्य सब मार्गों को ऋणरहित होकर पार कर जावें।' इससे यह उपदेश मिलता है कि मनुष्य को इन चारों ऋणों का चुकाना परम आवश्यक है। इन चारों ऋणों में से १—ऋषिऋण ब्रह्मचर्यपूर्वक वेदाध्ययन से, २—पितृऋण धर्म्य सन्तान से, ३—मनुष्यऋण मनुष्यों के स्वागतादि से चुकाया जाता है। ४—देवऋण के लिए श्रुति कहती है कि—"स यदेव यजते तेन देवेभ्य ऋणं जायते, तद्धेभ्य एतत्करोति यदेनान्यजते यदेभ्यो जुहोति।" (श० ब्रा० १।७।२।२)

❀ "ब्राह्मणेन निष्कारणः षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च" (महभाष्य)

* अनृणा अस्मिन्ननृणाः परस्मिन् तृतीये लोके अनृणाः स्याम। ये देवयानाः पितृयाणाश्च लोकाः सर्वान् पथो अनृणा आ क्षियेम (६।११७।३)

देवऋण को चुकाने के लिए मनुष्य जब यज्ञ करता है तब मनुष्य का ऋण देवताओं पर चढ़ जाता है। देवतागण मनुष्यों के ऋण के बदले में फल देकर उऋण हो जाते हैं।

इस प्रकार वेदवचनों से यह सिद्ध होता है कि देवताओं के जन्मसिद्ध कर्ज़ चुकाने के लिए प्रत्येक मनुष्य का यज्ञ करना परम आवश्यक कर्तव्य है। इसके बिना किए जन्मान्तरीय कर्मलब्ध सुख से ही अपने को सुखी समझना कर्ज़ के रुपयों से घी पीने वाले मनुष्य की तरह समझना चाहिए।

मनुष्य या चोर

भूमिस्थित प्रत्येक पदार्थ सोम होने के कारण द्युलोकस्थित देवता स्वरूप अग्नि के पास जाना चाहते हैं, परन्तु उन पदार्थों को मनुष्य रूप अग्नि आक्रमण करके अपने उपभोग में ले लेता है। इस तरह देवताओं की वस्तु हरण करने के कारण मनुष्य चोर हो जाता है। इसलिए शास्त्रों में कहा है—"तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः" (भ० गी० ३।१२)—अर्थात् देवताओं के पदार्थों को जो उनके बिना दिए खाता है वह चोर है, अतएव दण्डनीय है। ऋग्वेद में भी स्पष्ट रूप से कहा है—

"मोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः सत्यं ब्रवीमि वध इत्स तस्य। नार्यमणं पुष्यति नो सखायं केवलाघो भवति केवलादी"—(ऋ० १०।११७।६)

अनजान मनुष्य व्यर्थ अन्न बरबाद करता है। अन्न की बरबादी मनुष्य का मरण है, क्योंकि वह अज्ञतावश उस अन्न के द्वारा न तो सूर्य देवता की पुष्टि करता है और न अपने सजातीय देवता, अतिथि, गुरु, विप्रादिकों को ही संतुष्ट करता है। इसलिए जो अकेला ही अन्न (सोम) का उपभोग करता है वह केवल पाप ही खाता है। इसी वेदादेश को गीता में भगवान् ने इन शब्दों में कहा है—"भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्" (३।१३) यदि उन देवताओं के प्राकृतिक सौमिक पदार्थ उन्हें ही समर्पण कर दिए जाते हैं, तो वे उनसे तृप्त होकर उनको निर्मल बनाकर पुनः नीचे की ओर ही छोड़ देते हैं। छोड़ा गया सोम परिशुद्ध आनन्दमय अमृत है। यह पूर्ण तृप्ति, बुभुक्षा की पूर्ण शांति करता है। इस शुद्ध अमृत के मिलते हुए भी चोरी करना हम लोगों की परम अज्ञता है। ऐकपदिक काण्ड (३।१।२०) में स्पष्ट कहा है—

"या वै प्रजा यज्ञे अनन्वाभक्ताः पराभूता वै ताः,
एवमेवैतया इमाः प्रजा अपराभूतास्ता यज्ञमुख आभजति"।

जो प्रजा यज्ञ में सहयोगी नहीं है वह पराभूत है—कर्ज़ खाने तथा चोर होने के कारण परतन्त्र है। और जो यज्ञ में सहयोग देनेवाली प्रजा है वह अपराभूत है—कर्ज़ पटा देने तथा सज्जन होने के कारण स्वतन्त्र है। देवताओं

के फलदातृत्व रहते हुए भी यज्ञ ही फलदाता समझा जाता है। अतएव ब्राह्मणात्मक वेदभाग में कई स्थलों पर यज्ञ को ही फलप्रद बताया है—'यज्ञं वा एष जनयति यो यजते, एनेन हुता ऋत्विजस्तन्वते तं जनयन्त्यथाशिषमाशास्ते तामस्मै यज्ञ आशिषं सन्नमयति श्रामाशिषमाशास्ते यो मामजीजनतेति।'' (श. ब्रा. १।९।१।२)—'जो यज्ञ करता है वह यजमान उस यज्ञ को उत्पन्न करता है। यजमान के आमन्त्रण से ऋत्विज् लोग यज्ञ को सांगानुष्ठान द्वारा बढ़ाते हैं। इसके द्वारा श्रद्धालु+ यजमान जो चाहता है उसे यज्ञ पूर्ण सफल करता है। इसलिए देवता फलदाता है, तब भी यज्ञ ही फल देता है।

यज्ञरहस्य

यहाँ यह बताना अनावश्यक न होगा कि यज्ञ का वास्तविक रहस्य क्या है। इसके लिए संक्षेप में यही समझना चाहिए कि विश्व की संचालिका शक्ति है 'देवता शक्ति'। देवताओं का आहार है सोम। देवता अपने खाने के लिए सोम का उत्पादन स्वयं ही करते हैं परन्तु अपने द्वारा उत्पन्न सोम को खिलाने के लिए मनुष्य की; तथा उत्पादन-समर्थ रहते हुए भी मनुष्य के प्रयत्न की अपेक्षा रखते हैं। इसलिए देवता समय पर अपना आहार सोम चाहते रहते हैं। उन्हें अपने समय में पर्याप्तरूप से सोम न मिले तो वे क्षुधापीड़ित रहते हैं। तथा बिलकुल न मिलने पर उस पदार्थ को छोड़कर चले जाते हैं, जिससे वह पदार्थ नष्ट हो जाता है। इसका स्थूल उदाहरण इस प्रकार समझिए कि पौधे अर्थात् तद्गतदेवता पर्याप्त जलरूप सोम को न पावें तो वे मुरझाकर अपनी भूख प्रगट करते हैं। यदि इस भूख को समझकर पुनरपि समय पर सोम दे दिया जाय, तो वे पूर्ववत् अपने स्वरूप में हरेभरे रह सकते हैं। और यदि उनको सोम देना बिलकुल बन्द कर दिया जाय, तो देवता उसे छोड़ देगें, जिससे वह पौधा सूखकर नष्ट हो जायगा। इसी प्रकार मनुष्य अपने में यदि अन्नरूप सोम को देना बन्द या मात्रा से कम कर दे तो उसके शरीर स्थित देवता विकार या शक्तिहीनता उत्पन्न करके अपनी बुभुक्षा प्रगट करेंगे। यदि देवताओं को सोम नियमानुसार इतना पर्याप्त दे दिया जाय कि वे सामयिक क्षुधा शान्त करके इकट्ठा भी रख लें तो जब तक वह एकत्रित् सोम रहेगा तब तक उनकी तृप्ति एवं कार्यशक्ति ठीक रहेगी।

इस सिद्धांत से यह भी जान लेना चाहिए कि संसार में दो प्रकार की वस्तुएं हैं ×। उन दोनों को अग्नि-सोम, या अत्ता अन्न, या भोक्ता-भोग्य, या प्राण-रयि कहा जाता है। अग्नि खाने वाला सोम खाद्य होता है। जो अग्नि सोम का भोक्ता है वह अग्नि किसी अग्नि के प्रति सोम अर्थात् भोग्य भी हो

+ 'श्रद्धया सत्यमाप्यते' वाजसनेय संहिता १९।३० ॥ गीता १७।२८ ॥

× 'द्वयं वा इदं न तृतीयमस्ति' श. ब्रा. १।६।३।२३

जाता है। जिस तरह औषधियाँ (गेहूँ आदि) जलरूप सोम का भक्षण करतीं हैं, तथापि मनुष्य के लिए वे स्वयं सोम रूप में उपस्थित होती हैं। प्रत्येक सोम में मलिन और शुद्ध दोनों प्रकार के अंश रहते हैं। अग्नि अर्थात् देवता भी भिन्न भिन्न रहते हैं। प्रथमतः सोम जिस अग्नि में गिरता है उस अग्नि में जितनी मात्रा सोम ग्रहण करने की शक्तिअभिव्यक्त है, उतनी मात्रा सोम को ही खाकर वह तृप्त हो जाती है, और शक्तिशाली बनी रहती है। अग्नि के द्वारा मात्रानुरूप सोम खा लिए जाने पर उस सोम का मलिनभाग निकल जाता है। और वह सोम जिसे वह अग्नि नहीं खा सकी पहिले की अपेक्षा शुद्ध तथा हलका होकर ऊपर की ओर उछलता है। ऊपर उठते समय उस सोम को खाने की शक्ति रखने वाली अग्नि उसको खाती है। खाने पर पूर्ववत् सोम में से अग्नि के अनुरूप मल निकल जाता है। इस प्रकार जहां तक अग्नियों का विकास है वहां तक उपरिकथित शोधनक्रिया से सोम की शुद्धि होती रहती है। अग्निमण्डल के बाहर बचा हुआ सोम परम निर्मल शुद्ध अमृत रूप रहता है। क्रमशः इस शुद्धतम सोम के एकत्र होने पर वह सहस्रदल कमल में घनीभूत सोममय विन्दु हो जाता है। इसी विन्दु को शास्त्रों में चन्द्र-विन्दु भी कहा है। यह चन्द्रविन्दु अचिन्त्य शक्ति के प्रभाव से द्रव होकर नीचे की ओर टपकता है। इस टपकने को योगिजन अमृतस्राव या सुधाक्षरण कहते हैं। इस परिशुद्धतम सोम के सूक्ष्मकण से देवता परम आप्यायित हो जाते हैं। और समग्र देह मन प्राण इन्द्रिय प्रभृति भी आप्यायित होकर आनन्द-मग्न होजाते हैं।

इस अग्नि-षोम क्रिया में अग्नि (देवता) द्वारा सोम का ग्रहण, ग्रहण किए सोम को निर्मल बनाकर छोड़ना, छोड़े गए अमृत से तृप्ति होना ही प्रधान बातें हैं। यही यज्ञ का रहस्य है। इस रहस्य को स्पष्ट रूप में इस तरह समझिए कि देवतागण यज्ञ के द्वारा अपने पदार्थों को ग्रहण करते हैं। यह ग्रहण करना ही अग्नि में छोड़ी गई आहुति का सूर्य के पास पहुँचना है। देवताओं का उसको निर्मल बनाकर छोड़ना ही वृष्टि है। इस वृष्टिरूपी अमृत के द्वारा पूर्ण तृप्ति पाना अर्थात् लोकतृप्तिसाधन के लिए अन्न की प्रचुर मात्रा में उत्पत्ति है।

इस समय क्या करें ?

आज भारत ही नहीं, अपितु विश्व अशान्तिग्रस्त है। हम भारतवासी अपने महत्व को भूल रहे हैं। यदि कुछ स्मरण करते हैं तो अपने को इतना परिक्षीण पाते हैं कि हमें अपना पूर्व प्राप्त महत्व स्वप्न समझ पड़ता है। भारत पर आपत्तियों के पहाड़ टूटते से दिखाई पड़ रहे हैं। हम स्वयं निर्बल हैं, दूसरे उदासीन हैं। भारतवासियों ने प्रमाद वश दूसरों की शिक्षा से प्रभावित होकर धर्म में अरुचि तथा अधर्म का आश्रयण कर लिया है और देवताओं का आप्यायन करना छोड़ दिया है। इस कारण " अतर्पिता देहाद्रुधिरं पिबन्ति "

(पा० गृ०) 'देवताओंका तर्पण न करने पर वे देह से रुधिर पीते हैं' का शास्त्रादेश; रणचण्डी का विशाल विलास, बंगाल में क्षुधापीड़ितों का भयंकर मरणदृश्य, वरुणा गोमती आदि नदियों का अश्रुत जलविकास आदि रूप में प्रत्यक्ष जागृत हो रहा है।

इस समय हमलोगों को विश्व में विशेषतया अपने देश भारतवर्ष में शान्तिस्थापन, धर्मग्लानिअधर्माभ्युत्थान निवृत्ति, एवं विश्वकल्याण के लिए कोई उपाय करना चाहिए।

प्रधानतया यज्ञ ही ऐसा साधन है जिसके द्वारा विश्व का कल्याण हो सकता है। विश्वकल्याण के लिए पाठ जप आदि जितने भी उपाय हैं उनके द्वारा अमृत इतनी अधिक मात्रा में नहीं बनता, जितना यज्ञ से बनता है।

आज देवतागण अनाप्यायित होने के कारण भूखे की दशा में हैं। बहुत दिनों का बुभुक्षित अपनी बुभुक्षा शान्ति के लिए बहुत से अन्न की इच्छा करता है, इसीलिए शास्त्रकारों ने ऐसे समय के लिए आदेश दिया है कि—

सुघोरायामनावृष्ट्यां भूकम्पे च सुदारुणे।
परचक्रागमे जाते क्षेत्रे विंशतियोजने।
देशे सर्वत्र शान्त्यर्थं देवशान्तिमखं चरेत्। (शान्तिकल्प)

घोर अनावृष्टि, भयंकर भूकम्प, दूसरे राज्य के आक्रमण के समय में देश में सब जगह २०,२० योजन अर्थात् ८०,८० कोस पर शान्त्यर्थ यज्ञाद्यनुष्ठान करना चाहिए।

मानवता के प्रति निवेदित धर्म की आत्म-कथा

(रचयिता—श्री पं० किशोरीलाल मोहन त्रिपाठी, विशारद)

आदि जीवन—श्रोत हूँ।

धो रहा तुमको युगों से धो रहा, अमरता के बीज तुममें बो रहा;
सत्य तुममें प्राण हो कल्याण कर, श्री बने तन्वंगि! तनु विज्ञान स्वर;
जूझता जग से यही प्रिय ध्येय धर, दीप तुम तो स्नेहमय मैं जोत हूँ॥
रुक न सकता मै अमर संगीत हूँ, पूर्ण कर दूँ हार सारी, जीत हूँ;
'विष्णु' का परिचय अतनु में दे रहा, ताप हरने को तुम्हारे शीत हूँ,
जगज्जलनिधि तुम तितीर्षा पूर्ण हो, विभु स्वयं माँझी सुलभ मैं पोत हूँ॥

दशावतार-रहस्य

(दशावतार पर एक विशेष दृष्टिकोण से विचार)



(लेखक—मीमांसा भूषण श्री. पु० वा० साटे, बी. ए., एल. एल. एम., एम. आर. ए. एस., अनुवादक-श्री प्यारेलाल गुप्त।)

जब कभी कोई दैवी अथवा असाधारण मानवी शक्ति मनुष्य या किसी अन्य सजीव प्राणी का रूप धारण कर इस मृत्यु लोग में वास करने आती है तब उस देवता ने या उस शक्ति ने इस भूमण्डल पर अवतार धारण किया है ऐसा लोग समझने लगते हैं। इस ढंग की कल्पना केवल भारत ही में नहीं प्रत्युत प्रायः सभी सभ्य देशों में पाई जाती है। परन्तु प्रस्तुत लेख में हम केवल इसी बात पर एक विशेष दृष्टि कोण से विचार करेंगे कि हिन्दुओं की, दशावतार के सम्बन्ध में जो कल्पना है उसका मार्मिक रहस्य क्या है।

अवतार सम्बन्धी कल्पना मुख्यतः वैष्णवों की है। शैव तो मूल देवता का ही भजन-पूजन करते हैं। सिवाय इसके शिव प्रसिद्ध पराङ्‍ मुख अर्थात् विरागी देवता हैं। स्मशान उनका निवास स्थान है और वे परम त्यागी हैं। परन्तु विष्णु इस ढंग के देवता नहीं हैं। विष्णु विश्व के निर्माता, पालक और संरक्षक हैं। शिव अर्थात् रुद्र का काम संहार करना है। किन्तु विष्णु जगत की उत्पत्ति से लगाकर उसको तथा उस पर निवास करने वाले प्राणिमात्र को कार्यक्षम बनाने के लिये जिम्मेदार हैं। यह विश्व उनका कार्य-क्षेत्र है।

वह विष्णु-शक्ति ही है जो बालक को जन्म देकर माता के रूप में उसका लालन-पालन करती है और उसके बड़े होते तक प्रायः प्रत्येक प्रकार से उसकी सहायता करती है। उसे वह कभी खिलाती-पिलाती है, कभी लाड़-प्यार करती है और कभी उस पर नाराज भी होती है। परन्तु जहां वह कार्यक्षम हुआ-योग्य बना कि वह तटस्थ हो जाती है और उसीके सुख में अपना सुख मानती है—उसी को सुखी देख आप सुखी होती है। माता को अपने बालक के जीवन के भिन्न भिन्न अवसरों पर, आवश्यकता और परिस्थिति के अनुसार, भिन्न भिन्न रूप धारण कर उसका हित-चिन्तन करना पड़ता है, ठीक इसी प्रकार विष्णु को भी विश्व-कल्याण के लिए, विश्व की उत्पत्ति से लगाकर जबतक वह स्थित रहेगा तब तक पृथक पृथक

अवसरों पर परिस्थिति के अनुसार पृथक पृथक रूप-अवतार-धारण करना पड़ा है और पड़ेगा। विष्णु एक ऐसी शक्ति है जो पहले विश्व को स्थित में लाती है फिर उसकी वृद्धि करती है, वृद्धि के अनुकूल परिस्थिति उत्पन्न करती है; उस पर चराचर प्राणियों का निर्माण करती है, उनका लालन-पालन और संरक्षण करती है, और उन्हें उन्नति का मार्ग निर्देश कर उन्हें कार्यक्षम बनाती है। ये जिम्मेदारियां विष्णु-शक्ति की हैं। जिस प्रकार माता बालकों को खेल कूद में लगाकर स्वयं गृह-कार्य में दत्तचित्त होती है पर जब बालक परस्पर लड़ने लगते हैं तब उसे अपना काम बीच ही में छोड़कर झगड़ालू बालक को डांटना-डपटना पड़ता है, सताये गये बालक का आंसू पोंछकर उसका दुःख हलका करना पड़ता है, और उनमें शांति स्थापन करना पड़ती है, ठीक इसी प्रकार विष्णु को यदि इस विश्व के कार्य में कहीं जरा भी गड़बड़ी हुई और उसके परिणाम स्वरूप उस देवता के निर्माण की हुई प्राणि-सृष्टि में कहीं जराभी त्रास हुआ कि उसे-इस सृष्टि के उत्पन्न, पालन और संरक्षण करने के जिम्मेदार विष्णु को-भूतल पर आकर संकट निवारण करना पड़ता है। भगवान को कब अवतार धारण करना पड़ता है इस सम्बन्ध में श्रीमद्‌भगवत् गीता में लिखा है—

" यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशायच दुष्कृताम।
धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥ "

उपर्युक्त श्लोक में हिन्दुओं के हृदय में परमेश्वर के अवतार के संबंध में कैसी उदात्त कल्पना है इसका पता लगता है। इसी प्रकार की कल्पना हरिवंश पुराण के ४१ वें अध्याय के १७ से २० वें श्लोकों में भी निहित है। अवतारत्व मध्ययुगकालीन तथा अर्वाचीन हिन्दू धर्म का एक प्रमुख तत्व है।

गृह स्वामिनी अपनी संतान की रक्षा और लालन पालन तथा शिक्षा के लिए जिम्मेदार है पर यदि माता का अभाव हो गया तो फिर यह सब कार्यभार परिवार की किसी दूसरी सयानी स्त्री के कंधोंपर पड़ता है। तब फिर उस घर में उसी की माता के समान प्रतिष्ठा होती है। तदनुरूप ही इस विस्तृत विश्व को जो शक्ति अबाधित रूप से चलाती है, जिसकी दृष्टि प्रत्येक व्यक्ति के छोटे से छोटे काम पर रहती है उसे कोई परमेश्वर कहता है और कोई अन्य नाम से स्मरण करता है। पर सच पूछिए तो यहां नामका कोई महत्व नहीं है। जिस शक्ति का अनुभव प्रत्येक व्यक्ति को प्रतिक्षण होता रहता है, उसी शक्ति को हिन्दूगण विष्णु देवता कहते हैं। माता को मा कहो, जननी कहो, आई कहो, या मदर कहो, इससे कुछ अन्तर नहीं पड़ता। वह तो माता है, उसे मातृ-धर्म निभाना ही होगा। वह तो सब का कल्याण चाहेगी ही। वह गृह-स्थित देवी सब को

वात्सल्य भाव से देखेगी ही। इसी प्रकार विश्वको उत्पन्न करनेवाली और विश्वोन्नति को साह्य देनेवाली शक्ति को किसी भी नाम से आपने पुकारा तो उसमें रत्तीभर फर्क होने वाला नहीं है। यही शक्ति हिन्दुओं के द्वारा विष्णु कही जाती है।

जिस प्रकार बालकों में झगड़ा हो जाने पर माता को अपना काम छोड़ कर झगड़ा निपटाना पड़ता है, प्रसंगानुसार दण्ड देना पड़ता है, उसी प्रकार जब संसार की उन्नति के मार्ग में बाधा आने लगती है तब बाधा को, उस संकट को, उस कष्ट को निवारण करने के लिए विश्व की संचालक शक्ति को परिस्थिति के अनुकूल मार्ग ग्रहण करना पड़ता है, यही विष्णु देवता के अवतार सम्बंधी कल्पनाओं की मुख्य भूमिका है।

विश्व के हितार्थ ही विष्णु अवतार लेते हैं, इस कल्पना के मस्तिष्क में अच्छी तरह पैठ जाने के अनन्तर जब कभी किसी व्यक्ति के द्वारा चाहे उसके बुद्धिबल से हो या तेजबल से हो, विश्व का कुछ भी कल्याण-साधन हुआ तभी हिन्दुओं की प्रवृति उस व्यक्ति विशेष को विष्णु का अवतार मानने की ओर बढ़ती गई। ऐसी अवस्था में यदि हिन्दू-जनता किसी भी महान त्यागी, विरागी और महात्मा को जिसके प्रयत्नों से विश्व की सुखशान्ति में थोड़ी भी वृद्धि हुई हो विष्णु का अवतार मान ले तो आश्चर्य ही क्या ?

जो लोग परमेश्वर को नहीं मानते उनका कथन है कि यदि ये महान सुधारक और नेता परमेश्वर या सर्वसामर्थशाली शक्ति के अवतार होते तो उन्हें इस सांसारिक जीवन में दुःख कैसे व्यापता ? इस आक्षेप का उत्तर बड़ा सरल है। ये त्यागी और महान नेता काल विशेष की विचार प्रणाली के प्रतीक होते हैं। जनता जिन विचारों को पसंद करती है-उनका कायल होती है पर साहस के अभाव से उन्हें प्रकट नहीं करती-उनके अनुरूप अपना आचरण नहीं बनाती उन्हें ये नेता बेधड़क जनता के सामने रखते हैं और साथ ही उन विचारों को कार्यरूप में परिणत करते है, उनके अनुसार स्वयं चलते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि ऐसे व्यक्तियों को कष्ट तो अवश्य होता है परन्तु उनके साहस को देखकर जनता भी साहसी हो जाती है, उसकी प्रगति के प्रवाह में वेग आ जाता है, वह अधिक धैर्यवान हो जाती है, उसमें सहिष्णुता बढ़ जाती है और वह अपने हृदयगत विचारों को कार्य का रूप देने के लिए कटिबद्ध हो जाती है। ऐसी शक्ति उसे जिस व्यक्ति के द्वारा प्राप्त होती है उसे यदि वह ईश्वर की विभूति समझने लगे या उसे ईश्वर का अवतार ही समझने लगे तो यह स्वाभाविक ही है। जो नेता जनता के लिए आत्म त्याग करते हैं, उसके सुख और समृद्धि के लिए सत्य के सहारे पर अपना बलिदान कर देते हैं उसे यदि श्रद्धालु जनता परमात्मा का अवतार समझ ले तो इसमें कुछ भी आश्चर्य नहीं है।

लोक-हित की दृष्टि से विविक्षित काल में विविक्षित कार्य करना आवश्यक होता है परन्तु साधारण जनता में धैर्य, साहस, कार्यक्षमता आदि गुणों के अभाव से यह कार्य कुछ इने गिने व्यक्तियों को करना पड़ता है जो कार्य की महत्ता को समझकर, अपने उद्देश्यों की पूर्ति और सफलता के लिए निर्भय होकर जनता का नेतृत्व ग्रहण करते हैं और अपने प्रयत्नों द्वारा समाज-सुधार रूपी रथ को आगे बढ़ा कर अवतारी पुरुष माने जाते हैं। सच पूछिए तो मानवी प्रगति का इतिहास इन नेताओं के प्रयत्नों का इतिहास है। यदि आप इसी दृष्टिकोण को सामने रखकर संसार के इतिहास का सूक्ष्मतया अवलोकन करेंगे तो हमारी ऊपर लिखी बातें पूर्णतया सिद्ध होंगी। इसी सिद्धान्त को आप शास्त्रीय भाषा में कह सकते हैं कि "अवतारों का इतिहास ही मानव जाति की प्रगति का इतिहास है।" इन पंक्तियों के लेखक ने इसी दृष्टिकोण से हिन्दुओं के दशावतार पर विचार किया है।

कुछ पुराणकार अवतारों की संख्या २१ मानते हैं और कुछ १०; परन्तु कुछ पुराणकार बौद्ध को अवतार नहीं मानते। पुराणकार कई हो गये हैं। उनका मुख्य उद्देश रहा है कि कथा द्वारा धर्म और समाज के उच्च तत्त्वों को तत्कालीन जनता के सामने रखना और उन्हें व्यवहार में लाने की शिक्षा देना। कुछ पुराणकार तो प्रथम श्रेणी के विचारवान पुरुष थे और कुछ उनसे निम्न श्रेणी के, पर प्रायः सभी पुराणकारों का यही उद्देश रहता था कि लोगों का ज्ञानवर्धन उनकी कथाओं के द्वारा हो। पुराणकारों में सबसे श्रेष्ठ व्यास ऋषि थे तथा दूसरे सूत ऋषि थे। पुराणों में कथा का प्रारम्भ प्रायः इस प्रकार पाया जाता है—"सूत ऋषि ने नैमिष्यारण्य में राजा जनमेजय तथा अन्य ऋषियों से कहा कि"—प्रायः सभी पुराणकारों ने अपनी कथाओं का आरम्भ इसी ढंग पर किया है या यह लिखा है कि श्री व्यासजी ने इस कथा का दिग्दर्शन इस प्रकार किया था। समस्त पुराणकार एक ही विचार के नहीं थे और उनका अस्तित्व भी पृथक पृथक समय में पाया जाता है। फलतः एक ही कथा का वर्णन भिन्न भिन्न पुराणकारों ने भिन्न भिन्न ढंगसे कर दिया है और कभी कभी तो ऐसी परस्पर-विरोधी बातें मिलती हैं कि पाठकों को सन्देह होने लगता है कि व्यासजी ने या सूतजी ने भिन्न भिन्न पुराणों में इसी एक कथा को दूसरे दूसरे ढंग से कैसे वर्णन किया है। परन्तु ध्यानपूर्वक पढ़ने से यह ज्ञात हो जाता है कि पुराणों का एक नाम होने पर भी पुराणकार भिन्न भिन्न हैं और उनका जन्म भी भिन्न भिन्न काल में हुआ था, तथा उन्होंने अपनी अपनी विचार-प्रणाली के अनुसार कथा प्रसंग का वर्णन कर उनमें अन्तर उत्पन्न कर दिया है। सिवाय इसके इन पुराणकारों ने जो कुछ कहा है वह व्यासजी, सूतजी या शंकरजी के नाम से कहा है, अन्य किसी का नाम नहीं पाया जाता।

इस संसार में प्राणी पहले एकावयवी (cellular) उत्पन्न हुए। जीवित रहने के लिए उन्हें गतिवान होना आवश्यक जान पड़ा। अतएव इच्छा शक्ति के

ओर से उन्हें अवयव प्राप्त हुए। इन अवयवों के सहारे से उन्हें सजीव रहना सुलभ हो गया। मछली एक ऐसा प्राणी है जो एकावयवी प्राणी में किंचित् उत्क्रान्ति होने के पश्चात् अस्तित्व में आई। इस प्रकार की शरीर रचना वाले प्राणी पानी ही में रह सकते हैं। बिना पानी से बाहर आये और धरती पर निवास किये, उनका शारीरिक या मानसिक विकास होना अशक्य था। महासागर के अथाह जल में रहने वाले प्राणी को हलचल करने के लिए प्रकृति का सहारा लेना आवश्यक था। जड़ सृष्टि से लड़कर अपना अस्तित्व बनाये रखना फिर धरती पर आकर उसे अपना स्थायी निवास स्थान बनाना, इसके लिये काफी समय लगा होगा। एकावयवी प्राणी का पानी से निकल कर धरती पर रहने वाले शरीर धारी प्राणी के समान विकसित होने में किन किन सीढ़ियों से गुजरना पड़ा होगा, उसका विकास क्रमशः किस प्रकार हुआ होगा इसका रहस्य मत्स्यावतार से कच्छपावतार और फिर कच्छपावतार से वराहावतार से प्रकट होता है। पानी में रहने वाली मछली विकास क्रम के सिद्धान्तों से कछुआ होकर धरती के सान्निध्य में आ गई और फिर वराह बनकर धरती पर निवास करने लगी।

प्राणिमात्र का प्रथम कार्य है, सजीव रहना। सजीव रहने की कला का दिग्दर्शन कुछ तो उसे प्रकृति से मिला और कुछ उसने स्वयं प्रकृति के सहारे प्राप्त कर लिया। एक बात ध्यान में रखना आवश्यक है कि जीवन की प्रथम तीन अवस्थाओं में प्राणिमात्र का विकास जीवन शास्त्र के अनुसार होना आवश्यक था। मछली एकावयवी होने के कारण केवल पानी में रह सकती है पर कछुवा समय समय पर धरती पर भी रह सकता है और मुख्यतःधरती पर रहनेवाला प्राणी है। इस प्रकार तीन अवस्थाओं को पार कर प्राणी जल से थल पर आ गया। प्रकृति से उसे पथ प्रदर्शन मिला और फिर वह उसी के सहारे अपनी प्रगति करने लगा। मत्स्य, कच्छ और वाराह इन तीन अवस्थाओं की कल्पना का रहस्य यही है। पुराणकारों ने इन तीन अवतारों द्वारा सृष्टि के आरम्भिक इतिहास का वर्णन किया है और विष्णु देवता ने इन तीन अवतारों को धारण कर सृष्टि को सजीव रखने में सहारा दिया है।

इस प्रकार जलचर प्राणी थलचर बन गया और उन्नति के मार्ग की ओर वेगपूर्वक बढ़ना आरम्भ किया। जीवित रहने के लिए स्वसंरक्षण करना आवश्यक होता है और स्वसंरक्षण के लिए शारिरिक बल की जरूरत पड़ती है। प्रारम्भ में जीवित रहने के लिए जिस प्रकार का बल उपयोगी था, उसे पाशविक बल कह सकते हैं। जीवित रहना यह उस समय के जीवन की पहिली समस्या थी और उसके लिए शारीरिक बल की अतीव आवश्यकता थी। जीवन के प्रारम्भ में प्राणिमात्र के लिए बलोपासना आवश्यक थी।

जीवन संग्राम में सफलता पाने के लिये वल का उपयोग करना यह प्राणि सृष्टि का नैसर्गिक नियम (instinct) या स्वाभाव है। कर्तव्य या धर्म (duty) वश कोई ऐसा करता है, ऐसा कोई न समझे क्योंकि कर्तव्य या धर्म के विषय में मनुष्य विचार को प्रधानता देता है। पर स्वभाव के सम्बन्ध में विचार की जरूरत नहीं पड़ती। अतएव मनुष्य जाति ने जीवन के आरम्भ में वलवर्द्धक पर विशेष ध्यान दिया। जब मनुष्य प्राणी समूह वनाकर रहने लगा तब अपना अस्तित्व वनाये रखने के लिए उन समूहों ने वलोपासना का प्रारम्भ किया। पहले तो वह वलपूर्वक स्वसंरक्षण करने लगा. पश्चात् बुद्धि के वल पर उसने वलसंवर्धन का मार्ग पकड़ा। नृसिंहावतार उस समय के सामाजिक स्थिति का प्रतीक है।

इस सम्बन्ध की पौराणिक कथा इस प्रकार है—राजा हिरण्यकश्यप भगवान शंकर की कृपा से करीव करीव अमर हो चुका था और वह इस अर्थ में कि न तो वह रात में मर सकता था न दिन में, न घर में मर सकता था न घर के वाहर। साथ ही वह वड़ा शक्तिशाली और अन्यायी था। उसका नाश करने के लिए प्रवल पाशविक वल की जरूरत थी। पर केवल वल मात्र से कार्य सिद्ध हो नहीं सकता था। शंकरजी के वर को सार्थक करने के लिए वल और बुद्धि का सहयोग होना आवश्यक था। पाशविक वृत्ति से भरे हुए समाज को अव बुद्धि के उपयोग की जरुरत मालूम होने लगी। खम्भे को फाड़कर निकले हुए नृसिंह ने (अर्थात बुद्धि का उपयोग करने वाला परन्तु पाशविक वल पर पूर्ण आधार रखने वाला समाज ने) हिरण्यकश्यप का वध घर की ओलती पर सन्ध्या के समय किया। इस प्रकार उसकी मृत्यु न घर के भीतर हुई और न घर के वाहर, और न दिन में हुई और न रात में। अतः नृसिंहावतार उस समय के ऐसे सामाजिक स्थिति का प्रतीक है जो वल पर भरोसा रखते हुए बुद्धि के उपयोग का भी इच्छुक है। उस समय प्रह्लाद के सदृश उच्च विचारों के भी मनुष्य थे और हिरण्यकश्यप के समान नीच दानव भी थे। पर साधारण समाज वल पर भरोसा रखते हुए बुद्धिका भी उपयोग करने वाला था।

बुद्धि वल को पराजय कर सकती है यह वात मानवी समाज के ध्यान में जहाँ एक वार आगई उसने बुद्धि-विकास की ओर अधिक ध्यान देना आरम्भ किया। समाज इस वात को भूल चला कि हिरण्यकश्यप का नाश करने के लिए जितना बुद्धि वल की जरुरत थी उतना ही शारीरिक वल की भी। परन्तु बुद्धिवल सभी प्राप्त कर सकते हैं यह वात अनहोनी! थी। अतः उस अल्प संख्यक बुद्धि-मानों ने जिनमें बुद्धिका विकास काफी तौर पर हो गया था अपने बुद्धि वल से समाज की व्यवस्था पर अपना अधिकार जमाने की तैयारी करना शुरू कर दिया। यह अल्प संख्यक बुद्धिप्रभावी वर्ग व्राह्मण कहलाये। वामनावतार इस बुद्धि प्रभावी व्राह्मण वर्ग के यशस्वी कार्य कलाप का प्रतीक है। वलि के सदृश भोले-भाले परन्तु वलशाली राजा पर बुद्धिमान् व्राम्हण वटु ने अपनी मीठी मीठी

बातों और युक्ति से प्रभाव डालकर किस प्रकार जय प्राप्त कर लिया ! तत्कालीन समाज रचना में बुद्धि जीवी वर्ग को बड़ा ही महत्व प्राप्त हुआ। बुद्धि के सामने बल कोई वस्तु नहीं है, ऐसी धारणा समाज में फैल चली। बुद्धि का महत्व चहुँ ओर बढ़ने लगा।

तत्कालीन समाज व्यवस्था में बुद्धि प्रभावी वर्ग को आदरणीय स्थान प्राप्त हो गया यह बात सत्य है पर उन्हें सदा यह आशंका बनी रहती थी कि उनका यह स्थान कहीं छिन न जाय। क्योंकि जो स्थान उन्हें समाज ने दिया था वह उनके गुणों के प्रति आदरभाव दिखाने के लिए, उनसे डर करके नहीं। राजा बलि ने बटु वामन का कहना मान लिया इसका कारण था-उनके प्रति आदर का भाव। उनसे वह डरता नहीं था। ऐसी परिस्थिति में बुद्धि प्रभावी वर्ग के नेताओं को यह चिन्ता होने लगी कि समाज में जो उच्च स्थान उन्होंने प्रात कर लिया है वह स्थायी और सतत कैसे हो जाय। नृसिंहावतार के समय मे समाज का वर्चस्व बनाये रखने के लिए बलसंवर्धन आवश्यक ज्ञात हुआ। अब यह वर्ग भी अपना वर्चस्व स्थायी रखने के लिए, आवश्यकता पड़ने पर बल का सहारा लेने की बात सोचने लगा। इस प्रकार के बुद्धिप्रभावी नेताओं के प्रतीक परशुरामजी थे।

परशुराम बुद्धिप्रभावी ब्राह्मण थे-हृदय के अत्यन्त सरल पर साथ ही बड़े क्रोधी। समाज में ब्राह्मण वर्ग की उच्चता बनाये रखने के लिए उन्होंने २१ बार क्षत्रिय-संस्कृति का पराजय किया। वामन ने केवल बुद्धिबल से बुद्धिप्रभावी वर्ग को सन्माननीय स्थान दिलाया था और इन्होंने ब्राह्मण-संस्कृति को शक्ति के साथ जोड़कर शक्ति की सहायता से उसे और अधिक प्रतिष्ठित बना दिया। समाज में ब्राह्मण-संस्कृति न केवल श्रेष्ठ प्रत्युत सामर्थ्यवान भी समझी जाने लगी। ब्राह्म संस्कृति का अर्थ होता है बुद्धिप्रभावी किन्तु त्यागनिष्ठ। परशुराम इसी संस्कृति के प्रतीक थे।

बुद्धिबल के साथ बाहुबल का योग हो जाने से समाज में-मानव संस्कृति में-उनकी प्रतिष्ठा बहुत बढ़ गई, उनका श्रेष्ठत्व पूर्ण रूप से स्थापित हो गया यह देखकर बुद्धि-प्रभावी वर्ग को बड़ा अहंकार होने लगा। साथ ही उनकी त्याग वृत्ति भी लोप हो चली। जिस बहुजन संख्यक समाज के हित के लिए इस बुद्धिप्रभावी वर्ग ने त्याग वृत्ति धारण की थी, जिस त्याग वृत्ति पर मुग्ध होकर बहुजन समाज ने इसे स्वेच्छा से अत्यन्त प्रतिष्ठित स्थान पर ला बिठाला था उस बहुजन समाज के हित की यह बुद्धिप्रभावी वर्ग उपेक्षा करने लगा। इतना ही नहीं बल्कि स्ववर्ग के हित के मुकाबिले में इस वर्ग ने बहुजन समाज के हित की ओर दुर्लक्ष्य देना भी आरम्भ कर दिया और समय पड़ने पर उसकी यदि हानि भी हो जाय तो उसकी परवाह करना इसने छोड़ दिया। स्वार्थ मिश्रित अहंकार रूपी तमोगुण से अच्छादित हो जाने के कारण ब्राह्म-संस्कृति के धवल यश में बड़ी कालिमा लग गई।

बहुजन समाज को इस विशिष्ट वर्ग का अत्याचार असहनीय हो गया। ब्राह्म-संस्कृति के सम्बन्ध में समाज के हृदय में आदर था। उस संस्कृति में जो त्यागवृत्ति थी उससे वह बड़ा प्रभावित था परन्तु उस संस्कृति में क्षत्रिय-वृत्ति वाले जन समाज के सम्बन्ध में जो दूषित भाव घुस गया था वह उसे पसन्द नहीं था। उसे ऐसी धारणा हो चली कि हमें अपने में से ही ऐसे व्यक्ति को अपना नेता चुनना चाहिए जिसमें ब्राह्म-संस्कृति के गुण तो हों ही पर साथ ही वह अपने में से ही होने के कारण, हमारे हितों की ओर दुर्लक्ष्य न दे। इन सद्गुणों से युक्त नेता का चुनाव सरल काम न था। ऐसा नेता बहुजन समाज के उच्च वर्ग में से ही मिल सकता था क्योंकि ब्राह्म-संस्कृति के तत्व क्या हैं, यह उसे पूर्ण रूप से ज्ञात होना चाहिए। आयुष्य में इस प्रकार का अवसर श्रीमानों को ही मिल सकता था। अतएव श्रीमानों में से ऐसा नेता चुनना था। बहुजन समाज इस बात को समझता था कि ऐसे नेता के हाथ में अनियंत्रित सत्ता देना होगी अतएव वह नेता ऐसा हो जो उस सत्ता का दुरुपयोग न करे। ब्राह्म-संस्कृति में सद्गुण बहुत अधिक थे, सो वह नेता उन सद्गुणों का मान ही केवल न रक्खे पर उन्हें आत्मसात् भी कर जाय। दोनों समाजों में सामञ्जस्य भी बनाए रक्खे। इस प्रकार बहुजन समाज से ऐसे नेता चुने गए जो राजा कहलाने लगे। समाज ने उनकी सत्ता स्वीकार की। ब्राह्म-संस्कृति के मुख्य गुण त्यागवृत्ति को धारण किए हुए बहुजन समाज के ये नेता—ये सत्ताधारी राजा बड़े लोक प्रिय सिद्ध हुए तो इसमें आश्चर्य ही क्या? इन राजाओं ने भी ब्राह्म-संस्कृति की बुद्धि-श्रेष्ठता तथा त्याग वृत्ति को यथेष्ट सन्मान दिया, पर उस संस्कृति में जो चढ़ा-चढ़ी का भाव आ गया था, उसके सामने नतमस्तक करना अस्वीकार कर दिया।

श्रीरामचन्द्रजी ब्राह्म-संस्कृति के पूर्ण प्रतिष्ठा करने वालों में से थे। वशिष्ठ के सदृश ब्रह्मर्षि उनके गुरु थे। रामचन्द्रजी में बहुजन समाज की सारी आकांक्षाएँ केंद्रीभूत हो गईं। वे स्वयं भी सारे सद्गुणों के आगार थे। पिता के वचन की रक्षा के लिए उन्होंने वनवास स्वीकृत कर लिया, प्रजा के संतोष के लिए उन्होंने प्रिय पत्नी का त्याग कर दिया, गौ-ब्राह्मणों की रक्षा की; विलासिता में कभी निमग्न नहीं हुए और बहुजन समाज की रक्षा की ओर कभी दुर्लक्ष्य नहीं दिया। शक्ति-बल की सहायता से भी अपना वर्चस्व बनाये रखना चाहिए ऐसी प्रकृति के बुद्धि प्रभावी परशुराम की ब्राह्मण वृत्ति का भी उन्होंने पराजय किया पर साथ ही उनकी त्यागवृत्ति को सन्मान देना कभी नहीं छोड़ा। त्याग-मूर्ति परशुरामजी ने भी देखा कि अब उनके सदृश विचार वालों की गुंजाइश नहीं रही तब उन्होंने अपना स्थान सहर्ष त्याग दिया।

परशुराम में त्यागभाव की बहुलता के कारण उनमें और रामचन्द्र में अधिक संघर्ष नहीं हुआ। पर लंका की बात निराली थी। वहाँ ब्राह्म-वृत्ति

के भीतर जो बुद्धि प्रभाव था उसका शारीरिक बल की सहायता से दुरुपयोग होने लगा था। राजा रावण अत्यन्त विद्वान था। संसार की सबसे कठिन विद्या उसने प्राप्त की थी। उसकी 'दशानन' उपाधि इस बात का द्योतक है कि वह दश विद्याओं में पाराङ्गत था। इस बुद्धिमान ब्राह्मण ने अपनी विद्या का और विद्या की सहायता से प्राप्त शक्ति का उपयोग स्वार्थ-साधन के निमित्त करना आरम्भ कर दिया था। वर्तमान समय में जिस प्रकार शास्त्रीय शोध का उपयोग कुछ जातियां अधिक प्राण संहारक शस्त्रास्त्र के निर्माण में कर रही हैं उसी प्रकार उस समय ब्राह्म संस्कृति इतनी विकृति हो गई थी कि उसे रावण-संस्कृति कहना योग्य होगा। बुद्धि और शक्ति के संयोग से स्थापित रावण-संस्कृति का उच्छेदन करना सहज काम नहीं था। पर इस संस्कृति की जड़ में स्वार्थ-साधन था। अतएव इसे समाज का नैतिक बल या समर्थन प्राप्त नहीं था। श्री रामजी के सम्बन्ध में बिलकुल उल्टी बात थी। न्याय अन्याय का सम्यक ज्ञान होने के कारण सारा बहुजन समाज उनके पक्ष में था। वानरों के सदृश्य अनार्य परन्तु प्रामाणिक दल तक उनके पक्ष में आ गये थे और ये बहुजन समाज के प्रेम के प्रतीक बन गये थे। फल यह हुआ कि स्वसुख के लिए बुद्धि-वैभव और शक्ति बल का दुरुपयोग करने वाले उन्मत्त प्रजापीड़क, अत्याचारी रावण की रावणी मनोवृत्ति का उच्छेद करने में वे समर्थ हो सके और ऐसा सुन्दर राजशासन कर सके जो आज "राम-राज्य" के नाम से संसार में विख्यात है। राम-राज्य कहते ही कल्पना हो जाती है कि वह राज्य जहाँ प्रजा सब प्रकार से सुखी और संतुष्ट हो।

बहुजन समाज को अपने हिताहित का ज्ञान उत्तरोत्तर अधिक होने लगा और मानव समाज भी शीघ्रता-पूर्वक उन्नति के पथ पर अग्रसर होने लगा। राजा राम बहुजन समाज के अत्यन्त प्रिय राजा थे और साथ ही अत्यन्त उच्च वर्ग में थे। बहुजन समाज को ऐसा भासित होने लगा कि समाज को ऐसा नेता चाहिए जो उन्हीं के बीच में उत्पन्न हुआ हो, वहीं खेला कूदा हो और वहीं शिक्षा प्राप्त की हो। श्रीरामजी का जन्म राज-घराने में हुआ था। बहुजन समाज की अड़चनों और दुःखों का ज्ञान उन्हें बुद्धि-बल से लग जाता था पर स्वतः का अनुभव तो कुछ नहीं था। वे तो सुख के वातावरण में पले हुए थे। अतएव उन्हें ऐसा नेता चाहिए जो उनसे अधिक बुद्धिमान तो अवश्य हो पर रहने-बसने वाला हो बस उन्हीं के सदृश। उसमें उच्चता का भाव बिलकुल न हो। उनके सुख दुःख का अनुभव उसे स्वयं हो। राम-संस्कृति से राजसत्ता में स्थिरता आगई थी तथा लोगों में राजसत्ता विषयक प्रेम और सहानुभूति उत्पन्न होगई थी। लोग इस बात को समझने लगे थे कि मानव समाज में समाज की स्थिरता और समाज-कल्याण के लिए राजसत्ता की आवश्यकता है और इस प्रकार चहुँ ओर भिन्न भिन्न राज्यों की स्थापना हो चली थी। इस राजसत्ता में अपने में ही के लोग किस प्रकार

अधिक भाग ले सकते हैं, इस प्रश्न पर बहुजन समाज विचार करने लगा। इस प्रकार भी लोकतंत्र की वृत्ति समाज में बढ़ चली। यह कहने में हर्ज नहीं कि श्रीकृष्णावतार लोकतंत्रवृत्ति की यशस्विता का प्रमाण है।

श्रीकृष्ण के माता पिता राजकुल के थे अतएव उनमें उच्च घराने का आनुवंशिक गुण अधिक था। परन्तु उनके जन्म के समय वे दोनों वन्दीगृह में थे। सो उन्हें वन्दियों के सुख दुःख का प्रत्यक्ष अनुभव था। इस प्रकार श्रीकृष्ण को गर्भ से ही दुःखों का अनुभव होने लगा। उनका वालपन गोकुल में अहीरों के वीच में कटा। उनका रंग भी साधारण मनुष्यों की भांति श्याम था। जव कुछ वड़े हुए तव राजा कंस के अत्याचार का शिकार उन्हें भी अन्य लोगों के साथ वनना पड़ा, अतएव वे भी उन अत्याचारों का प्रतिकार करने के लिए लोगों का साथ देने लगे; वल्कि बुद्धि वल उनमें अधिक होने के कारण वे उनका नेतृत्व करने लगे। राज घराने में जन्म होने के कारण सुख से राज्य करना उनके लिए अशक्य न था पर इस झंझट में वे कभी पड़े नहीं। उनकी सारी आयु संकट-ग्रस्त लोगों के संकट दूर करने में व्यतीत हुई। महाभारत को आप श्रीकृष्णजी की कार्य-कुशलता का इतिहास मान सकते हैं जिसकी जड़ में समाज हित-वर्द्धन के सिवा और कोई वात न थी। पाण्डवों के दरवार में ही नहीं प्रत्युत तत्कालीन समस्त राजाओं के दरवार में, इस राजकुल में जन्म लिए हुए महात्यागी की जिसने कभी राजशासन की वागडोर हाथ में न ली और सारा आयुष्य लोक-कल्याण के निमित्त व्यतीत कर दिया, वड़ी प्रतिष्ठा थी।

श्रीकृष्णजी का प्रारंभिक जीवन झगड़ा करते या युद्ध करते वीता पर वे हृदय से युद्ध-प्रेमी नहीं थे। जहाँतक होता वे युद्ध टालते रहते थे। कौरव-पाण्डवों में, युद्ध के पहले, मेल करा देने के लिए उन्होंने कितना अधिक प्रयत्न किया था। न्याय और अधिकार की दृष्टि से आधे राज्य का हक्कदार होते हुए भी उन्होंने पाण्डवों को गुजर वसर के लिए केवल पांच गांव दे देने के लिए कौरव के पास जो दूतत्व किया था, वह केवल युद्ध टालने के लिए। श्रीकृष्ण को तथा उनके मित्र पाण्डवों को राज्य या संपत्ति का मोह नहीं था। उनकी निष्ठा थी सत्य पर और वे चाहते थे कि सत्य और सत्पक्ष की जय हो। श्रीकृष्ण के दूतत्व को यदि सफलता मिली होती तो उसका यह अर्थ होता कि कौरवों ने तात्विक दृष्टि से पाण्डवों की राजसत्ता पर अधिकार स्वीकार कर लिया और इतना हो जाने पर ही पाण्डव संतुष्ट हो जाने के लिए तैयार थे। उस समय के राज्यशासन को वर्तमान् लोकतंत्र की चक्करदार भाषा नहीं आती थी। पांच पाण्डवों को पांच गांव मिल जांय जिससे यह सिद्ध हो जाय कि राज्य पर इनका भी हक है, यही तत्व स्थापित करना था और इसीसे इतनी छोटी मांग पेश की गई थी। जिस श्रीकृष्ण को जगत आज इतना धूर्त और व्यवहारी समझ रहा है, उसने पाण्डवों की ओर से

कितनी छोटी मांग पेश की थी, आपही सोचिये। और जब कौरवों ने इस छोटी सी मांग को भी, जो अत्यन्त नम्रता के साथ उपस्थित की गई थी, ठुकरा दिया तब भी श्रीकृष्ण ने उनके साथ द्वेष नहीं किया, उनकी अड़चनों से लाभ भी नहीं उठाया और न उन पर कोई विपत्ति लाने की चेष्टा की। उल्टा दुर्योधन की प्रार्थना पर उन्होंने अपनी सारी सेना उसे सौंप दी और आप अकेले पाण्डवों की ओर चले गये। श्रीकृष्ण के इस दूतत्व को कौरवों के दरबार में असफलता जरूर मिली पर उस असफलता में पाण्डवों के यश का बीज गर्भित था। पाण्डवों की छोटी सी माँग को भी जो सर्वथा न्याययुक्त थी, कौरवों ने घृणापूर्वक ठुकरा दिया यह जानकर लोकमत और अन्य राजे पाण्डवों के पक्ष में हो गये। कौरव-पक्ष के सत्प्रवृत्तिवान अधिकारी भीष्म, द्रोण आदि इस अन्याय से उदास हो गये जिससे कौरवों का पक्ष और निर्बल हो गया। श्रीकृष्ण पाण्डवों के पक्ष में जरूर चले गये पर उन्होंने शस्त्र धारण नहीं किया। तुम लोग कुछ भी कहो पर मुझे अपनी बुद्धि स्थिर रखने दो, श्रीकृष्ण जी की यह विचारधारा थी। यदि श्रीकृष्ण योद्धा होकर युद्ध में सम्मिलित हुए होते तो आज गीता का ज्ञान अर्जुन को (और संसार को) कहाँ मिला होता!

श्रीकृष्ण ने गीता में अर्जुन को क्षत्रिय-धर्म समझाया है। गीता का विषय अत्यन्त गूढ़, महान और मार्मिक है। भिन्न भिन्न विद्वानों ने उस पर भिन्न भिन्न प्रकार से विचार किया है। पर प्रस्तुत लेख का विषय वह नहीं है। अतएव मैं उस पर यहाँ विचार नहीं करता।

महायुद्ध में पाण्डवों की विजय हुई। सत्पक्ष को यश मिला। श्रीकृष्णजी संतुष्ट हुए।

इतिहास एक ऐसी वस्तु है जिससे यह पता लगता रहता है कि भिन्न भिन्न काल में भिन्न भिन्न विचार-धारा किस प्रकार प्रवाहित होती रही है। नूतन विचार वालों की संख्या जहाँ बढ़ी कि पुरातन विचार वाले आपही आप किनारे लग जाते थे। जब श्रीकृष्ण ने देखा कि उनका कार्य समाप्त हो गया तब प्राचीन संस्कृति पर अर्थात् यादवों पर दस्युओं को आक्रमण करते देखकर भी वे तटस्थ रहे। दस्युओं ने उनके सामने यादवों का नाश किया पर उन्होंने थोड़ा भी प्रतिकार नहीं किया। अपनी तटस्थ वृत्ति से श्रीकृष्ण ने यह दिखला दिया कि प्राचीन संस्कृति के स्थान पर नूतन संस्कृति का आना कभी कभी अपरिहार्य हो जाता है। उन्होंने नेतृत्व तो छोड़ ही दिया था। अपना कार्य समाप्त करके वे वजू में आ गए थे। उन्होंने दस्युओं के हाथ से इह लीला समाप्त की।

श्रीकृष्ण देवता के लोगों के अत्यन्त प्रिय होने के कई कारण हैं। श्रीराम प्रजा के राजा थे। जनता के हृदय में उनके प्रति अत्यन्त आदर बुद्धि थी। उनकी

सत्यवृत्ति पर जनता मुग्ध थी। वह समझती थी कि श्रीराम से कोई गलती नहीं हो सकती। वे मर्यादा पुरुषोत्तम हैं। पर श्रीकृष्ण प्रजा के राजा नहीं प्रजा के मित्र थे। वह उन्हीं में क एक थे। गोकुल का मनसुखा अहीर उन पर जैसा उत्कट प्रेम रखता था, उसी प्रकार का उत्कट प्रेम बरसाने की राधा ग्वालिन भी उन पर कर सकती थी। जिस उत्कटता के साथ द्रौपदी उनसे स्नेह करती थी, उसी उत्कटता के साथ कौरव सेनापति भीष्म और द्रोण भी उन्हें चाहते थे। समाज-सुधार करने की जिम्मेदारी समाज के व्यक्तियों पर ही है यह श्रीकृष्ण ने आदर्श रूप से बतलाया। श्री राम के गुण दैवी थे पर श्रीकृष्ण अत्यन्त साधारण मनुष्य की तरह उत्पन्न हुए और अत्यन्त साधारण मनुष्य की तरह उनका व्यवहार रहा। उनका सत्य प्रेम भी अत्यन्त साधारण मनुष्य की तरह था और जगत में अपना कर्तव्य करके अत्यन्त साधारण मनुष्य की तरह उन्होंने परलोक गमन भी किया। सर्व साधारण ही श्रीकृष्ण के मित्र थे और जगत में सर्व साधारण ही अधिक संख्या में हैं। हिन्दू गण जो श्री कृष्ण को इतनी पूज्य दृष्टि से देखते हैं उसका मुख्य कारण यही है कि वे मानव और मानव समाज के मित्र थे।

मानव जाति की प्रगति नृसिंहावतार से आरम्भ हुई और श्रीकृष्णावतार के समय में लोकतंत्र के रूप में पूर्ण रूप से विकसित हुई।

लोकतंत्र का पूर्ण रूप से विकास होते ही एकतंत्र समाज शासन का अंत हो जाता है। लोकतंत्री समाज रचना में प्रत्येक मनुष्य ज्ञान की शोध कर सकता है और अपनी उन्नति कर सकता है। पर उस समाज रचना में भी एकाध स्वेच्छाचारी समय पर पैदा हो सकता है जो सारी सत्ता जबरदस्ती अपने हाथमें कर ले। प्राप्त की हुई स्वतंत्रता का उपयोग यदि मनुष्य ने ज्ञानवर्धन करने में और उस ज्ञान का उपयोग समाज-हित-चिन्तन में किया तब तो संसार में शान्ति रह सकती है और उसका कल्याण भी हो सकता है। पर यदि लोकतंत्र में मिले हुए ज्ञान का दुरुपयोग करना आरम्भ हो गया तब मनुष्य का वैरी मनुष्य हो जाता है और परस्पर लड़ाई-झगड़े आरम्भ होकर आज तक की हुई सारी प्रगति मिट्टी में मिल जाती है और मनुष्य पीछे लौटकर पशुकोटि में चला जाता है। समाज ने कृष्णावतार पर्यंत प्रगति का मार्ग तय किया और लोकतंत्र को पूर्ण रूप से विकसित किया, उसके पश्चात् उसके सामने केवल दो मार्ग ही रह जाते हैं। एक मार्ग—लोकतंत्र का पूर्ण उपयोग ज्ञानवान (बुद्ध) बनने में करो जिससे समस्त संसार में शान्ति और समता स्थापित हो जाय। इसी मार्ग की कल्पना को हिन्दुओं ने बौद्धावतार का रूप दिया है। बुद्ध अर्थात ज्ञानी। मनुष्य को ज्ञान प्रसार करने के लिए अच्छा स्वास्थ्य और पूरी स्वतंत्रता मिलनी चाहिए और इसके लिए लोकमत अनुयायी समाज-रचना की जरूरत है। और इसीलिए अवतारों की श्रेणी में कृष्णावतार के पश्चात् बौद्धावतार आता है। दूसरा,

मार्ग-लोकमतानुयायी समाज रचना में मिले हुए ज्ञान का यदि सदुपयोग नहीं हुआ-क्योंकि मनुष्य उसका दुरुपयोग भी कर सकता है—और यदि मानव जाति ने उसका दुरुपयोग करना आरम्भ कर ही दिया तो वह अपने ही हाथों से अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मारेगी और स्वयं अपने विनाश का कारण बन जावेगी। ऐसी परिस्थिति में अखिल विश्व के कल्याण की दृष्टि से ऐसी विकृत मनोवृत्ति का समूल नाश होना ही श्रेयस्कर होगा और ऐसे समय में कलंकी अवतार इस असत् प्रवृत्ति के संहार करने में सहायता पहुँचावेगा।

पुराणकारों ने लोकतंत्री समाज पद्धति हो जाने पर मानव जाति की भवितव्यता के विषय में दो कल्पनाएँ की हैं-एक बौद्धावतार दूसरा कलंकी अवतार।

ऐतिहासिक दृष्टि से वामन परशुराम, राम, कृष्ण आदि व्यक्तियों का अस्तित्व सचमुच में था या नहीं यह प्रश्न यहाँ पर इतना महत्व पूर्ण नहीं है। पुराण का अर्थ शुद्ध इतिहास नहीं है। पुराण के भीतर इतिहास भरा हुआ है पर साथ ही उसमें विचारवानों का कल्पना-विलास भी है। यदि अत्यन्त निष्पक्ष-भाव से मानव जाति के सुधार की प्रगति की ओर दृष्टि पात की जाय तो ज्ञात होगा कि विचारवान पुरुषों ने इन पुराणों में इस बात का विचार किया है कि मनुष्य ने किन किन सीढ़ियों पर ठहर ठहर कर अपना सुधार किया है। उन्हें इसका विश्वास था कि मानव जाति की प्रगति को ईश्वरीय सहायता मिलती है। सुधार की प्रत्येक सीढ़ी पर एक विशेष विचार-धारा का प्रवाह होता रहता है और उस विचार-धारा का जिसने पूर्ण रीति से सफलतापूर्वक संचालन किया वही अवतार कहलाया। उनके वर्णन करने का ढंग सीधा और सच्चा था। अमुक अमुक सद्गुणों से युक्त राजा श्रीराम थे, इस प्रकार उनके वर्णन करने की शैली थी। यह नहीं कि एक राम नाम के राजा थे, उनमें पुराणों में वर्णित समस्त सद्गुण विराजमान थे। इस तरह का आग्रह पूर्वक वर्णन करना पुराणकारों का उद्देश न था। उनका उद्देश था-यह बतलाना कि उस समय की समाज नीति का प्रतीक कौन था और कैसा था। पुराणकारों के दृष्टिकोण को समझ कर इस बात का विचार करना चाहिए कि पुराण किस काल में और कैसी परिस्थिति में लिखे गए थे। पुराण काल में वर्तमान राजनैतिक भाषा का ज्ञान लोगों को नहीं था।

उस समय उन्होंने जनता के बीच में उत्पन्न हुए और जनता के प्रिय पात्र बने हुए लोकतंत्र के प्रतीक श्रीकृष्ण राजा या नेता जिस प्रकार हुए उसीका कल्पना-विलास से संयुक्त शब्द-चित्र खींच दिया। जबरदस्ती उनमें ठूंस ठूंस कर सद्गुण नहीं भरे। पुराणकारों ने समाज के इतिहास का निरीक्षण अत्यन्त बारीकी के साथ किया था। इसका प्रमाण उनकी दशावतार वाली कल्पना से लगता है। विष्णुजी की यह दशावतार वाली अभिनव कल्पना उनके समाज-शास्त्र तथा राजनीति-शास्त्र के पूर्ण जानकार होने का द्योतक है। वे इस बात

को जानते थे कि उस समय कौन बात किस ढंग से कही जाय जिससे जनता उसे ठीक तरह से समझ ले।

जिस समय विद्वान गण पुराण को इतिहास की दृष्टि से देखने का प्रयत्न करते हैं उस समय बड़ी गड़बड़ी मचती है। इतिहास और विज्ञान पर एक आँख रखते हुए यदि आप पुराणों पर दूसरी आँख रखेंगे तो कठोर तर्क-शास्त्र की कसौटी पर पुराण वर्णित कई कथाएं ठीक न उतरेंगी। पुराणकारों ने जो कुछ लिखा है वह सामान्य श्रद्धालु जनता के लिए लिखा है जिसे न शास्त्रों का अभ्यास है और जो न कभी हिंदू धर्म के तत्वों के विपरीत बातों को सोचते हैं। उन्होंने उसी शैली, उसी ढंग और उसी प्रणाली का उपयोग अपने पुराणों को लिखने में किया है जिनके द्वारा उनके ओजस्वी विचार बहुजन समाज को शीघ्र समझ में आ जांय। पुराणकार ने किस तत्व का प्रतिपादन किया है इस विचार से आप पुराणों को पढ़ें तो आपको निःसन्देह आनन्द मिलेगा। पुराण ज्ञानी और त्यागी जनों का कल्पना-विलास है, पुराण रूपक है, ऐसा समझने पर आपके हृदय में तत्विषयक आदर-भाव उत्पन्न होगा। पुराणों में कई कथाएं बाद में घुसेड़ दी गई हैं। सारांश यह है कि मेरे मत के अनुसार श्रीविष्णु के दशावतार की कल्पना, अखिल मानव जाति की सामाजिक प्रगति का ब्यौरेवार वर्णन है जो पुराणों में वर्णित है। किस पुराण में किस कथा का वर्णन है इस पर मैंने विशेष लक्ष्य नहीं दिया है।

इस लेख में यदि विद्वानों को इस विषय पर सोचने-विचारने का कुछ भी मसाला मिला तो इसका लेखक अपना परिश्रम सफल समझेगा।



छान्दोग्योपनिषत् की ये पंक्तियाँ भी यही बतला रही हैं कि पृथीवी से अग्नि तत्व, इसके उपरान्त ब्रह्म की इच्छा से अग्नि से ऋग्वेद, वायु से यजुर्वेद तथा सूर्य से सामवेद प्रकट हुआ। यहाँ भी सृष्टि के आरम्भ में ही अनादि ब्रह्म से अनादि तत्वों का पता चलता है और उन तत्वों के माध्यम से अनादि वेदों की अभिव्यक्ति हुई, इस ओर भी संकेत है।

मनुजी ने इसी बात को और अधिक स्पष्ट शब्दों में कहा हैः—

सर्वेषान्तु स नामानि कर्माणि च पृथक् पृथक्।
वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे॥

कर्मात्मनाञ्च देवानां सोऽसृज्यत् प्राणिनाम्प्रभुः।
साध्यानाञ्च गणं सूक्ष्मं यज्ञञ्चैव सनातनम्॥

अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम्।
दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थं ऋग्यजुःसामलक्षणम्॥

संसार के सब नाम कर्म तथा संस्थाओं का निर्माण वेद के शब्दों से ही हुआ। देवताओं के गण तथा सनातन यज्ञ की सृष्टि भी वेदों से हुई। यज्ञ की सिद्धि के लिए ऋग, यजुः और साम के रूप में सनातन ब्रह्म के तीन स्वरूप अग्नि, वायु तथा रवि से प्रकट किए गए। वेदों के द्वारा प्रतिपादित यज्ञ को यहाँ मनुजी ने सनातन तथा अनादि माना है तथा वेद त्रयी को सनातन अनादि माना है एवं वेद त्रयी को सनातन अनादि ब्रह्म के तीन स्वरूप माना है। सृष्टि के आरंभ में अग्नि, वायु तथा रवि से इन वेदों के प्रकट होने की बात शतपथ ब्राह्मण तथा छान्दोग्योपनिषत् से मेल खाती है। सृष्टि के आरम्भ में प्रकट होने वाले वेद सनातन हैं, अनादि हैं, पुरुष की सृष्टि नहीं हैं तथा उनके द्वारा प्रतिपादित यज्ञादि विषय भी अनादि ही हैं, मनुष्य प्रणीत नहीं।

विष्णु पुराण को देखने से भी वेदों की अपौरुषेयता तथा अनादिता और नित्यता सिद्ध होती है। वहाँ की पक्तियाँ निम्नङ्कित हैंः—

गायत्रञ्च ऋचश्चैव त्रिवृत्सामरथन्तरम्।
अग्निष्टोमञ्च यज्ञानामसृजत्प्रथमान्मुखात्॥

यजूंषि त्रैष्टुभं च्छन्दः स्तोमं पञ्चदशन्तथा।
बृहत्साम तथोत्कञ्च दक्षिणादसृजन्मुखात्॥

सामानि जगतीच्छन्दः स्तोमं सप्तदशन्तथा।
वैरूपमतिरात्रञ्च पश्चिमादसृजन्मुखात्॥

एकविंशमथर्वाणमाप्तोर्यामाणमेवच।
अनुष्टुभं स वैराजं उत्तरादसृजन्मुखात्॥

यज्ञों के पूर्व मुख से ऋग्वेद की, दक्षिण मुख से यजुर्वेद की, पश्चिम मुख से सामवेद की तथा उत्तर मुख से अथर्ववेद की सृष्टि हुई। इस बात से विष्णु पुराण भी यही सिद्ध करता है कि ब्रह्म की इच्छा से ही यज्ञों के मुखों से वेद प्रकट हुए। किसी पुरुष की सृष्टि ये नहीं हैं।

वेद की ऋचाओं से भी यही रहस्य प्रकट होता है:—

''तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतऽऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्माद जायत॥''

इस ऋचा से ज्ञात होता है कि यज्ञ से ही ऋक्, साम तथा यजुर्वेद की उत्पत्ति हुई है। यहां यज्ञ शब्द का बड़ा ही व्यापक अर्थ है। यज्ञ ब्रह्म का स्वरूप ही है। गीता के नवम अध्याय का १६ वां तथा १७ वां श्लोक देखिए:—

अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाहमहमौषधम्॥
मंत्रोऽहमहमेवाज्यमहमग्निरहं हुतम्।
पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः।
वेद्यं पवित्रमोंकार ऋक्साम यजुरेव च॥

यहां भगवान् ने अपने को यज्ञ, मंत्र, घृत, अग्नि तथा आहुति सब कुछ बतलाया है। जगत् के पितामह ब्रह्मा का भी पितामह अपने को ही कहा है। ओंकार, ऋक्, साम तथा, यजुर्वेद को भी अपना ही स्वरूप बतलाया है। गीता के दशम् अध्याय के बाइसवें श्लोक में 'वेदानां सामवेदोऽस्मि' कह कर सामवेद के ध्वनि सौंदर्य के कारण उसे अलग करके विशेष जोर देकर भगवान ने अपना ही रूप माना है।

वेदों के अनादित्व पर गीता का एक स्थल और ध्यान देने योग्य है:—

ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः।
ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा॥ अध्याय १७, श्लोक २३॥

ब्रह्म के तीन स्वरूप हैं ॐ, तत् और सत्। इन्हीं से ब्राह्मण, वेद तथा यज्ञों का विधान हुआ। इस प्रकार गीता बारबार वेदों को ब्रह्म का अङ्ग ही मानती है। यहाँ वेद और यज्ञ दोनों अनादि हैं क्योंकि दोनों ब्रह्म के अङ्ग ही हैं। विष्णु-सहस्रनाम के कई स्थलों पर भगवान्, सर्वव्यापी, अनादि तथा निर्गुण और सगुण ब्रह्म के प्रतीक विष्णु को यज्ञ और वेद दोनों नाम दिये गये हैं:—

सर्वगः सर्वविद्भानुर्विष्वक्सेनो जनार्दनः।
वेदोवेदविदव्यंगो वेदांगो वेदवित्कविः॥ श्लोक १४
यज्ञ इज्यो महेज्यश्च क्रतुःसत्रं सतां गतिः।
सर्वदर्शी विमुक्तात्मा सर्वज्ञो ज्ञानमुत्तमम्॥ श्लोक ४८

महाक्रमो महाकर्मा महातेजा महोरगः।
महाक्रतुर्महायज्वा महायज्ञो महाहविः॥ श्लोक ७२

यज्ञो यज्ञपतिर्यज्वा यज्ञाङ्गो यज्ञवाहनः॥ श्लोक १०४

यज्ञम् द्यज्ञायकृज्ञी यज्ञभुग्यज्ञसाधनः।
यज्ञान्तकृद्यज्ञगुह्यमन्नमन्नाद एव च॥ श्लोक १०५

इस प्रकार विष्णु सहस्रनाम के अनुसार विष्णु (ब्रह्म) वेद और यज्ञ एक ही हैं। ये सब अनादि हैं, इनमें कोई पुरुष की कृति नहीं।

वेद के अपौरुषेयत्व की सिद्धि के लिए श्रीमद्भागवत का गजेन्द्रमोक्ष भी बड़ा मार्मिक स्थल है—

भवोद्भवं वेदविदां वरिष्ठं योगात्मकं सांख्यविदां वरिष्टम्॥
आदित्यचन्द्राग्निवसुप्रभावं प्रभुं प्रपद्ये ऽच्युतमात्मवंतम्॥८१॥

अजं वरेण्यं वरपद्मनाभं महा बलं वेदनिधिं सुरोत्तमम्।
तं वेदगुह्यं पुरुषं पुराणं ववंदिरे वेदविदां वरिष्टम्॥१४२॥

दृढ़बद्धधर्ममूलो वेदस्कंधः पुराण शाखाढ्यः॥
क्रतुकुसुमो मोक्षफलो मधुसूदनपादपो जयति॥१४८॥

ऊपर के दो श्लोकों में विष्णु के विशेषण 'वेदविदां वरिष्टं' 'वेदनिधिं' और 'वेदगुह्य' वेदों की अपौरुषेयता सिद्ध करने के लिए बड़े काम के हैं। विष्णु वेदों के अर्थ जानने वालों में श्रेष्ठ हैं, वेदों के कोष हैं तथा वेदों के रक्षक हैं। इन विशेषणों से यही ज्ञात होता है कि वेद निरंतर प्रत्येक दशा में अजन्मा विष्णु से ही संबद्ध हैं। वेदों के जानने वाले अनादि अनंत विष्णु ही हैं। इस प्रकार अनादि विष्णु के साथ गजेन्द्रमोक्ष प्रकरण में वेद भी अनादि माने गए हैं।

अंतिम श्लोक में मधुसूदन को एक वृक्ष के रूप में देखा गया है। धर्म उस वृक्ष की दृढ़बद्ध जड़ है, वेद उसकी पींड़, पुराण उसकी शाखाएं, यज्ञ उसके पुष्प यथा मोक्ष फल हैं। विष्णु रूपी इस वृक्ष मे धर्म, वेद, पुराण, यज्ञ, तथा मोक्ष बड़े ही सुन्दर तरीके से एक साथ देखे गए हैं।

गीता के पन्द्रहवें अध्याय का प्रथम श्लोक भी कुछ कुछ ऐसा ही है:—

ऊर्ध्वमूलमधः शाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्॥
छंदांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित्॥

ब्रह्म को इस श्लोक में एक विचित्र अमर अश्वत्थ वृक्ष के समान देखा है। वृक्ष का मूल ऊपर तथा शाखाएँ नीचे हैं। वेद इस विराट वृक्ष की शाखाओं के समान है। ऊपर के ब्रह्म लोक इत्यादि लोकों से भी परे तथा नीचे के सब

लोकों को व्याप्त करके उनसे भी अधिक विभु इस ब्रह्म रूपी वृक्ष की शाखाओं के समान वेद हैं। विराट पुरुष के शरीर के एक अङ्ग के समान वेद नित्य हैं। उन्हें पुरुष की सृष्टि मानना भ्रम है।

जहां कहीं भी देखा जाय, जब जब ब्रह्म के उस व्यापक रूप का जिस रूप में ही ध्यान किया गया है वहीं वेद दिखलायी पड़े हैं। सनत्कुमार संहिता में राम को 'वेद' का नाम दिया गया है। भविष्योत्तर पुराण में सूर्य को वेदात्मा कहा गया है। ब्रह्मवैवर्तपुराण के श्रीकृष्ण-जन्म-खण्ड में हिमालय ने शिव की स्तुति "वेदस्त्वं वेद कर्ताच वेदवेदांग पारंगः" कहकर की है।

इसी प्रकार जहां ब्रह्म का नारी रूप; सर्व व्यपिनी जगदाधारस्वरूपा, जगदम्बा, शक्ति के रूप में दिखलायी पड़ता है वहां भी वेदों के दर्शन हमें होते हैं। विष्णु-पुराण में शक्ति की प्रशंसा करते हुए विष्णु ने शक्ति से कहा है:—

ये त्वामार्येति दुर्गेति वेदगर्भेऽम्बिकेतिचं।
भद्रेति भद्रकालीतिक्षेम्या क्षेमङ्करीतिच ॥
प्रातश्चैवापराह्ने च स्तोष्यन्त्यानम्रमूर्तयः।
तेषां हि प्रार्थितं सर्वं मत्प्रसादाद्भविष्यति ॥

यहां देवी को विष्णु भगवान् ने 'वेदगर्भा' कहा है। वेद देवी की जगद्व्यापनी शक्ति के साथ भी एक रूप हैं।

ब्रह्मा के मुखों से अलौकिक रीति से चतुर्वेदों की उत्पत्ति का साक्षी भागवत पुराण भी है। इसके तीसरे स्कन्ध के बारहवें अध्याय के ३४ वें तथा ३७ वें श्लोक निम्नाङ्कित हैं:—

कदाचिद् ध्यायतः स्रष्टुर्वेदा आसन्श्चतुर्मुखात्।
कथं स्रक्ष्याम्यहं लोकान् समवेतान्यथापुरा ॥
ऋग्यजुः सामाथर्वणाख्यं वेदान्पूर्वादिभिर्मुखैः।
शस्त्रं इज्यां स्तुतिस्तोमं प्रायश्चित्तं व्यधात्क्रमात् ॥

सृष्टि करने की इच्छा मात्र जागृत हुई कि ध्यानमग्न ब्रह्मा के पूर्व, दक्षिण, पश्चिम तथा उत्तर मुख से चारों वेद प्रकट हुए। उन्हीं से शस्त्र, यज्ञ, श्रुति और प्रायश्चित्त की ब्रह्माने क्रम से सृष्टि की। यहाँ भी वही धारणा पुष्ट होती है कि ब्रह्मा के मुख से वेद आप से आप प्रकट हुए। वेदों से संसार की सृष्टि ब्रह्मा ने की। यह सृष्टि भी अनादि काल से चले आये हुए क्रम के अनुसार ही हुई। इस क्रम से वेद प्रथम हैं और ब्रह्म के स्वरूप के विशेष अंश की तरह हैं अथवा शास्त्र तो यह भी बतलाते हैं और ऊपर भी बतलाया जा चुका है कि वेद सनातन ब्रह्म के ही स्वरूप हैं।

बृहदारण्यक में भी वेदों की अपौरुषेयता की स्थिति बड़े महत्वपूर्ण ढंग से व्यक्त की गई है :—

> स यथा आर्द्रैन्धाग्नेरभ्याहितात् पृथग्धूमा विनिश्चरन्ति एवं वा अरेऽस्य महतो भूतस्य निश्वसितं एतद् यद् ऋग्वेदो, यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरसा इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकः सूत्रण्यनुव्याख्यानानि व्याख्यानानि अस्यैव एतानि सर्वाणि निःश्वसितानि।

बृहदारण्यक ने वेदों से लेकर पुराण और उपनिषद् इत्यादि को उसी अव्यक्त ब्रह्म के व्यक्त रूप का विकास ही माना है। अनादि काल से बार बार इनका आविर्भाव तिरोभाव हुआ करता है। कृष्ण भक्त कवि नन्ददासजी ने भी अपनी गोपियों से कहवाया है "वेदहु हरि के रूप श्वास सुख से जो निसरें।"

हरिवंश पुराण वेदों की अभिव्यक्ति गायत्री और ब्रह्मा से मानता है। महाभारत सरस्वती को वेदमाता कहता है।

ऋग्वेद और अथर्ववेद अपनी अपनी उत्पत्ति पुरुष (ब्रह्म) तथा काल से मानते हैं। अथर्ववेद की एक दूसरी ऋचा बतलाती है कि वेदों की अभिव्यक्ति यज्ञोच्छिष्ट से हुई। इनके बाद मनुजी ब्रह्म को सत्व गुण की प्रथम अभिव्यक्ति मानते हैं और वेद को द्वितीय।

विष्णु पुराण ने वेदों की अपौरुषेयता और अनादिता पर बड़ा दृढ़ विश्वास रखा है तथा वेदों को विष्णु का रूप ही माना है।

इन सब उद्धरणों का निष्कर्ष यही प्रतीत होता है कि अनादि वेद भिन्न भिन्न कल्पों में अलौकिक रीतियों से प्रकट हुए। मनुष्य का हाथ उसकी सृष्टि में नहीं है।

भारतीय दर्शनों में वेदों की अपौरुषेयता मीमांसा दर्शन के आदि प्रवर्तक जैमिनि मुनि ने ध्वनि अथवा शब्दों को अनादि और अनन्त माना है। इसी सिद्धान्त के अनुसार शब्द प्रधान अथवा ध्वनि प्रधान वेदों को भी शब्द ब्रह्म का स्वरूप मानकर अनादि और अनन्त माना है। मीमांसा दर्शन के अनुसार शब्द ब्रह्म का शाश्वत रूप वेदों के स्वरूप में व्यक्त हुआ और वेदों के शब्दों के आधार पर ही संसार की और संसार के पूरे नाम तथा रूपों की सृष्टि हुई।

मीमांसा दर्शन का विरोधी न्याय दर्शन उसका विरोध निम्नांकित रीति से करता है:—

(१) न्यायदर्शन का सिद्धांत है कि वेद शब्द प्रधान नही हो सकते। ऐसा कभी सम्भव ही नहीं हो सकता कि वेदों के शब्दों में कभी परिवर्तन हुआ

ही न हो। न्याय दर्शन मानता है कि प्रलय के बाद वेदों के शब्दों में अवश्य परिवर्तन हुआ होगा।

(२) न्याय दर्शन का यह सिद्धान्त भी है कि 'श्रुति' नाम से हम यह नहीं मान सकते कि सब लोगों ने अनादि काल से वेदों को केवल सुना ही है और वेदों के आदि प्रणेता हो ही नहीं सकते।

(३) न्याय दर्शन का यह भी विरोध है कि और ग्रन्थों के शब्द भी वेदों के समान ही हैं तो वेद को अपौरुषेय क्यों माना जाय?

(४) नैयायिकों ने कहा है कि यदि हम वेदों को इसी आधार पर अनादि और अपौरुषेय मानलें कि सदा से गुरु-शिष्य परम्परा से ही सुने गए, तो यही बात तो किसी और पुरुषप्रणीत ग्रन्थ के लिए भी कही जा सकती है जिसके आदि प्रणेता का नाम भूल जाय और केवल गुरु-शिष्य परम्परा से ही अध्ययन की परम्परा दिखलाई पड़ने लगे।

नैयायिकों ने यह भी कहा है कि वेद के सूक्तों तथा ऋचाओं और मण्डलों के प्रणेताओं के नामों का निर्देश तो हमें उस ग्रन्थ में ही मिल जाता है।

(६) नैयायिकों के अनुसार शब्द नित्य भी नहीं है। उनका कहना है कि जब हम अक्षरों को देख या सुन कर इस रूप में पहचान लेते हैं कि हमने इन अक्षरों को पहिले भी देखा या सुना था, उस परिस्थिति में हमारी यह धारणा भ्रामक ही रहती है। वस्तुतः हम लोग पूर्व परिचित अक्षरों को फिर से नहीं पहचानते अपितु उसी जाति के दूसरे अक्षरों का परिचय प्राप्त करते हैं; पर भ्रान्त धारणा के कारण इन दूसरे अक्षरों को पूर्व परिचित ही मान लिया करते हैं।

इसी आधार पर नैयायिकों के अनुसार शब्द नित्य नहीं अनित्य ही हैं और नष्ट हो जाया करते हैं। इसीलिए न्याय-दर्शन वेदों को शब्द प्रधान नहीं मानता और उन्हें इस रूप में नित्य भी नहीं मानता। वेद के शब्दों को परिवर्तन-शील ही मानता है।

(७) न्याय-दर्शन के सिद्धान्त के अनुसार वेद पौरुषेय हैं। क्योंकि यह दर्शन वेदों को ईश्वरकृत मानता तो अवश्य है पर उसके अनुसार स्वभावतः अशरीरी ईश्वर वेदों की अभिव्यक्ति के लिए शरीरी अवश्य हुआ होगा। और जब ईश्वर शरीरी हो गया तो वह पुरुष ही हुआ और उसकी कृति पौरुषेय। मीमांसा-दर्शन का इन विरोधी भावनाओं को असिद्ध करने का प्रयास भी देखने के लायक ही है।

मीमांसकों की धारणा है कि यदि हम वेदों को पुरुषकृत मानने लगेंगे तो वेद भी साधारण ग्रन्थों की तरह अपनी कही हुई बातों को अनुमान के आधार से सिद्ध करेगा; पर वस्तुस्थिति तो ऐसी दिखलाई पड़ती है कि वेद के शब्द

जिस सत्य की घोषणा करते हैं वे अनुमान से सिद्ध किए ही नहीं जा सकते। मनुष्य की बुद्धि उस शाश्वत और अलौकिक सत्य को सिद्ध ही नहीं कर पाती। नैयायिक भी वेदों को प्रमाण अवश्य मानते हैं। इसीलिए मीमांसक कहते हैं कि जब वेद सत्य की घोषणा करते हैं और मनुष्य की सीमित बुद्धि अनुमान द्वारा उस सत्य को नहीं सिद्ध कर पाती तो हमें उन शब्दों को ज्यों का त्यों स्वीकार करना पड़ता है और इसीलिए वेद शब्दप्रधान हैं। उनके शब्दों में कभी परिवर्तन होता ही नहीं। वे शब्द अनादि काल से उसी रूप में चले आ रहे हैं। वे किसी शरीरी व्यक्ति की रचना नहीं अपितु अशरीरी अनादि सर्वव्यापी ब्रह्म की सात्विक इच्छा से बार बार प्रकट हुआ करते हैं और उसी ब्रह्म के व्यक्त स्वरूप ही हैं।

मीमांसकों का कहना है कि यदि ईश्वर शरीरी हो जायगा तो शरीरी धर्म का पालन करते हुए उस शरीरसे सर्व व्यापी नहीं हो पायेगा। ऐसी स्थिति में सीमाबद्ध उसके मनुष्यस्वरूप को अलौकिक वेदों का ज्ञान नहीं हो सकता। इसीलिए वेद किसी पुरुष की सृष्टि नहीं हैं। वे अनादिकाल से अपरिवर्तित रूप में चले आ रहे हैं। वे कर्मरूपी ब्रह्म के व्यक्त स्वरूप ही हैं। मीमांसक ब्रह्म को कर्म स्वरूप मानकर, कर्म को ही सर्वव्यापी मानते हैं।

न्याय दर्शन के उस मत पर कि वेदों के प्रणेताओं के नाम तो वेदों की भिन्न भिन्न शाखाओं के नाम के साथ दिए हुए हैं, मीमांसकों का कहना है कि इसका केवल इतना ही अर्थ है कि उन शाखाओं का उन उन ऋषियों ने अध्ययन किया था जिनके नाम से वेदों की वे भिन्न भिन्न शाखाएं पुकारी जाती हैं; वस्तुतः वेद अनादि हैं और इसका प्रमाण यह है कि हम जब जब अक्षरों को देखते हैं उन्हें पहिचान लेते हैं। इसीलिए पहचानने की यह परम्परा भी अनादि है। हम उसी जाति के भिन्न भिन्न अक्षरों को नहीं देखते अपितु उन्ही अक्षरों को बार बार पहिचानते हैं। 'राम' शब्द यदि हमारे सामने सौ बार लिखा जाय तो र और म अक्षर सौ सौ नहीं होंगे। ऐसी स्थिति में एक ही 'र' और 'म' को हम सौ बार उसी रूप में पहचान लेते हैं। वस्तुतः अक्षर नाम भी यही बतलाता है कि उसमें परिवर्तन नहीं होता। 'अक्षर' शब्द का अर्थ ही 'नित्य' है। वेदों की शब्द प्रधानता के लिए ऊपर कारण दिए गए हैं।

प्रलय काल में अक्षरों का लोप होता है या नहीं इस पर स्पष्ट व्यक्तव्य मीमांसकों का नहीं है। आचार्य कैय्यटके म. भाष्य टीका प्रदीप के अनुसार वेदों के शब्द प्रलय काल में नष्ट तो अवश्य हो गये, पर ऋषियों की अलौकिक दृष्टि ने फिर से उन्हें उसी रूप में देख लिया।

कुल्लुक और शंकराचार्य का मत इससे भिन्न ही है। उनके अनुसार महा प्रलय के समय वेद ब्रह्मा की स्मृति में सञ्चित थे। इस बात का साक्षी भागवत

भी है। हमने इस बात की चर्चा पहले की है कि ब्रह्मा ने प्रलय के बाद ध्यान किया और वेद उनके चारों मुखों से व्यक्त हुए।

एक मत है कि वेदों में इन्द्र इत्यादि ऐसे देवताओं का वर्णन आया है जो देशकाल की सीमा के भीतर पैदा हुए और जो ग्रन्थ ऐसे देवताओं का स्तवन करते हैं वे भी इस देवताओं की सृष्टि के बाद ही बने होंगे; इसी से हम इन ग्रन्थों को अनादि कैसे कह सकते है ?

इसके विरुद्ध शङ्कराचार्य का कहना है कि वेद में वर्णित इन्द्र इत्यादि, किसी एक विशेष इन्द्र तथा वरुण इत्यादि का स्तवन नहीं करते, अपितु इन्द्र और वरुण इत्यादि की उस जाति का वर्णन करते हैं जो प्रत्येक कल्प में विश्व में प्रादुर्भूत हुआ करती है। ऐसे करोड़ों अथवा असंख्य इन्द्र तथा वरुण इत्यादि देवता प्रकट हो चुके और आगामी कल्पों में प्रकट होंगे। वेद इसी पूरी जाति का स्तवन करते हैं। देवताओं की अनादि परम्परा का स्तवन करने वाले वेद अनादि हैं, वे किसी कल्प विशेष में प्रादुर्भूत होने वाले देवताओं की स्तुति नहीं करते। इसीसे यह स्तुति किसी विशेष समय से बाँधी नहीं जा सकती। वेदों के शब्दों से पूरा विश्व, जिसके अन्तर्गत देवता भी आजाते हैं ठीक इसी प्रकार सृष्ट होता है जिस प्रकार स्फोट से अर्थ उत्पन्न होता है। जिन शब्दों के उच्चारण मात्र से अर्थों का प्रस्फुटन (स्फोट) होता है उसी प्रकार वेदों के शब्दों के उच्चारण मात्र से उन शब्दों के अर्थ रखने वाली विश्व की वस्तुएँ-एक कण से लेकर इन्द्र पर्यन्त-उत्पन्न हो जाती हैं।

सांख्य दर्शन के आदि आचार्य कपिल न्यायदर्शन के प्रथम आचार्य न्याय-सूत्रकार गौतम के अनुकूल ही वेद के अनादित्व का खण्डन करते हैं; पर साथ ही साथ न्यायदर्शन से वेदों की पौरुषेयता मानने को वे सहमत नहीं होते। कपिल के अनुसार वेद की सृष्टि के समय कोई पुरुष उत्पन्न ही नहीं हुआ था तो वेद पौरुषेय कहा ही कैसे जाय। उनके अनुसार तो विष्णु भी वेदों के स्रष्टा नहीं माने जा सकते। कपिल के मत से विष्णु मुक्त पुरुषों में अग्रगण्य हैं तथा सर्वदर्शी हैं; पर साथ ही उनकी अशान्त प्रकृति उन्हें वेद का स्रष्टा होने के योग्य नहीं रहने देती। विष्णु के अतिरिक्त कोई दूसरा व्यक्ति भी नहीं है जो वेदों का सृष्टा कहा जा सके; क्यों कि दूसरे पुरुषों में सर्वदर्शित्व नहीं है। कपिल का मत है कि यद्यपि आदि पुरुष ने वेदों का उच्चारण किया होगा और वहीं से वेद का आरंभ हुआ होगा तिस पर भी आदि पुरुष को हम वेद का सृष्टा नहीं मान सकते; क्योंकि तन्मयता की अवस्था में अनजान में ही आदि पुरुष के निःश्वास से वेदों की उत्पत्ति हुई। अतएव हम आदि पुरुष को भी वेदों का स्रष्टा नहीं कह सकते। वेदों को आदि पुरुष ने अपने चिन्तन और मनन से जागरूकता की अवस्था में जन्म नहीं दिया था।

स्वयं वेदों में ही कुछ ऐसी ऋचाएँ हैं जो आदि ऋषियों की अलौकिक शक्ति की घोषणा करती हैं। यद्यपि कालिदास के रघुवंश काव्य में वरतंतु ऋषि के शिष्य कौत्स ऋषि से रघु ने शिष्टाचार में पूछा है—"अप्यग्रणीर्मन्त्रकृतामृषीणां कुशाग्रबुद्धे कुशली गुरुस्ते" (हे कुशाग्रबुद्धि, क्या मंत्रों के निर्माता ऋषियों के अग्रणी (प्रमुख) तुम्हारे गुरु सकुशल हैं) तथा वेदों की ऋचा "माहमृषीन् मन्त्रकृतो मन्त्रपतीन् परादाम्" भी है जिनमें ऋषियों को मंत्रकृत (मंत्रकर्ता) तथा मन्त्रपति कहा गया है, फिर भी स्वयं कालिदास ने ऋषियों को "अकृतवचसाम्" और श्रुति ने "वाचाविरूप नित्यये" कह कर ऋषियों को मन्त्र द्रष्टा और शब्दों को नित्य अथवा अनादि ही माना है। वेदों की ऋचा "ऋचः सामानि यजूंषि। सा हि श्रीरमृता सताम्" वाणी की नित्यता को स्पष्ट घोषित करती है। इससे स्पष्टतः यही प्रतीत होता है कि "मंत्रकृत" का अर्थ मन्त्र को प्रकट करने वाला उन्हें प्रकाश में लाने वाला ही होगा।

वेदों के ऋचाओं से यह भी मालूम पड़ता है कि ऋषियों ने वेदों में जो जो स्तुतियां की हैं तथा जो क्रियायें (कर्मकाण्ड) व्यक्त की हैं वे सब सामान्य देवताओं के सामूहिक स्वरूप के द्वारा अथवा सरस्वती के द्वारा अथवा वेदों के एक अथवा अनेक देवताओं के द्वारा अलौकिक अनुभूति के समान उन्हें प्राप्त हुईं। वे अनुभूति के व्यक्तीकरण से माध्यम मात्र बने। अनुभूतियां तो शाश्वत हैं।

भिन्न भिन्न प्रलयों के बाद विष्णु के भिन्न भिन्न रूपों ने शाश्वत वेदों का जलप्लावन से उद्धार किया। नीचे के श्लोक देखिए :—

भूतलातलमध्यस्थो हत्वा तु मधुकैटभो। उद्धृता येन वै वेदास्तस्मै मत्स्यात्मने नमः।

भीमस्तवराज, महाभारत, श्लोक ७६

उत्तिष्ठतस्तस्यजलोरु कुक्षेर्महावराहस्यमहींविदार्य।
विधुन्वतो वेदमयं शरीरं लोकांतरस्थं मुनयो गृणन्ति॥

ग. मो. श्रीमद्भागवत श्लोक ७७

मधु तथा कैटभ का वध करके मत्स्य भगवान् ने वेदों का एक प्रलय के बाद उद्धार किया।

महावराह जब एक प्रलय के जल के ऊपर आये तो उनका शरीर भी वेदमय ही दिखलाई दिया। ब्रह्म का व्यक्त रूप वेद बार बार उसके व्यक्त रूपों के साथ दिखलाई दिया।

इस प्रकार एक बहुत बड़ी परम्परा वेदों की अपौरुषेयता तथा उनकी शाश्वतिक स्थित की साक्षी देती है। परम्परा तो यह भी बतलाती है कि वेद एक ही है। उसके चार वर्ग भगवान् वेदव्यास ने किये "एक एवासौ भगवान् वेद·

राशिर्विभक्तः परं वेदव्यासेन"। भारतीय साधकों की परम्परा वेदों को केवल ग्रन्थरूप ही नहीं अपितु भगवान् का स्वरूप भी मानती चली आई है। उदाहरण पर्याप्त दिये गये हैं; पर इस ओर तुलसीदासजी भी एक अलौकिक प्रमाण की तरह हमारा ध्यान आकृष्ट करते हैं। बालकाण्ड के प्रारम्भ में उन्होंने वेदों की स्तुति इन शब्दों में की हैः—"बन्दौं चारौं वेद, भव वारिधि बोहित सरिस। जिन्हैं न सपनेहु खेद, वर्णत रघुपति विशद यश॥" चारों वेदों की स्तुति में एक तो तुलसीदासजी ने उन्हें संसारसागर के लिए नौका के समान कहा है और वेदों को ब्रह्म का निरन्तर तथा शाश्वत प्रार्थी माना है। इस प्रकार तुलसी भी वेदों को शाश्वत ब्रह्म के शाश्वत उपासक की तरह देखते हैं।

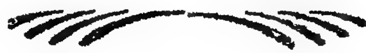
उत्तरकाण्ड में राज्याभिषेक के बाद तो वेदों के चेतन स्वरूप की बड़ी ही कुतूहल पूर्ण अलौकिक झाँकी तुलसीदास ने दिखलाई है। :—

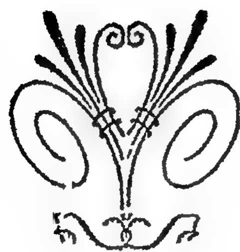
भिन्न भिन्न अस्तुति कर, गे सुर निज निज धाम॥
बंदि वेष धरे वेद तहँ, आये जँह श्रीराम॥
प्रभु सर्बज्ञ कीन्ह अति, आदर कृपा निधान।
लखा न काहू मर्म कछु लगे करन गुणगान॥

यहाँ वेद भगवान् का चेतन स्वरूप बड़ा ही मार्मिक हो गया है। यही है वेदों की शाश्वतिक स्थिति। इसी अपौरुषेयता के कारण संसार वेदों को देखकर मुग्ध हो गया। साधकों ने उसके परम तत्व का दर्शन किया। प्रत्येक पुराण तथा शास्त्र ने किसी न किसी प्रकार उसी की महिमा गायी। प्रारंभिक काल से अवतक के साधक, चिन्तक तथा कवियों ने अपनी अनुभूति परम्परा वेदों से ही ग्रहण की है। संसार तथा अध्यात्म दोनों का चिन्तन वेदों के आधार पर ही आश्रित रहा। कबीर के समान निर्गुणोपासक संत ने भी कहा है "बेद कतेब कहहु मत झूठे, झूठा जो न विचारे" कबीर की यह धारणा हृदय को भेदती हुई बाहर व्यक्त हुई थी; क्योंकि "एकं सद्विप्रा बहुधा वदंत्यग्निमिंद्रं मातारिश्वानमाहुः"। वेद की यही ऋचा कबीर की साधना का मूलभूत आधार है। इसी से मुग्ध होकर कबीर का हृदय वेद का भक्त हो गया। यद्यपि भगवान् कृष्ण ने "त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यों भवार्जुन कहा" फिर भी उन्हें वेदविहित यज्ञों की प्रतिष्ठा करनी ही पड़ी। उन्होने स्पष्ट शब्दों में कहाः—"द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथापरे। स्वाध्यायज्ञान ज्ञान यज्ञाश्च यतयः संशितव्रताः सर्वेऽप्येते यज्ञ विदो यज्ञक्षपितकल्पषाः"

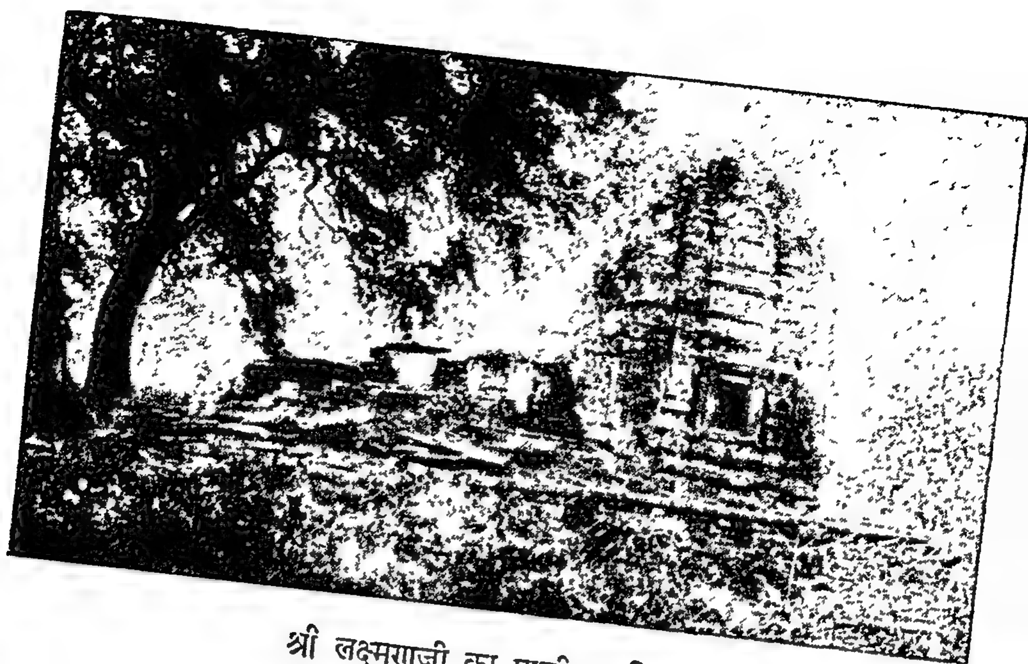
"यज्ञशिष्टामृतभुजोयान्ति ब्रह्मसनातनम्।
नायं लोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्य कुरु सत्तम॥
"एवं बहुविधा यज्ञा वितता ब्रह्मणो मुखे।

इतिहास-खण्ड

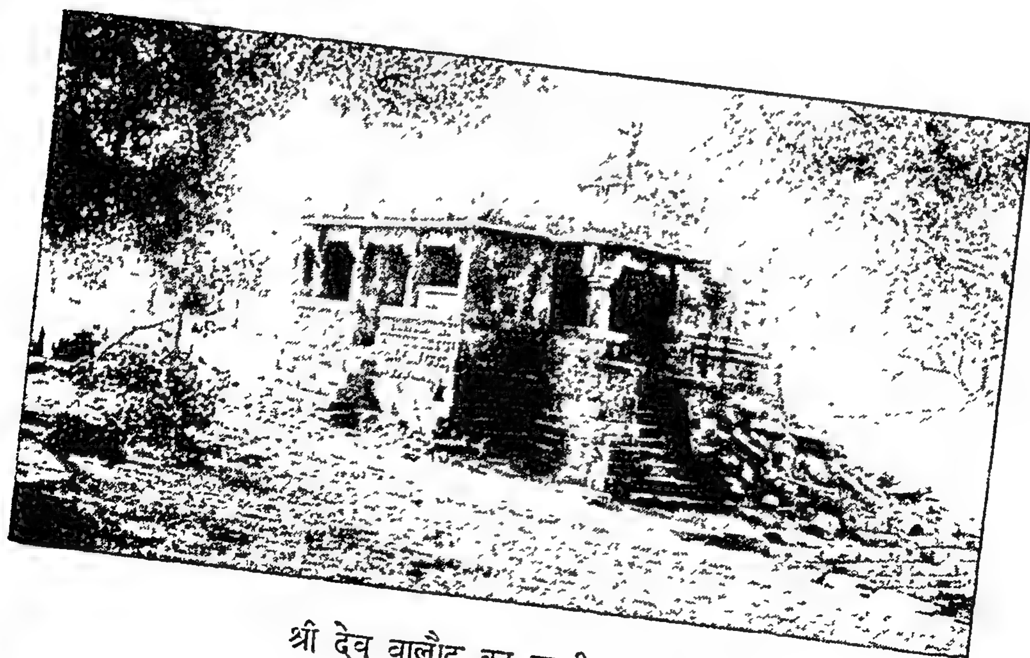




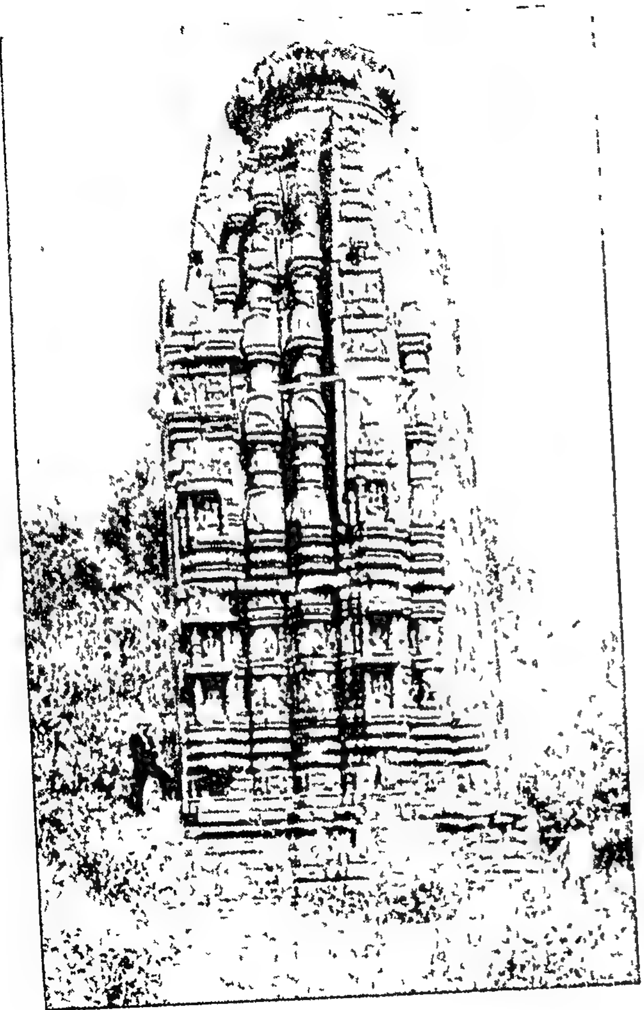
मुझमें कितना इतिहास भरा,
कितना निर्माण विनाश भरा।
मुझमें पतझड़ मुझमें बसन्त,
है कितना रोदन हास भरा।



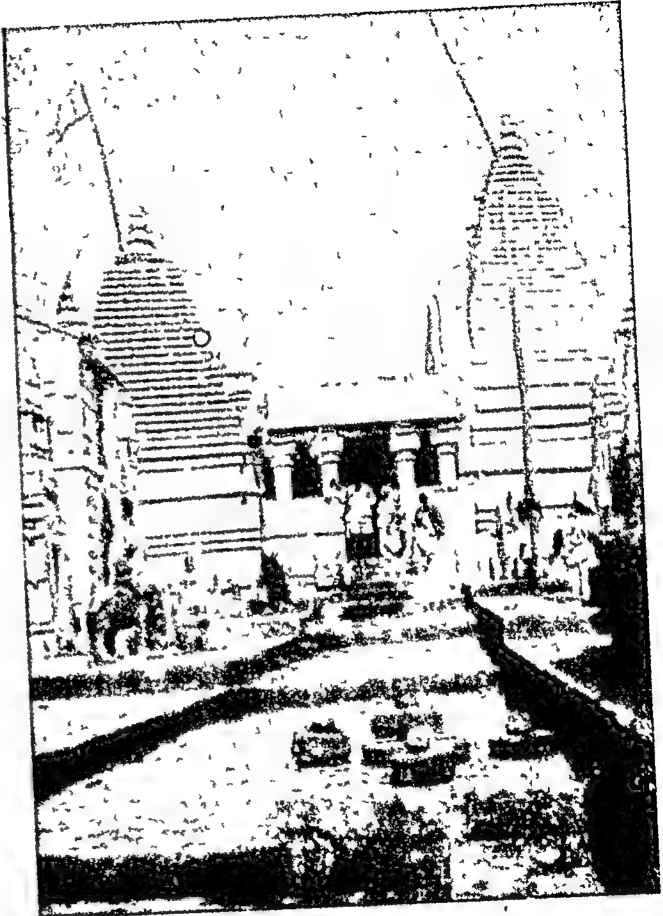
श्री लक्ष्मणजी का प्राचीन मन्दिर,
सिरपुर–रायपुर



श्री देव बालौद का प्राचीन मन्दिर,
[ज़िला दुर्ग]



प्राचीन जैन मन्दिर, आरंग



श्री नर्मदाजी का मन्दिर, अमरकंटक

महाकोसल-कीर्ति-कथनम् ।



(रचयिता :—श्री पं० लोचनप्रसाद पाण्डेय)

महानदी, महामाया, महाशिव-महाभवः ।
नृपा यत्र स देशोऽयं महाकोसलसंज्ञकः ॥१॥

महारत्ननिधिर्दिव्यो महाशक्तिधरो महान् ।
दीप्तोऽयं दक्षिणाशायां देशो दक्षिणकोसलः ॥२॥

शैले राजति नाट्यमण्डपमथ श्रीरामदुर्गेशुभे॥
श्रृङ्गे× सिंहपुरे च चित्तुरचना लीला शिलायामहो ।
नाना निर्झर शैल-गह्वर-गृहाः ख्याताः पुरातत्वतो
यस्मिन् सन्ति सुवर्णहीरकनिधिः† सोऽयं महाकोसलः ।३॥

यस्मिन् मेकलपर्वतस्सुविमलो रम्यात्रकूटोवरो
भक्तिप्रेमविधायकोऽहि भगवान् श्रीशौरिनारायणः ।
श्रीगन्धर्वपतिः कुलेश्वरशिवो राजीवनेत्रो हरि
र्नाथो यत्र नृसिंहनाथ इति वै ख्यातो महाकोसलः ॥४॥

शस्यश्यामलकान्तिपूरितरसा, रम्या विहङ्गावली
यस्मिन् काननवाटिका सुविमला चित्रोत्पला तण्डुला‡ ।
चित्रा भूधरश्रृङ्गपर्वतपटाः सोऽयं सदा कीर्तितः
श्रीसौन्दर्यकलाकलापकुशलो वन्द्यो महाकोशलः ॥५॥

सौन्दर्यं शिवनाथ-पुण्यपुलिने यत्रास्तिशान्तिप्रदं
नृत्ये यत्र रता सुतैलतटिनी, हंसोदका, मानदा* ।

॥ रामगढ़ (सुरगुजाराज्य) के पहाड़ोंपर प्राचीनतम नाट्यमण्डप हैं ।

× सिंहनपुर या सिंवनपुर (नहरपाली B.N. Ry—रायगढ़राज्य) ।

† सम्बलपुर नगर के निकट महानदीगर्भस्थित 'हीराकूद' स्थान ।

‡ तण्डुला-नदी-तण्डुला या तण्डुला नदी जो रायपुर और दुर्गजिलों में बहती है ।

* चित्रोत्पला (महानदी) सुतैल (तैल-नदी या तैलवाहा नदी)

* शिवनाथ, हंसादका—हंसदो या हासदेव नदी । मानदा मान या मान्द नदी

रेवारामवसन्तकोकिलकलो यस्मिन सुधां वर्षति
पुण्यारण्यमयो महाकविकुलस्पर्धी महाकोसलः ॥६॥

यस्मिंस्तिष्ठति पद्मलोचन इति ख्यातः सुतीर्थो महान्
रेवाशोणविधौतरलधरणीशृङ्गाररामाद्रिकः ।
यस्मिन् राजति शम्भुसेवितजला चित्रोत्पला प्रोज्वला,
सोऽयं कोशलनाथकीर्तिकलितो देशो महाकोसलः ॥७॥

प्रशस्तिकृतः कवयः ।

कोसल-कवि-नामावली

चित्रोत्पलाचुम्बितचारुदेशे श्रीकोसले स्वर्णपुरे च शुभ्रे
ये कोविदाः सत्कविवृन्दयुक्ताः सन्ति स्म तेषामिह कीर्तिगानम् ॥१॥

रेवातटे रत्नपुरे च रम्ये तुम्माण-राज्ये तलहारि-भूमौ ।
महानदी-वारि-विधौत-देशे पुरा बभूवुः कविकोविदा इमे ॥२॥

ईशानःकविः

ईशानः कविराजपण्डितवरो विद्याकलापारगः
श्रीलश्रीपुरगर्वगौरव-शशी चित्रोत्पला-चारणः ।
राज्ञी श्रीशिवगुप्तभूपजननी श्रीवासटा धीसटा
येन श्रीपतिसद्मकीर्तिरचनापुष्पैः शुभैः पूजिता ॥३॥

प्राक् पृथ्वीशः शिवयुतमहागुप्तबालार्जुनाख्यो
यस्य स्नेही सहृदयकविः सोऽयमीशानदेवः ।
जातो वंशे 'मुखर' इति यो वर्म्मणां सूर्य्यवर्म्मा
पुत्रीं तस्य स्वनृपजननीं वासटां यः सिषेवे ॥४॥

भास्करभट्टः कविः

प्राप्तो युद्धे नृपसदसि यः केसरीख्यातिमुच्चै
भव्यं भूपं भवयुतमहो देवनामाभिधं तम् ।
तायिश्रद्धारतगुणिजनप्रेमपात्रं शशंस
भट्टो नाम्ना कविकुलगुरु भास्करः कोसलेशम् ॥ ५ ॥

ईशानो भास्करभट्टश्च*

ईशानः कविराजराजतिलकश्चिन्तातुराङ्काभीधः
श्रीवालार्जुनकोसलेश्वरसखः सत्काव्यचिन्तामणिः ।
भट्टाख्यः श्रुतिमान मनीषिमुकुटो धीभास्करो भास्करो
यस्य श्रीभवदेवराजकमलं दिव्यैः करैः कान्तिमत् ॥ ६ ॥

---

* ईशान (चितातुराङ्क) नामक कविने महाशिव गुप्तकी माता वासटाद्वारा प्रतिष्ठापित विष्णूमन्दिरकी प्रशस्ति की रचना की है । भास्करभट्ट कविने भवदेव नामक कोसलके राजाकी प्रशंसा में शिलालेख प्रस्तुत किया है । ये उभय कवि सन ईसवीके ६००—७०० में थे ।

कृष्णदण्डी

वैद्य श्रीकृष्ण दण्डी कुशलकविवरः सज्जनः शम्भुभक्तः
काव्यानन्दे प्रमत्तो हरचरितरसास्वादने दत्तचितः ॥

कोशलेन्द्रो ययातिः

भूपालः कोसलेन्द्रो विधुकुल तिलकः श्रीययाति प्रसिद्धः
वाग्देवी पादसेवी बुधसुजनसखः श्रीकलिङ्गत्रयीशः ॥ ७ ॥

महानदीमण्डितमञ्जुभूमौ पुरे विनीतामिध आदिपीठे ।
ताम्रे प्रशस्ति विशदां चकार श्रीकोशलेन्द्रो नृपति र्ययातिः ॥८॥

चित्रोत्पलाचरणचुम्बितचारुभूमौ श्रीमान् कलिङ्गविषयेषु ययाति पुर्याम् ।
ताम्रे चकार रचनां नृपति र्ययातिः श्रीकोसलेन्द्र इति नामयुतः प्रसिद्धः ॥९॥

श्रीसिंहदत्तः

ततो यस्य विनीतनामकपुरे चक्रे पुरं नूतनं
हीरास्थान महानदीतटवरे श्रीकोसले दक्षिणे ।
भूपो भीमरथः कलिङ्गतिलको यस्य प्रभायां प्रभुः
सोऽयं संधृतसन्धिविग्रहपदः श्रीसिंहदत्तः कृती ॥१०॥

भूपो भीमरथो महाभवयुतो गुप्ताभिधानोवर—
मास्तेऽत्यन्त सुखे ययातिनगरे चित्रोत्पलाचुम्बिते ।
यस्य क्ष्मा-परिपालने नयगुणे सोऽयं महाकोसले
प्रख्यातो धृतसान्धिविग्रहपदः श्री सिंहदत्तः कृती ॥ ११ ॥

सुमङ्गलदत्तः

वन्यो दत्त-सुमङ्गलः सुनिपुणः श्रीतारदत्तात्मजो
यस्मै कीर्तिमदात सुमञ्जुलशिलालेखः शिवस्यालये ॥

श्रीनारायणः

श्रीरामाभ्युदयाभिधं रसमयं काव्यं कृतं येन वै ।
श्रीनारायण सत्कविर्विजयते गोपाल-वीरप्रियः ॥ १२ ॥*

अज्ञातनामा

गन्धर्वेश्वरपादपद्मजसुधासक्तेन वै केनचित्
दिव्ये धाम्नि सदाशिवस्य रुचिरे काव्यं कृतं प्रस्तरे ।

---

* श्रीवक्षश्वरणाब्जपूजनमतिनीरायणः सत्कविः
श्रीरामाभ्युदयाभिधं रसमयं काव्यं सतथोव्यधात् ॥
स्मृत्यारूढ़ यदीय वाक्यरचना प्रादुर्भवन्निर्भर-
प्रेम्णोल्लासितमिसवृत्तिरमुचत् वाग्देवता वल्लकीम् ॥

पुजारीपाली का शिला लेख ।

मालापुष्पसुगन्धचन्दनसमा शब्दवल्ली निर्मला
सत्कीर्ति वितनोति सत्कविकुले श्रीकोसले श्रीपुरे ॥ १३ ॥

अल्हाण-कविः—(हैहयवंशियों के राजत्व काल में)

गर्गेश्वरः सुकविरल्हण ईशभक्तस् तुम्माणदेशपतिराजसभाप्रधानः ।
चक्रेश्वरस्य गुणकीर्तनपुण्यधामा विद्यानिधिः सकलकोसलकाव्यचन्द्रः ॥१४॥

कीर्तिधरः वत्सराजः धर्मराजः
मामे सुरगणः रत्नसिंहः

विद्वान श्रीवत्सराजो नृपतिगुणकथागायकः कीर्तिसूनुस्
तत्पुत्रो धर्मराजो निपुणकविवरश्चन्द्रचूडस्य भक्तः ।
मामेनामा कवीशः सुरगणजनको रत्नसिंहोऽस्य पुत्रः
ख्यातो वास्तव्यवंशो नृपवरसदसि प्राप्तमानो मनीषी ॥१५॥

कुमारपालः

श्रीमान् सहस्रार्जुनवंशदीपः कुमारपालः सुकविप्रधानः ।
महानदीवारिविलासमुग्धो महागुणज्ञो भवभूतिभक्तः ॥१६॥

विद्यानिधिर्ग्रामपतिर्मनीषी चण्डीशपादाम्बुजचञ्चरीकः ।
प्रासादकारः शशिशेखरस्य धन्योऽस्ति यः कोसलसत्कवीन्द्रः ॥१७॥

त्रिभुवन पालः

त्रिभुवनपालः सुकविमरालः कीर्तिविशालः सुकविदले ।
सुकृतिरसालोऽर्चितशशिभालो जितभवजालो भूमितले ॥१८॥

देवपाणिः नृसिंहो दामोदरमिश्रः

श्रीदेवपाणिर्बुधवृन्दवन्द्यः श्रीमान् नृसिंहो रचनाललामः ।
प्रशस्तिकारः कवितारसज्ञो दामोदराख्यो हरिभक्तिपूतः ॥१९॥

गीतमाधवसद्गीतिकाव्यमद्भुतमिष्टिदम् ।
रेवारामकृतिर्गंगानर्मदालहरीसमम् ॥२०॥

श्रीवास्तव्यकुलेजातः ख्यातः पण्डित इत्यथ ।
प्रशस्तिकारश्शृङ्गारो रेवारामो द्विजानुगः ॥२१॥

प्राचीन महाकोसल

(लेखक :—पं० लोचनप्रसाद पाण्डेय)

यदि यह कहा जाय कि वर्तमान छत्तीसगढ़ अर्थात् महाकोसल मनुष्य जाति की सभ्यता का जन्म-स्थान है तो आप कदाचित् इस कथन को केवल मिथ्याभिमान मानकर कुछ महत्व न दें। मैंने इस अरण्य तथा पिछड़े हुए प्रांत के वनवासियों के सहवासी वर्तमान उच्च-शिक्षा-प्राप्त एक विद्वान् को भारत-विख्यात इतिहासज्ञों के निकट यह कहते सुना है कि वर्तमान समय में हमारा कोई इतिहास नहीं है पर मानव जाति की आदि सभ्यता यहीं पली है।

पुरातत्वज्ञ पण्डितों के अनुसन्धान तथा उपलब्ध सामग्रियों के निरीक्षण एवं अध्ययनजन्य ज्ञान ने इस अन्धकार-पूर्ण महाकोसल को आलोक दान करके उसे 'महान' शब्द का प्रकृत अधिकारी प्रमाणित कर दिया ह।

छत्तीसगढ़ के पहाड़ों में, चट्टानों पर जो चित्रकारी मिली है वह संसार में अद्वितीय है। चित्रकला के इतिहास में उसका सर्व प्रथम स्थान है। ऐसे चित्र-शिल्प का निर्माण कब और किस जाति द्वारा हुआ था—इस पर अभी विद्वान् पुरातत्वज्ञों में मतभेद है। कोई तो उसे पचास हज़ार वर्ष पहिले का कहते हैं और कोई उसे बीस हज़ार वर्ष पहिले का। क्या दक्षिणा-पथ में अवस्थित कोसल देश की महा-प्राचीनता के ये चिन्ह उसे 'महाकोसल' नाम धारण करने में सहायक न होंगे?

विक्रम खोल का शिलालेख

इस प्राक-ऐतिहासिक प्रस्तर-चित्र-शिल्प का अध्ययन एक महत्व पूर्ण विषय है, पर इस ओर अभी तक महाकोसल के सुशिक्षितों का ध्यान गया ही नहीं है। इस प्रस्तर-चित्र-शिल्प के बाद उच्च महत्व की वस्तु विक्रमखोल का शिला लेख है जिसकी लिपि को प्रसिद्ध पुरातत्वज्ञ श्रीकाशीप्रसाद जायसवाल अनुमानत: चार हज़ार वर्ष प्राचीन मानने के पक्ष में थे। इस लेख की लिपि को जायसवाल महोदय मोहनजोदड़ो तथा ब्राह्मी लिपि की मध्यवर्ती तथा पारस्परिक सम्बन्ध-स्थापनकारी कड़ी मानते थे। अभी इस लिपि को पुरातत्त्व विभागवालों ने पूरा पूरा पढ़ा नहीं है। पर हिन्दू विश्वविद्यालय के डाक्टर प्राणनाथ ने इस

लेख का पाठोद्धार अपनी शैली से कर लिया है। वे इसे ईसा से १५००-२००० वर्ष पूर्व का मानते हैं और विक्रमखोल पर्वत को चेदि वंशीय तात्कालिक राजाओं का प्रसिद्ध तीर्थस्थान कहते हैं।

सन् १९३२ में जब इस विक्रमखोल लेख का पता पहिले पहल लगा तो संसारभर के पुरातत्वज्ञ पण्डितों में खलबलीसी मच गई थी। महाकोसल के इतिहास की सामग्रियां अभी वन-पहाड़ों और गिरि-गुहाओं में छिपी पड़ी हैं। उनकी खोज और प्रकाशन का कोई सुव्यवस्थित प्रबन्ध नहीं हुआ है।

साहित्य के द्वारा हमारे कोसल देश के नाम पर जो प्रकाश पड़ा है उससे उसका इतिहास ईसा के ७०० वर्ष पूर्व माना जा सकता है। महा वैयाकरण पाणिनी ने अपने व्याकरण में 'कलिंग' और 'कोसल'❀ नाम सम्बन्धी नियम-पर सूत्र लिखे हैं। अनेक भाष्यकारों का मत है कि यह उल्लेख दक्षिण कोसल के लिये किया गया है। तब, अर्थात् ईसा से ७०० वर्ष पूर्व, इस देश का नाम कोसल ही था। समुद्रगुप्त के प्रयाग वाले स्तम्भ-लेख में भी इस देश का नाम कोसल लिखित है। ईसा से ३०० वर्ष पूर्व की ब्राह्मी लिपि में लिखित दो ताम्र मुद्रायें विलायत के ब्रिटिश म्यूजियम में सुरक्षित हैं। इनपर कोसल चेदि की राजधानी 'त्रिपुरी' का नाम अङ्कित है। साथ ही स्वस्तिक, सरित और शैल के तीन चिन्ह उन पर बने हुए हैं। मानों ये तीन चिन्ह, तीन राज्य-कोसल, मेकल और चेदि के द्योतक हों। मुद्राङ्कित इन तीनों चिन्हों तथा 'त्रिपुरी' नाम से तात्कालिक शासक या राजवंश पर कुछ प्रकाश नहीं पड़ता।

इसी समय के अर्थात् ईसा से ३०० वर्ष पूर्व के आसपास के दो पाली लेख सरगुजा (या सुरगजा) राज्य की पहाड़ी की गुफा में मिले हैं। उनमें कवि तथा लूपदखे (रूपदक्ष) पद आये हैं। यथा—'आदीपयन्ति हृदयं समावगरुकवयो' —कविगण जो स्वभाव से ही सम्मान के योग्य हैं हृदय को आलोकित करते हैं, अथवा उसे प्रज्वलित करते हैं।

दूसरा लेख है—

सुतनुका नामं देवदासिकी
तम कमयिथ बालानसिये
देवदीने नाम लुपदखे (रूपदक्ष)

एक देवदासी थी जिसका नाम 'सुतनुका' था। उसका प्रेमी वाराणसी-वासी देवदीन नामक मूर्तिकार (रूपदक्ष) था। ये पाली लेख जिन गुफा मंदिरोंपर हैं वे गुफा मंदिर 'नाट्यमण्डप' के काम में लाये जाते थे और वहां आज से दोहज़ार वर्ष पहिले नाटक खेले जाते थे। उस पुराने जमाने में भी इस देश के

❀ अष्टाध्यायी में दन्त 'स' युक्त कोसल शब्द है।

निवासी इतने शिक्षित और सुसंस्कृत थे कि 'साहित्य, संगीत तथा कला' की त्रिवेणी नाटकाभिनय के रूप में उनके हृदयों को सरस एवं आह्लादित करती रहती थी।

इन गुफा मंदिरों की भीतरी दीवारों पर 'भित्ति-चित्र' हैं जो उस समय की 'ललितकला' के नमूने हैं। जिस ढंग के 'भित्तिचित्र' अजंता तथा यलोरा के गुफा मंदिरों में हैं ये 'भीत्ति-चित्र' भी उसी ढङ्ग के हैं। ये सब हमारे कोसल देश की महानता के द्योतक हैं।

गुञ्जी का शिला लेख

सकती राज्य के गुञ्जी नामक गांव के पहाड़ का शिला लेख भी बड़ा महत्व पूर्ण है। सन १९३१ में हमने स्वतः इसका अवलोकन किया था। यह गांव सकती रेल्वे स्टेशन से अनुमान १४ मील है। गांव के निकट ही दामादहरा नामक नाला है। पास ही चट्टानपर एक लेख पाली लिपि में खुदा हुआ है। महाकोसल में प्राप्त पाली लेखों में वह सबसे लम्बा है। पर अभी तक उसका पूरा पूरा पाठोद्धार और प्रकाशन नहीं हो सका है। ऐसा जान पड़ता है कि इसमें कुमार वसन्त या वीरदत्त के राजत्वकाल में एक हजार गायों के दान देने का उल्लेख है। महाकोसल इतिहास-समिति (Mahakosal Historical Society) विलासपुर की सूचना पर भारत सरकार के पुरातत्व विभाग द्वारा हाल ही में इस शिला लेख की फिर से छाप ली गई है। जब तक इसका पूरा और स्पष्ट चित्र पाठोद्धार सहित प्रकाशन नहीं होता तब तक हमें उतने ही से संतोष करना पड़ेगा जितना अभीतक यह शिला लेख पढ़ा जा चुका है। हमने भी इस लेख की छापली थी। इस लेख में चार पंक्तियां हैं। इनका पाठोद्धार अभीतक नीचे लिखे अनुसार हुआ है—

पहिली पंक्ति—सिध नमो भागवतो ....उसभतिथि............

दूसरी पंक्ति—दण्ड नायकेन वलाधिकृतेन......वसीठिपुतेन......गो सहस्रं......

तीसरी पंक्ति—.....................गोसहस्र दत ....

चौथी पंक्ति—...........इन्द्र देवेन दत्तं .... गोसहस्रं ....

उपर्युक्त लेख में तीन वार 'गोसहस्रं' वाक्यांश आये हैं और एक स्थान पर तो 'गोसहस्रं दत्तं' अत्यन्त स्पष्ट पढ़ा जाता है। पहिली पंक्ति में 'उसभतिथि' ऋषभ या वृषभ तीर्थ के लिये आया है। इसका उल्लेख महाभारत में है। यह भी हो सकता है कि प्राचीन समय में इस स्थान का नाम वही रहा हो। दूसरी पंक्ति में वसीठिपुतेन तथा दण्ड नायकेन शब्द आये हैं। अजन्ता की गुफाओं में खुदे लेखों में एक वसीठिपुत का नाम आया है पर वह इस वसीठिपुत से भिन्न ज्ञात होते हैं।

स्वर्गवासी डा० हीरालाल ने अपनी पुस्तक C.P. Inscriptions (मध्यप्रान्तीय शिला लेख) में इसके सम्बन्ध में जो लिखा है उसका उल्लेख नीचे किया जाता है :—

" इस शिला लेख के दो भाग हैं। प्रथम भाग भागवत को नमन करते हुए आरंभ होता है। इसमें समय दिया गया है-श्री कुमार वासन्त के राज्यशासन के पांचवे वर्ष के हेमन्त ऋतु के चौथे पखवाड़े का पंद्रहवां दिन। इसके ये शब्द पढ़े गये हैं-भागवतो, उसभ तिथि, थिरा गोदाच्छ, वसीठिपुत।

दूसरे भाग में तिथि दी गई है—कुमार वासन्त के राजाशासन के आठवें वर्ष के ग्रीष्म ऋतु के छटवें पखवाड़े का द्वितीय दिवस। आशा है यह लेख जब शुद्ध और पूर्ण रूप से पढ़ लिया जावेगा तब महाकोसल के इस अंचल के इतिहास पर जो गौरक्षा और कृषि के लिहाज से बड़ा समृद्धिशाली था, अच्छा प्रकाश पड़ेगा।

किरारी का यज्ञ स्तंभ

छत्तीसगढ़ के चन्द्रपुर ताल्लुके में महाकोसल के एक शक्ति-शाली शासक का अठारह सौ वर्ष प्राचीन एक यज्ञ स्तम्भ मिला है। ब्राह्मी लिपि के लेख से अलंकृत यह साल या सरई लकड़ी का खंभा सन १९२१ के अप्रेल मास में किरारी नामक ग्राम के हीराबन्ध आख्याधारी तालाब में पाया गया था। आज कल यह नागपुर के अजायब घर में सुरक्षित है। प्राचीनता की दृष्टि से यह 'यज्ञ-स्तम्भ' अद्वितीय वस्तु है। भारतवर्ष में लकड़ी पर प्रायः दो हज़ार वर्ष का प्राचीन लेख और कहीं नहीं मिला है।

डाक्टर हीरानंदशास्त्री का कथन है कि यह खोज भारत के लिए अद्वितीय है। अभी तक भारत में ऐसे कोई ४ यज्ञस्तम्भ मिले हैं। सम्भवतः भारतीय द्वीप-समूह के कोइटिया में भी इतने ही मिले हैं, परन्तु वे सब पत्थर के हैं और यज्ञों के स्मृति-यूप कहे जा सकते हैं।

यूप-द्रुम प्रायः लकड़ी के बनाये जाते थे। इस यज्ञस्तम्भ में जिन राजकर्मचारियों के पदों का उल्लेख है उससे सिद्ध है कि यज्ञकर्ता अवश्य ही एक महापराक्रमी महा राजाधिराज था एवं उसकी शासन-प्रणाली उच्च कोटि की तथा शास्त्रानुमोदित एवं सुसङ्गठित थी।

राजकीय पदों के नाम इस प्रकार हैं:—

१. नगर रखिनो (नगर रक्षक City Kotwal or Magistrate)
२. सेनापति (Commander of Army)
३. प्रतिहार (द्वारपाल Door keeper or Private Secretary)

प खे च उ ठ दि व से प च द् से १०+५ भ ग व तो उ सु भ ति थे

• • • — गोसहस्त्रं दत्तं   गुंजी शिला–लेख, सकती



नगररखिनो वीरपालित च्चिर गोहक सेनापाति देव



प्रतिहार 'खिपति' गणक नाग हे आसि गाहपातिय प्यरिक भंणकारिक

किरारी यज्ञस्तम्भ

४. गणक (खजांची Accountant or Cashier)
५. गाहपातिय (अग्निरक्षक Keeper of house hold fire)
६. भाण्डागारिक (भंडारी Store keeper)
७. पादमूलक (मंदिर रक्षक Temple attendant)
८. रथिक (सारथी Charioteer)
९. महानासिक (भोजनालय प्रबन्धक Superintendent of kitchens)
१०. धावक (संदेहवाहक या डाकिया Runners)
११. सौगंधक (इत्रों का परीक्षक (Officer-in-charge of perfumes and sanitation)
१२. गोमाण्डलिक (Officer-in-charge of Cows and Cattle)
१३. यानसतायुधधरिक (रथों और आयुधों के रक्षक Officer in charge of carriage-sheds and armoury)
१४. लेहवारक (डांक दारोगा Superintendent of letter carriers)
१५. कुलपुत्रक (इंजिनियर या मुख्य मिस्त्री (Chief of architects)
१६. हाथोराह (गजरक्षक Superintendent of elephants)
१७. अश्वारोह (Superintendent of horses).
१८. महासेनानी (Commander-in-chief)

इन उच्च राज्यपदाधिकारियों के पदों के नाम ही संङ्घटित, समुन्नत और विशाल राज्यशासन तथा आदर्श मंत्रिमण्डल के द्योतक हैं।

अत्यन्त खेद है कि ऐसे महत्व पूर्ण, अद्वितीय काष्ठ-लेखके अक्षरों की पूरी-पूरी रक्षा स्तम्भ के प्राप्त होते ही न की जा सकी और उसमें वर्णित महाराजाधिराज या परम पराक्रमी शासक-शिरोमणि का नाम, अक्षरों के नष्ट हो जाने के कारण, ज्ञात नहीं हो सका।

नागार्जुन के कारण ख्याति

ठीक इसी समय अर्थात २०० ईस्वी के अंतिम भाग में महाकोसल में सद्वाह नामक राजा राज करते थे। ये बड़े गुणग्राही और धार्मिक थे। उस समय संसार के चार विद्या एवं ज्ञानसूर्यों में बौद्ध दार्शनिक नागार्जुन प्रमुख थे। राजा सद्वाह से इन अलौकिक गुणी विद्वान नागार्जुन की मित्रता थी। उनके राज्य में ये निवास करते थे।

नागार्जुन के कारण सुदूर चीन तथा सिंहल द्वीप में भी महाकोसल का नाम विख्यात था। चीन देश की भाषा में उनके ग्रन्थों का अनुवाद हुआ करता था। चीन प्रवासी 'कुमार-जीव' नामक विद्वान् ने नागार्जुन के संस्कृत जीवन-चरित का अनुवाद चीनी भाषा में सन् ४०५ ई० में किया था। नागार्जुन जैसे

महापण्डित को जन्म देकर महाकोसल धन्य हुआ है। नागपुर के निकट रामटेक में 'नागार्जुनगुफा' इन महायान बौद्ध सम्प्रदाय के महारथी विद्वान का स्मरण दिलाती है।

नागार्जुन की वृद्धावस्था में सिंहलदेशवासी देवबोधिसत्त्व नामक बौद्ध पण्डित और साधक ने उनकी शिष्यता ग्रहण कर उनकी करुणा प्राप्त की थी।

महाविद्वान दार्शनिक नागार्जुन सिद्धहस्त रसवैद्य भी थे और नेत्र हीनों को नयन तथा चर्मरोगियों को उत्तम शरीर प्रदान करने में समर्थ थे।

इस्कन्दरिया (मिस्र) के प्रख्यात ज्योतिषी टालमी सन् १२० ई० से १६१ ई० तक विद्यमान थे। उनके लेखों से ज्ञात होता है कि कोसल देश के विशुद्ध हीरों का उनके देश में बड़ा मान था। ये हीरे महानदी में सम्बलक (सम्बलपुर के हीराकूट) नामक स्थान के निकट मिलते थे। तिब्बत के एक लेखानुसार रोम में भी कोसल-देशीय विशुद्ध हीरों का प्रचार था।

जिस कोसल देश की महामणियों (हीरों) का संसार व्यापी मान था उस कोसल को महान् क्यों न माना जाय ?

महामणि उत्पन्न करनेवाली कोसल की महानता एवं सार्थकता उसके 'महाकोसल' नाम धारण करने में ही है।

छत्तीसगढ़ का ऐतिहासिक महत्व



(लेखक— श्री. पं. ज्वालाप्रसादजी मिश्र, बी. एससी., एलएल. बी.)

मध्यप्रान्त के उस पूर्वीय भाग को छतीसगढ़ कहते हैं जिसमें रायपुर, विलासपुर और द्रुग के ज़िले तथा उनके आसपास की देशी रियासतें—वस्तर, सरगुजा, रायगढ़, सारंगढ़, नांदगांव, खैरागढ़, काँकेर, कोरिया, कवर्धा; उदयपुर, सक्ती, छुईखदान आदि शामिल हैं। यह पहले महाकोशल या दक्षिण कोशल के नाम से प्रख्यात था और उस कोशल या उत्तर कोशल से भिन्न था जिसे आजकल अवध कहते हैं। इसका नाम छत्तीसगढ़ कव और कैसे हुआ, यह अभीतक पूर्णरूप से निश्चित नहीं हो पाया है। कोई, इसके नाम से इसके अन्तर्गत ३६ गढ़ों या किलों की कल्पना करते हैं और कहते हैं कि यहाँ के रतनपुर तथा रायपुर के हैहयवंशी नरेशों के पास अठराह अठराह गढ़ थे जो शिवनाथ नदी के इसपार और उसपार स्थित थे। इन गढ़ों के नाम भी गिनाये गये हैं। रत्नपुरीय शाखा के राजा कल्याणसाय के समय में ४८ गढ़ों का उल्लेख है। सम्भव है वे उस समय ३६ से वढ़कर ४८ होगये हों। कुछ लोग ऐसे भी हैं जो कहते हैं कि चेदि शासन के नामपर इस भाग का नाम चेदीशगढ़ था जो अव विगड़कर छत्तीसगढ़ होगया है वात जो भी कुछ रही हो, इतना तो निश्चित है कि इस भूभाग का छत्तीसगढ़ नाम वहुत प्राचीन नहीं जान पड़ता। किसी भी उत्कीर्ण लेख में इस नाम का उल्लेख नहीं है। पहले इसका नाम महाकोशल या दक्षिण कोशल ही था।

छत्तीसगढ़ विषयक इतिहास-सामग्री के अभाव में हमें उसका कोई क्रमवद्ध इतिहास नहीं मिलता। एक तो यह भाग जंगलों से इतना परिपूर्ण था कि यहां सभ्यता का प्रचार तथा प्रसार वहुत पीछे हुआ-शायद अभीतक भी अच्छी तरह नहीं होपाया है। और फिर हिन्दू नरेशों को छोड़ वाकी गोंड़ नरेश आदि के विशेष विद्यानुरागी न होने से हमें उनके समय का ठीक इतिहास नहीं मिलता। हिन्दू नरेशों के विखरे हुए कुछ उत्कीर्ण लेख और मुसलमानों के लिखे विवरण; जो हमें मिलते हैं उन्हीं के सहारे छत्तीसगढ़ के इतिहास की एक अस्पष्ट सी रूपरेखा स्थिर करने की चेष्टा की गई है।

स्वर्गादपिगरीयसी 'लहुरीकाशी'



(रचयिता—रत्नपुर-निवासी डा० गोविन्दप्रसाद शर्मा, ए. एम. एस. बे. हि. वि.
विद्यालंकार, साहित्य-शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य)

मैं वही रत्नपुर-धाम सखे !

(१)

इतिहासों में आख्यानों में,
वेदों में और पुराणों में,
जिसकी गौरव-गारिमा ललाम,
चहुँ प्रथित नाम गुण-ग्राम सखे !! मैं वही

(२)

मैं हरिश्चन्द्र की लीला-भू का-
सुविदित 'मणिपुर' ग्राम अहो,
त्रेता में द्विगुणित गुणा-गण से,
प्रमुदित 'माणिकपुर' नाम सखे !! मैं वही

(३)

द्वापर में हरि-उर-माल बीच,
हीरक मणि इव दैदीप्यमान,
'हीरापुर' भी अभिधान हुआ,
वह अनुपम शिव-सुख-धाम सखे !! मैं वही

(४)

इस कलि के भीषण ताण्डव में,
व्यापक दुष्काल पराभव में,
अब भी जो रत्न उगलता है,
मैं वही "रत्नपुर" ग्राम सखे ॥ मैं वही

(५)

मोरध्वज ताम्रध्वज जैसे,
तेजस्वी नृपवर भक्त वीर,
रेवादिक कवि गण की मैं ही,
हूँ जन्म-भूमि अभिराम सखे ॥ मैं वही

(६)

भै रव हैं जिसके द्वारपाल,
वृद्धेश्वर स्वयं छत्र-धारी,
मायायुत मायापति रक्षक,
ऊपर हैं सीताराम सखे ॥ मैं वही

(७)

चहुँ दिशि उपवन सुन्दर तड़ाग,
सुषमा-समूह पिक-शुक-सुराग,
नृप-सती-स्तूप मन्दिर विभाग,
मैं पुण्य-धाम शुभ काम सखे ॥ मैं वही

अधिक प्रभावशाली था। इसके समय में श्रीपुर में वहुत से मन्दिर, मठ, क्षेत्र, उपवन आदि वने और महानदी के तटपर वसाहुआ आज का उजाड़ सिरपुर उस समय वास्तव में अपने नामके अनुरूप ही सच्चा श्रीपुर वन गया था। तिवरदेव का पौत्र महाशिव गुप्त वलार्जुन था, जिसकी मां मगधराज सूर्यवर्मा की कन्या थी। इन्होंने अपने वैधव्यकाल में सिरपुर में एक लक्ष्मण मन्दिर वनवाया था जिस के खण्डहर आजभी वहां स्थित है। ईंटों का वना हुआ यह मन्दिर भारतीय कारीगरी का एक उत्कृष्ट नमूना है। ईंटों के जोड़ ऐसी सुंदरतासे किये गये हैं कि वे दिखाई नहीं पड़ते। ये कोशलनरेश अपने को गुप्त वंशीय ही कहते थे और अपने उत्कीर्ण लेखोंमें गुप्त संवत ही का प्रयोग करते थे। वीच में आठवीं सदी में सरभपुर के नरेशों ने कोशल नरेशों को पराजित किया था और थोड़े समयतक वहाँ राज्य भी किया था। यह सरभपुर कहां था इसका ठीक पता नहीं चलता। कोई इसे सिरपुर ही कहते है और कोई संवलपुर। इस सरभपुर नरेशों में सिर्फ दो ही के नाम मिलते है। इनकी प्रभुता भी जानपड़ता है अधिक दिनोंतक नहीं टिकी। इसी वीच फिर पुराना राजवंश ही सिरपुर में कायम होगया। इसी अव्यवस्था के युग में एक शैलवंशी नरेशों की शाखा ने भी कुछ समयतक छत्तीसगढ़ के एक हिस्से में राज्य किया, जिनका उल्लेख द्रुग और वालाघाट के सरहदी ग्राम रघोली में पाये गये ताम्रलेख में है।

इधर पांचवीं सदीके लगभग चेदि में, जो जवलपुर मण्डला तथा नरसिंहपुर के आसपास था, हैहयवंशी नरेशों ने त्रिपुरी (वर्तमान तिउर) को राजधानी वनाकर अपना राज्य जमाया। ये नरेश कलचुरि कहलाते थे और अपना उद्भव कार्त्तवीर्य सहस्त्रार्जुन से वतलाते थे। इसके वंशमें कोकल्लदेव प्रथम (सन् ८७५, एक प्रभाव शाली राजा हुआ। इसके पुत्र मुग्धतुंदेव ने सन् ९०० में कोशल नरेश से पाली छीना। यह स्थान विलासपुर ज़िले की लाफ़ा ज़िमीदारी में है। मुग्ध तुंगदेव के प्रपौत्र लक्ष्मण देव ने सन् ९५० में कोशल नरेश को पराजित किया और उड़ीसा पर चढ़ाई की। लक्ष्मणदेव का प्रपौत्र कोकल्लदेव द्वितीय सम्वलपुर तक सम्पूर्ण कोशलदेश का राजा था। इसके समय में कोशलदेश के पाण्डव नरेशों का सम्पूर्ण उच्छेद हो गया। यह सन् १००० की वात है। कोकल्लदेव द्वितीय के वाद चेदि में गांगेयदेव, कर्णदेव, यशकर्णदेव, गयकर्णदेव आदि नरेश हुए जिन्होंने सन् ११८० तक राज्य किया और इधर कोशलविजय के वाद कोकल्लदेव द्वितीय के एक पुत्र कलिंगराज ने विलासपुर की लाफ़ा ज़िमींदारी के अन्तर्गत तुमानग्राम में अपनी राजधानी वनाकर कोशल का शासन किया। इस राजा ने हैहय नरेशों की उस शाखा की नींव डाली जो आगे चलकर रत्नपुरीय शाखा कहलाई। इसी परिवर्तनकाल में ज्ञान पड़ता है वस्तर में (जो उस समय चक्रकोट्य राज्य

जव हम मानव इतिहास के आदिमयुग की ओर दृष्टि डालते हैं तो उस समय हमारे सामने छत्तीसगढ़का एक वड़ा ही महत्वपूर्ण रूप खिंच उठता है। यह उस समय की वात है जव भारत में आर्यों का प्रवेश भी नहीं हुआ था। उस समय का यथार्थ भारत वही था जो आजकल विन्ध्य के दक्षिण में स्थित है और भूगर्भशास्त्रियों का कहना है कि यह उत्तरी एशिया से एक वड़े स्थलसमुद्र द्वारा विभक्त था। राजपूताना का मरुस्थल, हिमालय के ऊँचे स्थलों में पाये जाने वाले मछलियों के अस्थिसमूह और वाराहमूल (वारामुल्ला) के मार्ग से जलनिःक्रमण करके कश्यप ऋषि का अपने निवासयोग्य स्थल कश्यपमेरु (काश्मीर) वनाने का कथानक भी इस तथ्यकी ओर इशारा कर रहे हैं। नृतत्व विशारदों का कहना है कि भारत के आदिम अनार्य निवासी कोलर या मुण्ड थे, जिनके अन्तर्गत कोल, कुरकू, भील, भूमिया, भैना, धाँगर, कँवर, सौंरा आदि हैं। इन्होंने भारत के दक्षिणपूर्व मलय और भारतीय द्वीपपुञ्ज से आकर विन्ध्य के दक्षिण में अपने उपनिवेश कायम किये। यह आज से प्रायः २० हज़ार वर्ष पहले की वात है। उस समय शायद दक्षिणभारत स्थलमार्ग द्वारा भारतीय द्वीपपुञ्ज से एक ओर और आफ्रिका आदि से दूसरी ओर जुड़ा था। इस युगके कुछ शिलाचित्र (Rock Paintings) छत्तीसगढ़ के अन्तर्गत रायगढ़ स्टेट के नहरपाली ग्राम के पास सिंहनपुर की पहाड़ी पर तथा उसी रियासत के कवरा आदि स्थानों में मिले हैं। ये ध्वस्त गुफाओं की दीवारों पर लाल और काले रंगों में खिचे हैं और इनमें शिकार सम्वन्धी चित्रों की प्रधानता है। इसी तरह के स्पेन, आफ्रिका, अमेरिका आदि देशों में मिले हुए चित्रों से इन चित्रों के टेक्निक (Technique) का इतना अधिक साम्य है कि हमें यह मानने को प्रायः विवशसा होना पड़ता है कि या तो इन सव स्थानों में एक ही प्रकार की संस्कृतिवाले लोगों का निवास रहा होगा अथवा ये सब भिन्न देशनिवासी एक दूसरे की संस्कृति से परिचित रहे होंगे। विना आवागमन के यह सब सम्भव नहीं। इन चित्रों में समुद्रसम्वन्धी दृश्यों का अभाव प्रकट करता है कि समुद्र-सम्वन्धी ज्ञान सम्भव है उससमय तक उन्हें अज्ञात रहा हो। स्थल ही अतः उनके आवागमन का मार्ग हो सकता है। इस तरह ये चित्र वास्तव में वड़े महत्व के हैं और इनसे भविष्य में न जाने कितने ऐतिहासिक अनुसन्धान किये जा सकते हैं।

पूर्वैतिहासिक युग से उतरकर जव हम पौराणिक युग में आते हैं तो हम देखते हैं कि गंगा से गोदावरीतक विस्तृत वह लंवा चौड़ा भूभाग, जिसके अन्तर्गत छत्तीसगढ़ भी है; उससमय दण्डकारण्य और महाकान्तार के नाम से पुकारा जाता था। यहां जिन अनार्यों का उस समय निवास था उनमें से कुछ का उल्लेख करते हुए हर्षचरित, कादम्वरी, ऐतरेयोपनिषद् और महाभारत-कारों ने दस्यु के रूप में शवरों का नाम भी गिनाया है। ये ही आजकल की सौंरा जाति के पूर्वज जान पड़ते हैं। रामायण की शूद्रा-शवरी भी शायद इन्हीं में से

सामन्त नरेश माने गये। उनके समय में संवलपुर, पटना, खरियार, वस्तर, खरोद (कालाहण्डी), रायगढ़, सारंगढ़, सोनपुर, सक्ती, चन्द्रपुर आदि स्थानों के राजे रत्नपुर के सामन्त नरेश थे। यह रत्नपुर नरेशों के पूर्ण उत्कर्ष का समय था। इसी वीच सन् १४०७ में रत्नपुर की एक शाखा जो छोटी शाखा के नाम से विख्यात है रायपुर में स्थापित हुई। यह पहले तो रत्नपुर के आधीन रही पर वाद में स्वतन्त्र सी हो गई। कहते हैं कि छत्तीसगढ़ के ३६ गढ़ों में से शिवनाथ नदी के दक्षिण की ओर के १८ गढ़ इस छोटी शाखा के आधीन थे और उत्तर की ओर के वाकी १८ गढ़ रत्नपुरीय शाखा के आधीन थे। इसी समय सत्रहवीं सदी के अन्त में शायद रायगढ़, सारंगढ़, सक्ती और कवर्धा के वर्तमान राजवंशों की नींव पड़ी। इसके पहले, खासकर रायगढ़ सारंगढ़ और सक्ती में कौन शासक थे यह भलीभांति ज्ञात नहीं हो पाया है। इन वर्तमान राजवंशों के संस्थापक सम्भवतः विध्वस्त मण्डला, चांदा और लाँजी से आये हुए गोंड़ राजपुत्र थे। रत्नपुर के शासक रघुनाथसिंह देव (सन् १७४०) के शासनकाल में जव नागपुर के भोंसला नरेश रघुजी प्रथम का सेनापति भाष्करपंत कटकविजय करने निकला तो उसने रास्ते में विना किसी प्रकार के युद्ध के रत्नपुर को भी जीता। राजा पुत्रशोक में व्याकुल था और रानी ने निरुपाय होकर मराठों से सुलह कर ली। इस तरह एक प्राचीन राजवंश का ऐसा अविरोध अन्त हुआ। रघुनाथसिंह सामन्त नरेश वनाकर छोड़ दिये गये। उनके वाद मोहनसिंह राजा हुए जो सन् १७५० में मरे और रत्नपुर का राज्य भोंसला राज्य में मिला लिया गया। सन् १७५० में रायपुर नरेशों को भी मराठों ने पराजित किया। उस समय अमरसिंह वहाँ राजा थे। उनके मरने के समय उनके पुत्र तीर्थयात्रा में थे। अतः मराठों ने उनका राज्य भी सन् १७५२ में जप्त कर लिया। इस तरह इन दोनों घरानों का अन्त हुआ। इनके वंशधर अव भी शायद वरायनाम कुछगांव माफी में पाये हुए अपना जीवन यापन कर रहे हैं। इसी वीच शायद नांदगांव, खैरागढ़ और छुईखदान के वर्तमान राजवंशों की नींव पड़ी। इनके पूर्वपुरुषों ने कुछ तो कर्ज़ आदि के वदले और कुछ मराठों को उनके शत्रुओं के विरुद्ध साहाय्य देकर अपने धन और वल के जोर पर काफी जागीरें प्राप्त कीं और अन्ततः वड़ी २ रियासतें स्थापित कर लीं।

अव छतीसगढ़ के इतिहास का आधुनिक काल शुरू होता है। नागपुर के भोंसला नरेश रघुजी प्रथम की मृत्यु के वाद उनके पुत्र विंवाजीने स्वयं रत्नपुर में रहकर सन् १७५८ से १७८७ तक छत्तीसगढ़ का राज्य किया। प्रारम्भ में तो ये थे कठोर स्वभाव के पर वाद में प्रजा के प्रिय होगये थे। इसके वाद उनके भतीजे व्यंकोजी यहां के शासक हुए पर यह यहां रहे नहीं सिर्फ दो तीन मर्तवा यहां आये ओर चले गये। यहां का शासन कार्य सूवेदारों के जरिये होता रहा। विंवाजी की विधवा अनन्दीवाई का भी इस शासन में काफ़ी हाथ था।

कहलाता था) किन्हीं नागवंशी राजाओं का आधिपत्य हुआ जिन्होंने सन् १०२३ से १३४२ तक राज्य किया। काँकेर (तत्कालीन काकरीय में कोई सोमवंशी नरेश हुए जो शायद हैहय नरेशों के सामन्त थे। कवर्धा में भी किसी नागवंशी शाखा ने आधिपत्य किया जिनके पतन पर वर्तमान राजवंश की नींव पड़ी।

कलिंगराजदेव के प्रपौत्र रत्नदेव प्रथम ने अपनी राजधानी तुमान से उठाकर बिलासपुर जिले के प्रसिद्ध स्थान रत्नपुर में स्थापित की और इस तरह श्रीपुर की सारी श्री सिमटकर अन्ततः रत्नपुर में संगृहीत हुई। रत्नपुर बहुत दिनों तक कोशल की राजधानी रही, यहाँ तक कि मराठों ने भी छत्तीसगढ़ विजय के पश्चात् अपनी राजधानी रत्नपुर ही में उस समय तक रखी जब तक कि अन्ततः उनका राज्य ब्रिटिश साम्राज्य में न मिला लिया गया। रत्नदेव का पौत्र जाजल्लदेव प्रथम (सन् १११४) हुआ। इसका पुत्र रत्नदेव द्वितीय और इसका पुत्र पृथ्वीदेव द्वितीय था। इन तीनों नरेशों के शासनकाल में इनके किसी सामन्तनरेश राजा जगपाल ने इनके लिये रांठ, टेरम, तमनार (रायगढ़ स्टेट के उत्तरीय भाग), बस्तर काँकेर तथा रामटेक तक के प्रान्त जीते जिसका उल्लेख सन् ११९४ वाले राजिम के एक लेख में है। रत्नपुर के नरेशों की पूरी वंशावली उपलब्ध है। उन्होंने रत्नपुर तथा उसके समीप के अन्य कई स्थानों को सुन्दर मंदिरों, तालाबों तथा उपवनों से अलंकृत किया। इस शाखा में ३६ राजे हुए जिन्होंने सन् १७३२ तक राज्य किया। बीच में चौदहवीं शताब्दी में बस्तर के नागवंशी नरेशों का उच्छेद सूर्यवंशी काकतीय नरेशों ने किया। ये चालुक्यों के सामन्त थे पर उनके पतन के पश्चात् स्वतन्त्र हो गये। बस्तर के वर्तमान राजवंश के संस्थापक यही माने जाते हैं।

गोंड़ों और मुसलमान शासकों का अधिक प्रभाव उस समय छत्तीसगढ़ पर पड़ा हो ऐसा किसी उपलब्ध सामग्री से नहीं ज्ञात होता है। गोंड़-द्रविड़ अनार्यों की एक शाखा थी जिसने दसवीं से तेरहवीं शताब्दी तक दक्षिण भारत में आक्रमण किया और एक ऐसा सुदृढ़ साम्राज्य वहाँ स्थापित कर अठारहवीं सदी तक राज्य किया कि उसके नाम पर मध्यप्रांत का नाम ही उस युग में गोंड़वाना प्रसिद्ध हो गया था। गढ़ामण्डला, खेरला (बैतूल के पास), चांदा और देवगढ़ में इसके चार राजवंश स्थापित हुए। रत्नपुर राज्य को छोड़कर समस्त मध्यप्रदेश उस समय गोंड़ नरेशों के आधीन हो गया था। ये अधिक शिक्षाप्रेमी न थे। इनका हाल हमें जो कुछ ज्ञात होता है वह मुसलमान लेखकों के द्वारा ही ज्ञात होता है। इस तरह हम देखते हैं कि रत्नपुर गोंड़ों से अछूता ही रह गया था। बल्कि उन्होंने इस राज्य की स्थापना में बड़ी बाधा पहुंचाई थी। मुसलमानों का भी यहाँ अधिक प्रभाव नहीं पड़ा था। सोलहवीं सदी के मध्य में रत्नपुर के नरेश कल्याणसाय मुगलसम्राट् जहांगीर के दरबार में गये थे और वहाँ वे आठ साल रहे। वे वहाँ से सम्मानित होकर लौटे और

रत्नपुर-राज्य का इतिहास

(लेखक—श्रीप्यारेलाल गुप्त)

प्रचीन कथा

प्रचीन दन्त कथाके अनुसार रतनपुर छत्तीसगढ़की चारों युगोंकी प्राचीन राजधानी थी। सतयुग में इसका नाम मणिपुर था। त्रेता में यह मणिकपुर कहलाया। द्वापर में इसका नाम हीरापुर बदल गया और अब इस कलियुग में यह रत्नपुर के नामसे प्रसिद्ध है।

कहा जाता है कि त्रेतायुगमें श्रीकृष्णजी इस नगर में पधारे थे। हमारे पाठकोंको महाभारतकी वह कथा स्मरण होगी जिसमें युधिष्ठिरके उस अश्वमेध यज्ञका वर्णन है जब अर्जुन अश्वके रक्षक बन इस पृथ्वी-खंडको जीतने निकले थे। उस समय रत्नपुरमें मयूरध्वज नामक राजा राज्य करता था। उसके ताम्रध्वज नामक एक पुत्र था। उसने अर्जुनके घोड़ेको पकड़ लिया। लड़ाई हुई। श्रीकृष्णजीने युद्ध रोक दोनोंमें मेल करा देनेका प्रयत्न किया। उन्होंने अर्जुनसे कहा कि जैसा तू मेरा भक्त है, वैसा ही मयूरध्वज भी। अतएव दोनोंमें मेल हो जाना अच्छा है। पर अर्जुनने इसे स्वीकार नहीं किया। उसने कहा—मुझ सरीखा आपका भक्त वह हो ही नहीं सकता। श्रीकृष्णने कहा-इसकी परीक्षा हो जाय। यह कह उन्होंने आप ब्राह्मणका भेष धारण किया और अर्जुनको अपना पुत्र बनाया। दोनों मयुरध्वजके निकट गये। मयुरध्वजने उनकी पूजा की और इतना कष्ट उठाकर आनेका कारण पूछा। श्रीकृष्णजीने बड़ी लम्बी चौड़ी भूमिका बांधकर अन्तमें कहा-यह मेरा प्राण प्यारा पुत्र है। इसे एक सिंह खाना चाहता है। पर उसने इसे इस शर्तपर रिहाई दी है कि तेरा दाहिना अङ्ग उसके बदलेमें मिले। अब तू क्या कहता है? राजा राजी हो गया। उसने कहा-यदि मेरा शरीर पानेसे सिंह आपके पुत्रको प्राण-दान देता है तो यह मेरे लिए भाग्यकी बात है। इसपर श्रीकृष्णजीने मयूरध्वजकी रानी कुमुददेवी और उनके पुत्र ताम्रध्वजको बुलाया और कहा कि राजाका शरीर आधा चीरकर मुझे सिंह के देनेके लिए दो। पतिव्रता रानी और कर्त्तव्यशील पुत्र दोनोंने अपना अपना अंग दे राजाका प्राण बचाना चाहा पर ब्राह्मण देवता राजी न हुए। तब रानी और ताम्रध्वज आरासे राजाका शरीर सिरकी ओरसे चीरने लगे। जब नाक तक सिर चीर डाला गया तब राजाकी बाईं आंखसे आंसू गिरने लगे। इसपर श्रीकृष्णजी

इस तरह एक के वाद एक करके ६ सूबेदार यहां हुए। इनका शासन अच्छा नहीं था और उससमय यहां की प्रजाको अनेक कष्ट थे। पिण्डारियों के दौरदौरों ने तो उसे और भी परेशान कर रखा था। हिन्दूनरेशों के उज्वल शासन के वाद हम इसे छत्तीसगढ़ का अन्धकारमय युग कह सकते हैं। कुछ रियासतों को छोड़कर वाकी समस्त छतीसगढ़ उस समय मराठों के आधीन था। यह समय सन् १८१८ तक चला। इसी वीच भारत के रंगमंच पर अंग्रेज़ों के रूप में एक नवीन उग्रशक्ति का उदय हुआ। प्लासी के युद्ध के वाद तो वह और भी सतेज हुई। उनसे मराठों के कई संघर्ष हुए। रायगढ़ नरेश राजा जुझारसिंह के साथ कम्पनी सरकार की सन् १८०० में एक मैत्रीसन्धि हुई। उड़ीसा और छत्तीसगढ़ के वीच की ये छोटी २ सरहदी रियासतें नाम मात्र के लिए पटना या संवलपुर की सामन्त थीं। वस्तुतः वे पूर्ण स्वतंत्र थीं। इन दो एक रियासतों को छोड़कर वाकी जो छत्तीसगढ़ की और रियासतें थीं वे छत्तीसगढ़ के अन्यभागों की भांति अंग्रेज़ों और भोंसलों के हाथ क्रमक्रम से आन्दोलित कन्दुक की भांति आती जाति रहीं। अठारवीं सदी के प्रारंभ में देवगाँव की सन्धि अंग्रेज़ों और मराठों के वीच हुई जिसमें भोंसलों का कुछ छत्तीसगढ़ी राज्य अंग्रेज़ों के हाथ गया। अंग्रेज़ों ने कुछ समय के पश्चात् इसे फिर मराठों को वापिस कर दिया। सन् १८१८ में व्यंकोजी के पुत्र अप्पा साहव विद्रोही होने के कारण नागपुर की गद्दी से हटाये गये पर भोंसलाशासन सन् १८५२ तक चलता रहा। अन्तिम शासक रघुजी तृतीय जव सन् १८५३ में निस्सन्तान मरे तो डेलहौजी की नीति के अनुसार उनका राज्य और उसके साथ समस्त छत्तीसगढ़ ब्रिटिश साम्राज्य में मिला लिया गया। सिपाही विद्रोह के समय इसभाग में भी कुछ टूटे फूटे विद्रोह हुए पर वे अधिक महत्वपूर्ण न थे और उस समय कोई विशेप उल्लेखयोग्य घटना भी नहीं घटी। इसके वाद व्यवस्था का युग आया। देशी सामन्तनरेशों के मर्तवे कायम किये गये और उन्हें ब्रिटिश सरकार की ओर से तत्सम्वन्धी सनदें प्रदान की गईं। फिर शासन सम्वन्धी वे सुधार प्रारंभ किये गये जिन्होंने अव्यवस्थित छत्तीसगढ़ को एक वार फिर व्यवस्थित कर दिया और उसके धूमिल क्षितिजपर प्रकाश की एक सुनहली रेखा सी खींच दी।

संक्षिप्त रूप में यही छत्तीसगढ़ का असम्बद्ध इतिहास है। यह भूभाग कई दृष्टियों से अपना एक विशेप महत्व रखता है। सिंहनपुर आदि के शिलाचित्रों में अपनी एक अपूर्वता है और उनके आधार पर न जाने कितनी नई नई वातों का अनुसन्धान किया जा सकता है। फिर एक और विशेपता यहां के इतिहास में है। कोलर, द्राविड़ और आर्य सभ्यताओं और संस्कृतियों का यह सङ्गम स्थान सा रहा जान पड़ता है। इन तीनों की संस्कृतियों ने यहाँ त्रिवेणीसंगम की भाँति आपस में मिलकर एक नई और रोचक धारा सी वहाई है। यह विशेपता शायद दूसरे प्रान्तों में इतनी अधिक नहीं पाई जाती है। आदिम अनार्यों की वर्वरता, हिन्दू नरेशों की सभ्यता, वौद्ध और जैनों की अहिंसा, शैवों की साधना, गोंड़ों

समुद्र गुप्त द्वारा कैद कर लिये गये थे और वाद में छोड़ दिये गये। समुद्र-गुप्त गुप्तवंश के आदि पुरुप प्रथम चन्द्रगुप्त का पुत्र था। इसने गद्दीपर बैठते ही भारत-विजय की ठानी। पहले गङ्गा के आसपासवाले राजाओंको जीतकर यह छुटिया नागपुर होते हुए दक्षिण कोसल में पहुंचा और महेन्द्र तथा व्याघ्रराज को हराते हुए आगे बढ़ गया। वहां कांजीवरम के दक्षिणीय प्रान्तों को जीतकर वह महाराष्ट्र तथा खानदेश होते हुए अपने घर लौट आया। उसने हरैल प्रदेश को करद-राज्य वनाने का का कोई प्रयत्न नहीं किया। पर महाकोसल के राजाओं ने समुद्रगुप्त के समान वलवान महाराजा के आधीन रहने में ही अपना लाभ देखा, इसलिए वे गुप्तवंश के नाश होने के एक सदी वाद तक उसकी आधीनता मानते रहे। रायपुर जिले के आरंग नामक स्थान में एक ताम्र लेख मिला है। उससे यह वात मालूम होती है कि छठीं सदी में भीमसेन महाकोसल का राजा था। पर यह नहीं मालूम होता कि भीमसेन कौन था और इसके वंशवालों ने कव तक यहां राज्य किया।

श्रीपुर-राज वंश

सातवीं सदी में यह प्रान्त एक बौद्धधर्म माननेवाला क्षत्रिय राजा के हाथ में चला गया जिसने जिला चांदा में भाण्डक को अपनी राजधानी वनाई। प्रसिद्ध चीनी यात्री हुएनसंग सन् ६३९ में इस नगर में आया था। उसने अपनी पुस्तक में इस नगर तथा प्रान्तका जिक्र किया है।

भाण्डक वंशकी एक शाखाने रायपुर ज़िलेमें महानदीके तटपर सिरपुर नामक स्थानको अपना निवासस्थान वनाया था। सम्भव है, इस प्रान्तके भाण्डकसे दूर होनेके कारण वहांसे एक अधिकारी शासनके हेतु यहां भेजा गया हो। जो हो, पर यह सच है, कि श्रीपुर-राज वंश भाण्डकसे शीघ्र ही स्वतन्त्र हो गया और चार पुस्तोंके भीतर ही तमाम महाकोशलका अधिकारी वन वैठा। इस वंशने अपनी राजधानी श्रीपुर वर्तमान सिरपुरकी वड़ी उन्नति की। उसे मन्दिर, मठ और धर्मशालाओंसे खूव सजाया। वाग-वगीचे भी खूव लगवाये मतलव यह कि जैसा इसका नाम सिरपुर या श्रीपुर उन्होंने रक्खा, वैसा उसे वना भी दिया। त्रिवरदेव या तीवरराज के समय में यह उन्नति की चोटीपर पहुंच गया था। पर इस राजा का कोई पुत्र न था। इससे इसका उत्तराधिकारी इसका भतीजा हुआ। यह महाशिवगुप्त या वलार्जुन के नाम से प्रसिद्ध था। इसके पिता का नाम हर्षगुप्त था। इसने वहुत से मन्दिर वनवाये। इसकी मां वासटा मगधराज सूर्यवर्मा की कन्या थी। उसने भी लक्ष्मणजीका एक मनोहर मन्दिर वनवाया जो आज भी अच्छी हालतमें है और सिरपुरके प्राचीन गौरवकी याद दिला रहा है। दूसरे मन्दिरोंकी दशा अच्छी नहीं है।

ने यह कहकर आधा अङ्ग लेनेसे इंकार करना चाहा कि राजा दुःखित चितसे दान दे रहा है। तब रानी कुमुददेवीने उन्हें समझाया। उनसे कहा— देव, बांई आंखसे आंसू इस लिए निकल रहा है कि उसे सोच है कि दाहिना अंग तो परोपकारमें लग रहा है पर हाय बायाँ अंग किसी काम न आया।- श्रीकृष्णजी इस उत्तरसे बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने तत्काल ही अपना सच्चा स्वरूप प्रकट कर राजाके चीरे हुए भागोंको जोड़ दिया और उसको वरदान दिये तथा अर्जुन के साथ उसकी मिताई करा दी।

इस कथापर विश्वास करना या न करना पाठकों के आधीन है। पर यह सत्य है कि रतनपुर में इस समय भी एक तालाब 'श्रीकृष्णार्जुनी' (अब कन्हारजुनी) के नाम से प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि यह तालाब श्रीकृष्ण और अर्जुन की यादगारी में खुदाया गया था। इसी प्रकार एक तालाब घोड़बंधा नामक और है, जिसके निकट, लोग समझते हैं कि ताम्रध्वज ने अर्जुन के यज्ञ के घोड़े को लेकर बांधा था।

यह भी कहते हैं कि ऊपर लिखी घटना के बाद छत्तीसगढ़ में आरेका उपयोग बंद था। चीज़म साहब जिन्होंने इस जिले का सबसे पहले बन्दोबस्त किया था, लिखते हैं कि "यह बात बिलकुल सच है। पुराने खण्डहरों में मैंने अपनी आंखों से देखा है कि जितने मयाल. उनमें लगे हुए हैं, सब बसूले के द्वारा चौपहल किये गये हैं। आरेसे बिलकुल काम नहीं लिया गया है। आरेका प्रचार मराठी राज्य से फिर आरम्भ हुआ है।"

लोगोंका यह भी विश्वास है कि मोरध्वज के पश्चात् जितने हैहयवंशी राजा हुए, उन सबके नाकसे लेकर सिरके पिछले भागतक--ठीक वहांतक जहांतक मोरध्वज का सिर चीरा गया था—आरा से चीरने के चिन्ह बने रहते थे।

यद्यपि छत्तीसगढ़वासियों का यह अटल विश्वास है कि हैहयवंशी ही छत्तीसगढ़ के प्राचीन राजा थे पर हाल की जांच से यह भली भांति सिद्ध हो चुका है कि १० वीं सदी के पहले हैहयवंशियों का यहां पता तक नहीं था। हमें यहां के शासकों का पता चौथी सदी से लगता है। उस समय यह प्रान्त कोसल, महाकोसल या दक्षिण कोसल के नाम से प्रसिद्ध था। कोसल अवधप्रान्त को भी कहते थे। इसलिए यह प्रदेश महा-कोसल या दक्षिण-कोसल कहलाया। चौथी सदी के मध्य में यहां दो राज्य थे। उत्तरी भाग का राजा महेन्द्र था और दक्षिणी भाग जो महाकान्तार के नाम से प्रसिद्ध था, व्याघ्रराज द्वारा शासित होता था। प्रयाग के किले में समुद्र गुप्त का एक स्तम्भ (पत्थर का खम्भा) है। उसपर जो लेख खुदा है, उससे मालूम होता है कि ऊपर लिखे दोनों राजा

गुप्त—राज्य

रत्नपुर की नींव

बागबगीचे लगवाये और इस प्रकार उसका जितनी हो सकी उतनी उन्नति की। फिर उसने सन् १०५० के लगभग रत्नपुर नगर की नींव डाली। उसने कोमो-मण्डल के अधिकारी की कन्या से व्याह किया। वह तुमान का तो मण्डलेश्वर और रत्नपुर का स्वतंत्र राजा बन बैठा। उसने अभी तक त्रिपुरी के राजाओं से अपना सम्बन्ध एकदम नहीं तोड़ा था। रत्नदेव के पुत्र प्रथम पृथ्वीदेव (सन् १०६०) के विषय में, सिवाय इसके कि उसने तुमान में शिवजी का एक मन्दिर और रत्नपुर में एक बड़ा तालाब बनवाया, कुछ अधिक हाल नहीं जाना जाता। रत्नपुर के पास घुबसा नामक एक पहाड़ी है। कहते हैं, घुबुस नामक पहाड़ी जातिका शायद गोंड़ राजा वहां रहा करता था। उसने रतनपुर-राज्य की नींव डालने में बड़ी बाधा पहुंचाई थी।

पृथ्वीदेवका पुत्र प्रथम जाजल्लदेव बड़ा पराक्रमी हुआ। इसने कनौज और बुन्देलखण्ड के राजाओं से मित्रता कर ली और केवल दक्षिण कोसल के मण्डले-श्वरोंसे ही नहीं बल्कि वैरागढ़,लांजी,भण्डारा,खिमड़ी आदि दूर दूरके अधिकारियों से वार्षिक कर लेने लगा। इसने अपने त्रिपुरीवाले पुरखों से भी अपना सम्बन्ध जारी रक्खा। तुमान और रत्नपुर के बीच पाली नामक गांव में जो शिवजी का प्रसिद्ध मन्दिर और तालाब है, जान पड़ता है इसी का बनवाया है। जाजल्लदेव का पुत्र द्वितीय रत्नदेव हुआ और द्वितीय रत्नदेव का पुत्र द्वितीय पृथ्वीदेव। इन्हें एक वीर-परिवार ने जिसने इनकी सेवा तीन पीढ़ी तक की और जिसमें जगपाल विशेष प्रसिद्ध है—राज्य बढ़ाने में बड़ी सहायता दी। इनके वीरतापूर्ण कार्यों का वर्णन राजिम के सन् ११४५ वाले शिला-लेख में खुदा है। इन राजाओं का आसरा पाकर कोमों के मण्डलेश्वर ने त्रिपुरी-राज्य से विरोध कर लिया और जगपाल ने रतनपुर-राज्य का विस्तार दुरुग, सिहावा, कांकेर और कांद्रा डोंगर (विन्द्रा नवागढ़ के दक्षिण) तक बढ़ाया। सारांश–१२ वीं सदी में हैहयवंशियों का राज्य-विस्तार खूब बढ़ा था और इनकी सत्ता अमरकण्टक से गोदावरी तक और बरारसे उड़ीसा तक मानी जाती थी।

राजकीय विभाग

राज्य-प्रबन्ध के सुभीते के लिए इस समय ८४,८४ गांवों का एक समूह बनाया गया। और प्रत्येक समूह पर शासन करने के लिए राजपरिवार का एक एक मनुष्य मुकर्रर किया गया। जो प्रान्त दूर थे; वे पुराने ही अधिकारियों के अधिकार में रखे गये। इस प्रकार १३ वीं और १४ वीं सदी में शिवनाथ-नदी के उत्तर प्रांत में १ समूह जिन्हें चौरासी कहते थे, बन गये। १८ चौरासी शिवनाथ के दक्षिण-प्रांत में भी बने पर इनके निर्माण करनेवाला रायपुर का राजा सिंम्हन था। सिंम्हन, रत्नपुरराज-वंशी ही था पर स्वतन्त्र हो गया था। खलारी में

जान पड़ता है, महाशिवगुप्त सिरपुर-राज्यका आखिरी राजा था। इसके पुत्रको किसी दूसरे राजाने भगाकर आप उसकी राजधानी ले ली। महाशिवगुप्त के पुत्रने भागकर विनिता पुत्र (विनीतपुर) की शरण ली, जो सोनपुर रियासत में है।

शरभपुर-राजवंश

सिरपुर के अंतिम राजाको भगाकर जिस राजाने वहां राज्य करना आरम्भ किया, उसका ज्यादा हाल नहीं मिलता। उस वंशके केवल तीन राजाओंके नाम मिले हैं। एक महासुदेव और दूसरा महाजय राज तीसरा महा प्रवर राज। इन्होंने प्रान्तके जुदे जुदे भागोंके भीतर जिन गावोंका दान किया है, उससे यह मालूम होता है कि इनके राज्यका विस्तार उत्तर-दक्षिण, बिलासपुरसे खरियारतक और पूर्व-पश्चिम रायपुरसे सारंगढ़ तक था। इनकी राजधानी शरभपूर का अभीतक पता नहीं चला है। शायद इन्हों ने सिरपुरको ही शरभपुरका नाम देकर अपनी राजधानी बना ली हो। ऊपर लिखे दोनों वंशों से सम्बन्ध रखनेवाले जो शिलालेख मिले हैं; उनकी लिपि से यह जाना जाता है कि वे वंश छठीं या सातवीं सदी में मौजूद थे। इसके बाद हैहयवंशियों का शासन आरम्भ हुआ।

हैहयवंशी

हैहयवंशी कार्तवीर्यार्जुन अर्थात् सहस्रबाहुको अपना आदि पुरुष मानते हैं। ये लोग कलचुरियों के नाम से भी प्रसिद्ध थे। ये पहले चेदि-देश का राज्य करते थे। चेदि राज्य का विस्तार पहले चंबल नदी से लगाकर करवी (चित्रकूट के नैऋत्य) तक था। पर धीरे-धीरे यह १० वीं सदी के आरम्भ में अमर कण्टक से लगाकर हसदो नदी तक बढ़ गया। रतनपुर में सन् ११९४ ई० का एक शिला लेख मिला है। उससे जान पड़ता है कि सन् ८७५ में चेदि-देश का राजा कल्लोल था। उसके १८ पुत्र थे। बड़ा पुत्र चेदि-राज्य की राजधानी त्रिपुरी का उत्तराधिकारी हुआ और शेष पुत्र उसकी आधीनता में 'माण्डलिक' बना दिये गये और उन्हें एक एक मण्डल शासन करने के लिए दे दिया गया। इन मण्डलों में कोमो, तुमान और कोसगई ये अत्यन्त दक्षिणी मण्डल थे। तुमान, कलिङ्गराज नामक मण्डलेश्वर द्वारा प्राप्त किया गया था। अतएव छत्तीसगढ़ प्रान्त में पहले आने का यश चेदि-वंश के कलिङ्गराज को ही मिला। कलिङ्गराज और उसके पुत्र कमलराज ने उन स्थानीय अधिकारियों को नहीं निकाला जिन्होंने इस प्रान्त को पहले ही बांट रक्खा था। बल्कि उनसे आधीनता कबूल कराके उन्हें स्वाधीनता भोगने दी।

किन्तु कमलराज के पुत्र प्रथम रत्नदेव को अपने पिता और दादा की नीति पसन्द न आयी। उसने अपने राज्य में बड़े-बड़े तालाब और मन्दिर बनवाये

नाम			सन्
दादूसाय	...	...	१४७२
पुरुषोत्तमसाय	...	...	१४९७
वहारसाय	...	...	१५१९
कल्याणसाय (ये जहांगीर वादशाह के शासन काल में दिल्ली आगरा गये थे जिसका उल्लेख-जहांगीर नामा में है)			१५४६
लक्ष्मणसाय	...	...	१५८३
शंकरसाय	...	...	१५९१
कुमुद या मुकुन्दसाय	...	...	१६०६
त्रिभुवन साय	...	...	१६१७
जगमोहन साय	...	...	१६३२
अदली साय	...	...	१६४५
रणजीत साय	...	...	१६५९
तख्तसिंह	...	...	१६८५
राजसिंह देव	...	...	१६८९
सर्दारसिंह	...	...	१७२०
रघुनाथसिंह	...	...	१७३२

इस सूचीके अनुसार प्रत्येक पीढ़ीको २१ वर्षका औसत पड़ता है। वहारसाय (वाहरेन्द्र) के समय के दो शिला-लेख मिले हैं। एक तो रत्नपुर के महामाया के मन्दिर में, दूसरा कोसगई में। पिछले लेखसे इस वातका पता चलता है कि वहरसायपर मुसलमानों ने चढ़ाई की थी पर उसने उन्हें मार भगाया था। ये मुसलमान कौन थे, मालूम नहीं होता। हां, यह अलवत्ता ठीक है कि वहारसायका पुत्र कल्याणसाय सन् १६२० ई० के लगभग दिल्ली गया था और वहां जहांगीर वादशाह से पूर्ण अधिकार और सन्मान पाकर लौट आया था। फिर भी यहां यह कहना कठिन है कि कल्याणसाय को मुसलमानों ने दिल्ली दरवार में हाजिर होने के लिये लाचार किया था या वह स्वयं मुगलों के प्रवल प्रताप से डरकर वहां चला गया था।

हैहयवंशी राजाओंका राज्य-प्रबन्ध

जमावन्दीकी एक पुस्तक, जो कहा जाता है कल्याणसाय के समय की थी, चीज़म साहव वन्दोवस्त आफिसर को दिखलायी गयी थी। इस पुस्तकमें छत्तीसगढ़से सम्बन्ध रखनेवाली अनेक कामकी वातोंका वर्णन था। उसमें लिखा था कि रत्नपुर रायपुर दोनों राज्योंमें कुल मिलाकर ४८ गढ़ या चौरासी थे, जिनसे ६॥ लाख रुपये सालाना आमदनी थी। समयको ध्यानमें रखते हुए ६॥ लाख रुपयेकी आमदनी मामूली वात नहीं है। हैहय-वंशी राजाओंका राज्य विस्तार वहुत भारी था। उनके करद राज्योंके नाम ये हैं:—१ रामगढ़ २ प्रतापगढ़

सन् १४१४ में एक शिला लेख मिला है, उससे जान पड़ता है कि सिम्हनने १८ गढ़ जीते थे।

हां, तो अब रत्नपुर की ओर फिर लौटिये। द्वितीय पृथ्वीदेव का पुत्र द्वितीय जाजल्लदेव हुआ, जिसके राज्य करते समय उसके एक नातेदारने शिवरीनारायण का मन्दिर निर्माण कराया था। इस मन्दिर में चेदि संवत् ९१७ अर्थात् सन् ११६५ का एक शिला-लेख प्राप्त हुआ है। इसी समय (सन् ११६७) एक ब्राह्मण ने मल्लार में शिवजी का एक मन्दिर बनवाया था। यहां जो शिला-लेख पाया गया है, उसमें द्वितीय जाजल्लदेव को तुमान का शासक बताया है। इससे यह नतीजा निकलता है कि यद्यपि तुमान में राजधानी न थी फिर भी उसका मान, छत्तीसगढ़ के राजाओं का आदि स्थान होने के कारण बढ़ा चढ़ा था। जाजल्लदेव का पुत्र तृतीय रत्नदेव हुआ। इसके राज्यकाल (सन् ११८१) में खरौद के मन्दिर में एक शिला-लेख लगाया गया था। इसका पुत्र तृतीय पृथ्वीदेव हुआ। इसके समय में किसी 'देवनाग' ने सम्बा में एक मन्दिर (सन् ११९० में) निर्माण कराया था। इसके बाद रत्नपुर का राजा प्रतापमल्लदेव हुआ। इसके दो ताम्र-लेखों का पता लगा है और चक्राकार तथा षट्कोण ताम्र मुद्राएं भी मिली हैं। बाबू रेवाराम के लिखे इतिहास में केवल एक सूची पायी गयी है, जो नीचे दी जाती है। उस से मालूम होगा कि भानुसिंह का नाम सबसे पहले है। भानुसिंह तृतीय पृथ्वीदेव और प्रतापमल्लदेव के बाद हुए होंगे। वह उनका उत्तराधिकारी था, यह विश्वास तो नहीं होता पर हां तृतीय पृथ्वीदेव और इसके बीच में शायद एक दो राजा हुए हों।

रत्नपुर के राजे

नाम			सन्
भानुसिंह	...	...	१२००✽
नरसिंह देव	....	...	१२२१
भूसिंह देव (भावसिंह)	...	...	१२५१
प्रतापसिंह देव (प्रतापमल्ल देव-जिनके दो ताम्र लेख हाल ही में मिले हैं)			१२७६
जयसिंह देव	...	...	१३१९
धर्मसिंह देव	...	...	१३४७
जगन्नाथसिंह देव	...	...	१३६९
वीरसिंह देव	...	...	१४०७
कमलदेव	...	...	१४२६
शंकरसाय	...	...	१४३६
मोहनसाय	...	...	१४५४

✽ इन तारीखों में नई खोजके अनुसार भ्रम और त्रुटियां मिली हैं।

(पँडरिया), ३ लांजी, ४ अम्बागढ़ चौकी, ५ वस्तर, ६ खरियार, ७ फुलझर, ८ सारंगढ़, ९ करोंद (कालाहंडी) १० संबलपुर, ११ पटना, १२ सिंहभूम, १३ चन्द्रपुर, १४ सक्की १५ रायगढ़, १६ कौड़िया, १७ सिरगुजा।

कल्याणसायके पास जो सेना थी उसका ब्यौरा इस प्रकार है:—

खड्गधारी	...	२०००
कटारधारी	....	५०००
वन्दूकधारी	...	३६००
धनुपधारी	....	२६००
घुड़ सवार	....	१०००
	जोड़	१४२००

इनके सिवा ११६ हाथी भी थे। इतनी सेना राज्यके भीतरी प्रवन्धको ठीक रखनेके लिए बहुत काफी थी। आसपासके राजे इतनी सेना नहीं रख सकते थे।

छत्तीसगढ़

उपर्युक्त जमावन्दीकी पुस्तक तथा पुराने रिवाजोंसे यह भली भांति सिद्ध होता है कि छत्तीसगढ़की शासनपद्धति उत्तम थी। छत्तीसगढ़ खालसेके प्रवन्धमें और उसके सीमा-स्थित करद-राज्योंके प्रवन्धमें जो फर्क था, उससे साफ मालूम हो जाता है कि खालसे में राजाको सबका शिरमौर बना, समस्त अधिकारों के केन्द्रस्थल में उसे रख क्रमसे पद ऐसे नीचे उतारे जाते थे कि उसकी समाप्ति प्रत्येक गांवके गौंटियामें जाकर होती थी। राज्यके मुख्य शासक दीवान कहलाते थे। जो राजा से सीधा सम्बन्ध रख सकते थे। प्रत्येक दीवान के चार्ज में एक एक गढ़ रहता था। ये गढ़ विशेषकर चौरासीके नामसे प्रसिद्ध थे। कितने ही गढ़ तो ४२ गांवोंको ही लेकर बने थे और बहुतेरे २४ ही।

जमावन्दीकी पुस्तकमें ४८ गढ़ोंके नाम लिखे हैं। इन पुस्तकसे सम्बन्ध रखनेके कारण नीचे उन्हीं गढ़ोंकी सूची दी जाती है जो शिवनाथ नदीके उत्तरी भागमें रत्नपुर राज्यके भीतर थे :—

		ग्राम संख्या
१ रत्नपुर	..	३६०
२ मारो	...	३५४
३ विजयपुर:—	...	
१ विजयपुर	...	४०
२ लोरमी	...	८४
३ रामगढ़	...	४२
४ रंजन महाउर	...	२४

सिरपुर	,,	...	८४
लवन	,,	...	१५२

यह परिगन सात सात भोग करि कई वर्त वृक करत जाउ। सही कातिक सुः ५ सं० १७३५ सही रामधर देवान कइ तथा वावू रामसाय देवान कइ।

सुंदरी (मुहर)

रायपुर जिले के आरंग नामक कसबे में अंजोरी लोधी के पास रायपुर-दरवार का एक ताम्र पत्र है, जो संवत् १७९८ में लिखा गया था, उनकी भाषा और महाराजा तखतसिंह देवके पत्रकी भाषा बहुत कुछ एकसी है। दोनो में दो दो दीवान के नाम आये हैं। शायद हैहय राज-दरबार में दो दीवान रखनेका नियम रहा हो। ऊपर जो पत्र दिया गया है, उस में छत्तीस-गढ़ी भाषाका प्रत्यक्ष प्रभाव नहीं दिखाई पड़ता।

हैहय-वंशियों के समय में विद्वानों का अच्छा आदर होता था। राजा राजसिंह देवके आश्रय में रहकर गोपाल कविने " खूब तमाशा " नामक नीति सम्बन्धी बहुत अच्छा ग्रन्थ लिखा है।

हैहय-वंशका पतन

सब मुख्य स्थानोंपर एक ही वंशके अधिकारी होने से कुछ बातें जरूर अच्छी रहीं पर नतीजा बुरा हुआ। अधिक समय बीत जानेपर ये अधिकारीगण या इनके वंशज अपने को राजकर्मचारी नहीं बल्कि पूरे हकदार समझने लगे। १७ वीं और १८ वीं सदीमें जैसे जैसे राजा के अधिकार निर्बल होते गये, वैसे वैसे उसकी ये शाखाएँ प्रबल होती गयीं और एक दिन बहुतेरे दीवान ही नहीं वरन दाऊ भी एक दूसरे से स्वतन्त्र बन बैठे। अपनी राजधानियों को उन्होंने मजबूत कर लिया, कुछ सेना भी रखने लगे और अपने अधिकारियों को जमा देना बन्द कर दिया। राजा कल्याणसिंह के पश्चात् यह निर्बलता शुरू हुई थी।

सन् १६८५ में राजा तखतसिंह हैहय-वंशकी गद्दीपर बैठे। इन्होंने तखतपुर में एक भद्दासा महल बनवाया और साथ ही शिवजीका एक मन्दिर भी निर्माण कराया। वहां उन्होंने प्रति शुक्रवार को साप्ताहिक बाजार भी लगवाया जो जो अबतक जारी है। उनका पुत्र राजसिंह देव हुए ये सन् १६८९ में रत्नपुर की गद्दीपर बैठे। इन्हों ने रत्नपुरकी पूर्वी सीमापर एक नया महल तैयार कराया और उस के निकट एक तालाव भी खुदवाया। नगर के इस भागका नामकरण भी इन्हीं के नामपर हुआ। इन के कोई सन्तान न थी। इसलिए इन्हों ने रायपुर राज-परिवार के मोहनसिंह को गोद लेना निश्चय किया। पर इस कार्यको करने के पहले आप एक दिन घोड़े से गिर पड़े। बड़ी सख्त चोट आयी। जीवन का भरोसा न रहा। मोहनसिंह को बुलाने तुरन्त दूत भेजा गया। बड़े काका सरदारसिंह और रघुनाथसिंह को भी उन्होंने समाचार दिया। मोहनसिंह तो

दाऊ से उतरकर गौंटिया का पद था। गौंटिया अर्थात् गांव का मुखिया-अधिकारी। गांव के किसान इसके आधीन थे। दीवान, दाऊ और गौंटिया राज्य के इन कर्मचारियों का मुख्य काम था,—"जमा की ठीक ठीक वसूली और रवानगी।" याने प्रत्येक गौंटिया अपने अपने गांव की वसूली कर अपने दाऊ के पास भेजता था और प्रत्येक दाऊ अपने बारहों की जमा इकट्ठी कर दीवान के निकट भेजने के लिए जिम्मेदार था। इसी प्रकार प्रत्येक दीवान अपने गढ़ की जमा वसूली के लिए राजा के निकट जिम्मेदार था। ये सब इस कार्य के लिए राजा से कमीशन पाते थे। सो ये कर्म्मचारी केवल जमा-वसूली के लिए थे। उनका उस भूमिपर, कुछ हक़ न था। न ये उस पद पर ही अपना हक़ बता सकते थे जो उन्हें जमा-वसूली के लिए दिया गया था। पर हमारे देश की प्रथा ही विचित्र है। अधिक समय हो जाने पर ये भूमि और पद दोनों के पुश्तैनी हकदार हो जाते थे, फिर चाहे वे उनके योग्य हों या न हों। कोरी, करगी आदि स्थानों के वर्तमान अधिकारियों के पुरखे, पुराने जमाने में, उन गांवों के दाऊ थे, जिनका अब ये, पुश्तैनी जायदाद होने के कारण उपभोग कर रहे हैं। प्रायः राजा अपने नातेदारों को दीवानी दिया करता था। इसी प्रकार दीवान अपने सम्बन्धियों को दाऊ बनाते थे और दाऊ अपने रिश्तेदारों को गौंटिया।

राज-भाषा

हैहय-वंशियों के समय में राज-भाषा और लेखन-शैली कैसी थी, इसका पता नीचे लिखे पत्र से चलता है। यह पत्र कार्तिक सुदी ५ सं० १७४५ (सन् १६८८) को राजा राजसिंह देव के पिता राजा तख्तसिंह ने अपने भाई रायपुर के शासक राजा श्रीमेरसिंह-देव को लिखा था :—

श्री।

श्रीजू कइ सही होइ।

श्रीकृष्णकारी कान्ह विजय सखा स्वस्ती श्रीमहाराजाधिराज श्री महराजा श्री राजा श्रीश्री राजा तख्तसिंह देव राजे रत्नपुर योग्य स्वस्ती श्रीमहाराज कुमार राजा श्रीमेरसिंहदेव भाई प्रति लिखित अस जो तुम्हारे कई राज कइ बटार दीन्हें मध्यस्थ पञ्च राजा श्रीनरसिंहदेव आदि कई सो जगह बाट दीन्हें सेवा राजगादी कइ सलाह सरई कि परमपरा कह निवाहि देने जथा योग विदा गजह।

रायपुर	ग्राः	...	६४०
राजिम	,,	...	८४
दुरुग	,,	...	८४
पाटन	,,	...	१५२
खलारी	,,	...	८४

रत्नपुर-राज्य लेकर ही छोडूंगा, ये सब बातें हमारे पाठकों को याद होंगी। अपना प्रण पूरा करने के इरादे से पहले मोहनसिंह ने बलवा मचाने की कोशिश की पर इसमें वह सफल नहीं हुआ। तब वह नागपुर चला गया और वहां के राजा प्रथम रघुजी की सेवा में रहने लगा। धीरे-धीरे रघुजी उसे खूब चाहने लगे। जब रघुजी ने बंगाल पर चढ़ाई की तब वह भी उनके साथ हो लिया। सन् १७४५ में जब वे बंगाल से लौटे तब उन्होंने रघुनाथसिंह के फिर से राजा होने की बात सुनी। उन्हों ने रींवा होकर रत्नपुर पर फिर चढ़ाई की और रघुनाथसिंह को दूसरी बार गद्दी से उतार मोहनसिंह को वहां का राजा बनाया। मोहनसिंह ने जिसकी तुलना कन्नौज के राजा जयचंद से हो सकती है–सन् १७५८ तक छत्तीसगढ़ का राज्य किया। इसी समय नागपुर-नरेश रघुजी मर गये और उनके छोटे पुत्र बिम्बाजी छत्तीसगढ़ पर अधिकार करने को रवाना हुए। जब यह खबर मोहनसिंह को लगी तब उसने बिम्बाजी का सामना करने के लिए सेना इकट्ठी की। पर वह एकाएक बीमार हो गया और रायपुर में मर गया जहां उसकी सेना जुड़ी थी। इस प्रकार बिम्बाजी छत्तीसगढ़ के शासक बन बैठे।

वर्तमान समय में हैहयवंशी

हैहय वंशियों का विषय समाप्त करने के पहले यह लिख देना अच्छा होगा कि इस वंश का एक परिवार रायपुर जिले के बड़गांव में अभी भी मौजूद है। यह गांव महासमुन्द तहसील में है। यह परिवार रायपुर-वाली शाखा के वंशजोंमें से है। इनके पुरखों को गुजर बसर के लिए मराठों से पांच गांव माफी में मिले थे, जो अब तक इनके अधिकार में हैं। बलौदाबाजार तहसील में सेंदुरम नामक गांव है। वहां का मालगुजार अपने को रत्नपुर-वंश का वंशज बतलाता है। पर उसे बड़गांव वालों की तरह कोई पेंशन नहीं मिली है, जिससे उसका दावा सन्देहजनक जान पड़ता है। बड़गांववालों को तो अब भी उन राजाओं की राजधानी में जाने पर भेंट मिलती है जो किसी समय उनके पुरखों की आधीनता में थे।

बिम्बाजी भोंसला

बिम्बाजी भोंसला ने रत्नपुर-राज्य का शासन सन् १७५८ से १७८७ (मृत्यु) तक किया। ये नागपुर के राजा रघुजी के पुत्र थे। यद्यपि ये नागपुर-राज्य के आधीन समझे जाते थे पर थे ये सब प्रकार स्वतन्त्र। आरंभ में ये बड़े कठोर थे पर जैसे २ लोगों में मिलते गये, नम्र होते गये। इन्होंने रत्नपुर-नगर के निकट एक पहाड़ीपर श्रीरामचंद्रजी का एक मन्दिर नागपुर के रामटेक के नमूने पर बनवाया जो अभीतक अच्छी अवस्था में है। इनकी मृत्यु के पश्चात् नागपुर-नरेश द्वितीय रघुजी का छोटा भाई व्यंकोजी उसका वारिस हुआ पर उसने छत्तीसगढ़ में रहकर कभी राज काज नहीं देखा। वह सदा नागपुर में रहा करता था और कभी कभी यहां का दौरा

न आ सका; शिकार खेलने चला गया था पर सरदारसिंह और रघुनाथसिंह आ पहुंचे। राजाने लाचार होकर काका सरदारसिंह के सिरपर राजा-पगड़ी रख दी। मोहनसिंह को जब यह समाचार मालूम हुआ तब उसने रंज होकर कसम खाई कि मैं स्वर्गवासी राजाकी इच्छा अवश्य पूरी करूंगा। उसका यह प्रण जैसा कि आगे चलकर मालूम होगा, पूरा हुआ भी। सरदारसिंह ने २० वर्षतक शांतिपूर्वक राज्य किया। इसके भी पुत्र न था। अतएव इसके मरनेपर इसका भाई रघुनाथसिंह ६० वर्षकी अवस्था में गद्दीपर बैठा।

इस समय रत्नपुर—राज्य बहुत निर्बल हो चला था। उसके गढ़—दीवान उससे खुल्लम—खुल्ला विरोध करने लगे थे। यहां तक कि जिस भूमिपर स्वयं राजाका अधिकार था, उसे भी वे कहीं कहीं दबा बैठे थे। छुरी और पंडरिया के वर्तमान जमीन्दारों के पुरखों ने ऐसी बहुतसी भूमि दबा ली थी। गोंड़, कंवर और बिंझवारों ने हैहयवंश के आरम्भ से उनसे भूमि-खण्ड प्राप्त किये थे पर परीक्षा के दिन आनेपर उन्होंने केवल कोरा जवाब ही नहीं दिया बल्कि विरोध करने के लिए खड़े हो गये।

मराठों की चढ़ाई

सन् १७४० के अन्त में, जब कि रघुनाथसिंह को राज्य करते आठ वर्ष बीत चुके थे मराठा सेनापति भास्कर पंतने छत्तीसगढ़ पर चढ़ाई की। इस समय रघुनाथसिंह अपने एकलौते पुत्र की मृत्यु से बड़ा दुःखी था और करीब १ वर्ष से राजकाज की ओर ध्यान देना छोड़ दिया था। "दूबर को दो अषाढ़", एक तो यों ही निर्बल मनका मनुष्य, उसपर बुढ़ापा फिर पुत्र शोक। उसने राज्य बचाने की कोई फिक्र न की। भास्कर पंतने तोप द्वारा किलेका एक हिस्सा उड़ा दिया। फिर भी चुप। आखिर रानीने बुर्जपर चढ़ सफेद झंडा दिखाकर लड़ाई बंद करा दी। किलेके फाटक खोल दिये गये। सेना भीतर घुस आई। राजधानीपर शत्रु का कब्जा हो गया। इस प्रकार प्रबल प्रतापशाली हैहयवंशी राज्यका अंत हो गया।

मराठोंने इस प्रकार बिना विरोधके सारे छत्तीसगढ़पर अपना अधिकार कर लिया और सब गढ़-अधिकारियोंसे अपनी आधीनता स्वीकार कराके 'कर' लेने लगे। भास्कर पंतने रत्नपुर को कब्जे में ला कटक की ओर कूच किया। कहते हैं– रत्नपुर नगरपर उसने एक लाख रुपया जुर्माना किया था और खजानेका सारा धन हड़प लिया था। चलने के पहले उसने रत्नपुर में एक गुंसाईको अपना प्रतिनिधि बना कर छोड़ दिया था, जिसे उसके रवाना होते ही रघुनाथसिंह ने निकाल दिया और फिर राजा बन बैठे। परन्तु यह राज-सुख वे बहुत दिन न भोग पाये।

राजा राजसिंहदेव की इच्छानुसार मोहनसिंह रत्नपुर का राजा नहीं हो सका था। इसका मोहनसिंह को बड़ा दुःख था। उसने प्रण किया था कि

भारतवर्ष में यह काष्ठ-स्तम्भ-लेख अद्वितीय वस्तु है। लकड़ीपर इतना पुराना लेख अब तक मिला न था। यह लेख एक प्रतापशाली शासक का है जिसके राज्य में सु-संगठित मंत्रिमण्डल एवं भिन्न भिन्न विभाग के उच्च कर्मचारीगण का समावेश था जिस से उस समय से व्यवस्थित एवं उन्नत राज्य संचालन का पता लगता है।

इसी जिले के अंतर्गत सकती नामक राज्य है वहाँ गुंजी नामक गांव में एक जलकुण्ड के निकटवर्ती पहाड़ की चट्टान पर एक प्रलम्ब पाली लेख है जो २००० वर्ष प्राचीन माना जाता है। इस में १००० गौ के दान का तीन वार उल्लेख है—'गो सहस्रदतम्' यह वाक्य उस प्राचीनतम् पाली लेख में तीन वार आया है। कृषि और वाणिज्य की जननी गो माता के पालन, संरक्षण और सद्व्यय का यह ज्वलन्त उदाहरण है। ताम्रलेख भी इस जिले में अनेक मिले हैं। यथा :—

८३१	चेदि	संवत	का	आमोदाग्राम में	प्राप्त	ताम्रलेख
८८०	,,	,,		सरखों ,,	,,	,,
९००	,,	,,		आमोदा ,,	,,	,,
९६५	,,	,,		पेंडरावन ,,	प्रतापमल्लदेव का	,,

सबसे प्राचीन ताम्रलेख मल्लार में सन १९३५ में प्राप्त हुआ था जो हर्षगुप्त के पुत्र महाशिवगुप्त बालार्जुन का दान पत्र है। इसकी लिपि boxheaded है जो ६०० सन् ई० के आसपास प्रचलित थी।

वर्तमान रत्नपुर–नगर

इसका क्षेत्रफल ११०६६ एकड़ और मनुष्य सं० लगभग ५००० है। क्षेत्रफल की दृष्टि से इससे बड़ा गांव जिलेमें दूसरा नहीं है। यह पहाड़ियों के बीच में बसा हुआ है। महाभारत में इसका नाम रत्नावतीपुरी मिलता है। लोग कहते हैं—महाभारत की मोरध्वज ताम्रध्वजवाली घटना यहीं हुई थी। पता चलता है कि यह १० वीं सदी में प्रथम रत्नदेव द्वारा बसाया गया था। कहते हैं कि जब यह उन्नति पर था तब इसका विस्तार १२ मील पाली गांवतक था। उस समय मध्य प्रान्त में यह नगर बस एक ही रहा होगा। सुनते हैं यहां १४०० तालाब थे। अब भी छोटे बड़े मिलाकर दो ढाई सौ से कम न होंगे। रामटेकड़ीपर श्रीरामचंद्रजी का मन्दिर, उसके नीचे श्रीवृद्धेश्वर महादेव का मंदिर, बस्ती के दक्षिण दरवाजेपर श्रीभैरोजी का मन्दिर और पश्चिम दिशा में श्रीमहामायाका मन्दिर, आजकल के मुख्य मन्दिर हैं। भैरोजी की मूर्ति बहुत ऊंची है। महामाया का मन्दिर सब से प्राचीन है। इस के विषय में जो कहानी प्रचलित है, वह इस तरह है:—एक बार राजा रत्नदेव अपनी राजधानी तुमान छोड़

कर लौट जाता था। अन्तिम वार सन् १८८१ में वह यहां से होते हुए बनारस गया और वहां जाकर मर गया। व्यंकोजी जो नागपुर में ही रहकर यहां का राज्य एक सूवा के द्वारा चलाता था, यह विम्वाजी की विधवा स्त्री आनन्दीवाई को पसन्द न आई। उसने इस प्रबंध का विरोध किया। अन्त में यह तय हुआ कि सूवा, व्यंकोजी का प्रतिनिधि (मुख्तयार) होकर राज-काज करे पर आनन्दीवाई की सलाह से। यह वात केवल आनन्दीवाई को खुश रखने के लिए की गई थी, सारे अधिकार तो सूवा के ही हाथ में थे। और जब अप्पासाहब नागपुर की गद्दी से उतार दिये गये और सन् १७८७ से १८१८ तक नागपुर-राज्य अन्तिम रघुजी की नाबालिगी में अंगरेजी-अधिकार में रहा तव तो छत्तीसगढ़ के शासन की वागडोर पूर्णरूप से सूवो के हाथ में आगई।

सूवा शासन

नीचे उन सूवों के नाम दिये जाते हैं, जिन्होंने अंगरेजी अधिकार में रत्नपुर का शासन किया था :—

१. विट्ठल दिनकर	२ कारु पंत
३ केशव पंत	४ भीका भाऊ
५ सखाराम वापू	६ यादवराव दिवाकर

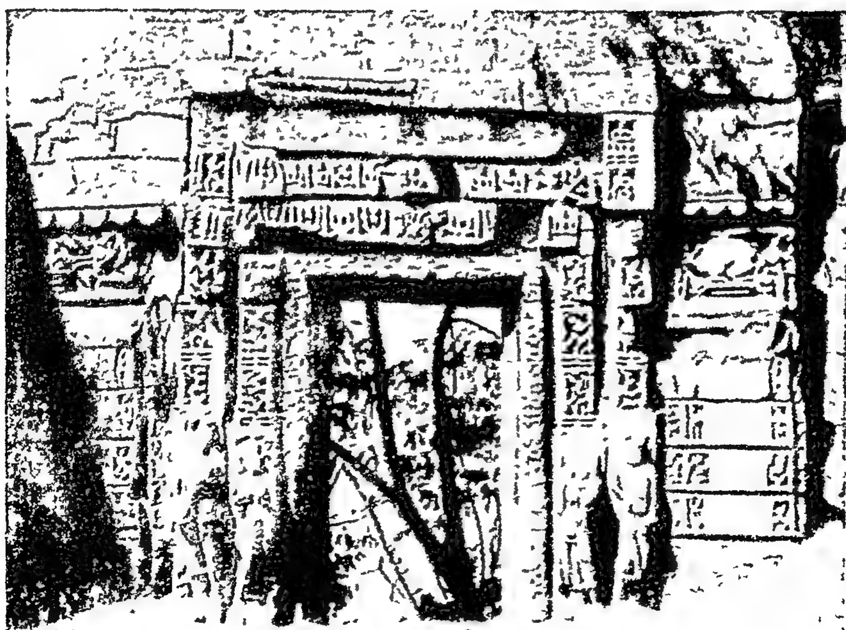
ये सूवा जवतक नागपुर-राज्य के आधीन में रहे इनके करतूतों की कैफियत लेनेवाला कोई न था। पर ये सदा इस संदेह में रहा करते थे कि न जाने कब उनकी जगह का चार्ज लेने दूसरा आदमी आता है। इसलिए ये सदा चाहे जिस तरह हो धन जोड़ने की धुनमें रहा करते थे। सखाराम वापू (सूवा नं० ५) की जान तो इसी कारण गई। वह एक मनुष्य को सदा यह भुलावा दिया करता था कि मैं तुझे वड़ा भारी जमीन्दार बना दूंगा। यह लोभ देकर उसने उससे वहुतसा धन ले लिया पर अंत में एक दिन उस मनुष्य को मालूम हो गया कि ये सब सूवा साहव की कोरी गप्पें हैं। उसने क्रोध में आकर वन्दूक से उसे मार डाला।

मराठी सत्ता

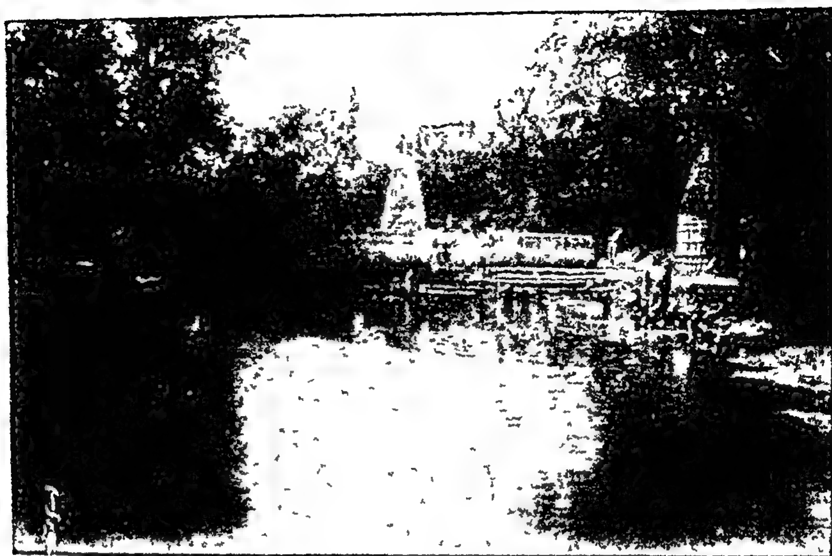
इस प्रकार छत्तीसगढ़ में मराठी राजसत्ता केवल ६० वर्ष (१७५८-१८१८) में नष्ट हो गई। मराठों ने हिसाव किताव रखने का जरा अच्छा ढंग निकाला। था पर जमीन माप कर लगान वांधने या किसान और मालगुजार का आपस का सम्बन्ध सुधारने अथवा और किसी तरह राज्य की उन्नति करने में इन्होंने कुछ भी ध्यान नहीं दिया। हैहयवंशी राज्य-शासन पद्धति को ही अपनी जरूरत के मुताविक यहां वहां सुधारकर ये अपना काम निकालते रहे। पर इनके और हैहयवंशी राजाओं के विचारों में वड़ा अन्तर था। हैहयवंशी अपने को प्रजाप्रिय वनाना चाहते थे और इन्हें केवल धनसे मतलव था। ये प्राचीन प्रथा का कुछ भी आदर



श्री गणेश दरवाजा, किला, रत्नपुर



रत्नपुर के किला का एक खुदावदार दरवाज़ा



श्री महामाया देवी का मन्दिर (कुन्ड सहित) रत्नपुर



श्री कंठी देवल, रत्नपुर

यहां दो हिन्दी प्रायमरी-पाठशाला, पुत्रीशाला, पुलिस थाना, कांजीहौस, डाक बंगला और डाकघर हैं और आनरेरी मजिस्ट्रेटों की कचहरी खाली है। बस्ती में सफाई का कानून जारी है। गत दो वर्षों से मवेशी बाजार भी लगने लगा है।

जमीन्दारियां।

१ उपरोड़ा—रकबा ४४८ वर्ग मील, मनुष्य संख्या ८६७१, जमींदारका पद दीवान, ग्राम संख्या ८६।

पेंडरा-जमींदार हिन्दूसिंह के पुत्र जसकरन के दो लड़के थे। एक पूरनमल, दूसरा चूरामनमल। चूरामनमल का एक लड़का था, जिसका नाम था हिम्मतराय। उसने उपरोड़ा चौरासीपर धावा मार उसके ब्राह्मण अधिकारी का सिर काट, उसपर अपना अधिकार जमा लिया। इस अपराधपर उसे रतनपुर राज-दरबार से कैद की सजा मिली। उसका एक नौकर मोहरिया गांड़ा था। वह बड़ा स्वामिभक्त था। वह अपने मालिकको छुड़ाने का अवसर ढूंढता रहा। एकदिन उसने रतनपुर नरेश के महल के नीचे ऐसी चतुराई और मधुरता से शहनाई (मोहरी) बजाई कि राजा बड़ा ही प्रसन्न हो गया। उसने इसे मनमाना इनाम मांगने के लिए कहा। मोहरिया ने अपने मालिक को छोड़ देने के लिए प्रार्थना की। राजाने अपने वचन का पालन किया और ऊपर से उपरौड़ा चौरासी भी उसे सौंप दी। यह घटना सं० १६४१ की कही जाती है।

उपरोड़ा में जंगल और पहाड़ अधिक हैं। हाथी भी यहां कभी कभी मिलते हैं। जमींदार श्रीरुद्रशरणसिंह हैं जो हमारे महाशय के बड़े सहायक थे।

२ कैंदा—रकबा २९९ वर्गमील, मनुष्य संख्या २०१६३, जमींदार का पद ठाकुर, ग्राम संख्या ९२।

कहते हैं—एकबार रात्रि के समय रतनपुर-नरेश की सेना रीवां राज्य के विरुद्ध कूच कर रही थी। रास्ते में मसालें बुझ गईं। घोर अन्धकार, फिर घना जंगल और पहाड़। सिपाहियों को एक पग भी चलना कठिन हो गया। तब प्रसिद्ध वीर जसकरन ने—जो पेंडरा-जमींदार हिंदू सिंह का पुत्र था—अपने हाथों से तिली को मसलकर तेल निकाला जिससे बड़ा काम चला। राजा के कानों में जब यह बात पहुंची तब वह बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने उसे कैंदा जमींदारी इनाम में दी। इस सम्बन्ध में एक दूसरी बात और प्रसिद्ध है। वह यह कि पेंडरा जमींदार हिन्दूसिंह के घराने में तीसरी पुश्त में जो जमींदार हुआ, उसके दो पुत्र थे। उनमें से छोटे पुत्र संवतसिंह को,

इधर शिकार खेलने आ निकले और रात हो जानेपर एक वड़ के वृक्षपर चढ़ कर रात विताने लगे। उस वड़ वृक्ष के नीचे महामाया की सभा हुआ करती थी। उस रात्रि को राजा रत्नदेव ने वह सभा देख ली। महामाया ने स्वप्न में राजा को वहां वस्ती वसाने की आज्ञा दी, जिसका उसने पालनकर वर्तमान रत्नपुर शहर वसाया और उसे अपनी राजधानी भी वनाई। उस वटवृक्ष के वंशज अव भी अपनी शाखा फैलाये हुए, देवीजी के मन्दिरपर छाया कर रहे हैं। मन्दिर के आसपास सतीचौतरों की संख्या वहुत है। किले के निकट "वीसदुअरिया" नामक वीस द्वार का एक वड़ा मनोहर सती-मन्दिर है। यहां राजा लक्ष्मणसाय की २० रानियां सती हुई थीं। यह अव अत्यन्त टूटी फूटी हालत में है।

रत्नपुर के तालावों में दुलहरा सवसे वड़ा है। यह १८० एकड़ों में फैला हुआ है। कई तालावों से फसल सिंचाई का काम लिया जाता है। यहां एक तालाव 'वैराग' नामक है, जिस में पक्के घाट वंधे हुए हैं। किनारे पर शिवजी का मंदिर है। इस तालाव के विषय में नीचे लिखा दोहा प्रसिद्ध है —

नरनारी मज्जन करें उठें छतीसों राग।
ऐसे रसिक तलाव को, लोग कहें "वैराग"॥

सांटे इस गांव में खूब होते हैं। तरकारी भाजी की भी कमी नहीं रहती। माघ पूनो को यहां मेला भरता है। मेले में मिठाई और खिलौनों की दुकानें अधिक रहती हैं। दुलहरा तालावपर सतनामी चमारों की भीड़ रहती है जहां वे कथा कहाते हैं और मृत व्यक्तियों की अस्थि तालाव में फेंकते हैं। फूलकांस के वर्तन रत्नपुर में अच्छे वनते हैं। यहांका गुड़ और पान प्रसिद्ध हैं। अमराई भी यहां वहुत है।

समय की वलिहारी है। जो रत्नपुर एक समय समस्त छत्तीसगढ़ की राजधानी थी, जिस रत्नपुर के सदृश वड़ा नगर किसी समय मध्यप्रदेश में कदाचित् ही कोई रहा हो, जिस रत्नपुर को लोग केवल देखने की इच्छा से दूर दूर से यात्रा का कष्ट उठाकर आते थे, जो रत्नपुर एक दिन अतुल सम्पत्तिवान और गौरवमान था; जो विद्या और सभ्यता का केन्द्रस्थल था, वही रत्नपुर आज, हाय! लिखते कलेजा मुँह को आता है, अत्यन्त गिरी हुई अवस्था में है, मनुष्य संख्या दिन प्रति दिन घटती जा रही है; फूट और वैर-भाव वढ़ता जा रहा है; मिथ्या अभिमान, ईर्षा और द्वेषाग्नि की ज्वाला से लोगों का हृदय जला जा रहा है। जिन स्थानों पर अभी थोड़े दिन पहले कथावार्त्ता, पोथी-पुराण, आनंद उत्सव होते दिखलाई पड़ते थे, वहां अव उल्लू और गीदड़ों के निवासस्थान वने हुए हैं। संवत् २००० में श्री विष्णु महायज्ञ होने से कुछ जागृति हुई है और वेद-विद्यालय स्थापित करना निश्चय हुआ है पर हो जाय तव ठीक समझिये। भगवान जाने इस नगर के दिन कव फिरेंगे!

प्रायमरी-पाठशाला, पुलिस थाना और डाकघर है। श्रीमंती रानी धनराज कुंवरि इसकी वर्तमान जमीन्दारिन हैं। आपने हमारे महायज्ञ को सानंद सम्पन्न करने में बड़ी सहायता दी थी। इनके जमाई श्री· ठा· रुद्रशरणसिंह सरबराकार द्वारा जमींदारी व्यवस्थित रूप से चलाई जारही है।

४ कंतेली—रकवा २५ वर्गमील, मनुष्य संख्या ६१९६, जमींदार का पद ठाकुर, ग्राम संख्या ४४।

यह जमींदारी मैदानी भागमें है। जंगल यहां विलकुल नहीं है। इसका पुराना इतिहास इसके स्वर्गवासी जमींदार के शब्दों में ही सुनिए—"मेरे पूर्वज पहले मुंगेली जमींदारी के जमींदार थे। यह जमींदारी ६ पुश्तोंसे उनके अधिकार में थी। सन् १७९८ के लगभग नागपुर के राजा प्रथम रघुजी के भाई नानाजी जगन्नाथपुरी जाते हुए मुंगेली आये। यहां उनके एक साथीने जमींदार के भाई के घोड़े को जबरदस्ती पकड़कर लेना चाहा। इसपर झगड़ा हो गया। बात बहुत बढ़ गई। फल यह हुआ कि जमींदार फतेसिंह गिरफ्तार कर लिये गये और विचार के लिए रत्नपुर भेज दिये गये। रत्नपुर के सूबा केशोपंतने उन्हें तोपसे उड़वा दिया और सारी जमींदारी जब्त कर ली। पर दूसरे वर्ष उनके परिवारवालों को मदनपुर तालुका दिया गया और बादमें लोरमी-तालुका भी उन्हें प्राप्त हुआ। इसके पश्चात् एक समय मेरे पिता संतोपसिंह ने लोरमी से आकर मुंगेली को घेर लिया। उस समय अंगरेज़ों का अधिकार हो चला था। मेरे पिता कैद कर लिये गये और कैदखाने हीमें उनका स्वर्गवास हो गया। उस समय मैं आठ वर्ष का था। पीछे मुझे मदनपुर (कंतेली) जमीन्दारी दी गई। यह जमीन्दारी मुंगेली जमीन्दारी का एक टुकड़ा है। मुंगेली जमीन्दारी को रत्नपुर के राजा कल्याणसिंह ने हमारे एक पूर्वज तरवरसिंह को दिया था।"

जमीन्दार ठाकुर पुखराजसिंह नाबालिग हैं। इनकी माता श्री पिनाक-कुमारी योग्यता पूर्वक जमींदारी का कारबार चला रही हैं। घराना इनका बड़ा पुराना है। कंतेली गांवमें एक प्रायमरी पाठशाला और डाकघर है।

५ चांपा—क्षेत्रफल १०५ वर्ग मील, म० सं० ३२६३७, जमींदार का पद दीवान, ग्रामसंख्या ६४।

यह जमीन्दारी जिले के पूर्वी भाग में हसदो नदी के दोनों तटोंपर फैली हुई है। कहते हैं—यह जमीन्दारी वर्तमान जमीन्दार के अधिकार में १७ पीढ़ी से है। इसका नाम पहले मदनपुर चौरासी था और इसका सदर मुकाम मदनपुर के पुराने किले में था जिसके खण्डहर हसदो नदी के तटपर अब भी मौजूद हैं।

इस जमीन्दारी का विस्तार पहले अधिक था। इस में कमी मराठों के समय में हुई। कैसे हुई, इसकी कथा यों है—रत्नपुर के राजा बिम्बाजी का

रत्नपुर नरेश तखतसिंह ने सम्वत् १६९१ (सन् १६३४) में केंदा जमींदारी दी। शायद यह पिछली बात ही ठीक हो। यह जमींदारी संवतसिंह के वंशजों के हाथ से कभी नहीं निकली। उन्होंने समय देखकर काम किया। राजपूतों के बाद मराठों की आधीनता और मराठों के बाद अङ्गरेजों का प्रभुत्व ये चुपचाप स्वीकार करते गये।

अरपा नदी में जितनी घाटियां हैं, इस जमींदारी के अन्दर हैं। पुराने जमाने में छत्तीसगढ़ और उत्तर हिन्दुस्थान के बीच जो भारी व्यापार होता था, उसका तथा जगन्नाथपुरी जाने का मार्ग इस जमींदारी के बीच होकर गया था, इससे इसका महत्व अन्य जमींदारियों से अधिक था। रेल इस जमीन्दारी में थोड़ी दूर दौड़ती है। कोटा और बेलगहना इसके मुख्य स्टेशन हैं। केंदा गांव बेलगहना स्टेशन से ८ मील कोमोघाट के नीचे सुंदर स्थान पर बसा हुआ है। यहां एक प्रायमरी पाठशाला है। श्री दादू नवलसिंह (कोरी) आज कल इसके जमीन्दार हैं। आप हमारे महायज्ञ के बड़े सहायक थे।

३ कोरबा—रकबा ८५६ वर्ग मील, मनुष्य सं० ८७५६७, जमीन्दार का पद दीवान, ग्राम संख्या ३४१।

यह जमीन्दारी जिले की सब जमीन्दारियों से बड़ी है। वर्तमान जमीन्दार-परिवार के पूर्वजों को यह कब प्राप्त हुई, इसका पता ठीक ठीक नहीं चलता। छुरी जमीन्दारी के सम्बन्ध में जो कथा प्रचलित है, वैसी ही कथा, एक गोंड़ डाकू को हराकर इसे इनाम में पाने की, इसके सम्बन्ध में भी कही जाती है। पर मालूम नहीं यह कहां तक सच है। एक बात निश्चय है। वह यह कि यह जमीन्दारी रत्नपुर-राज्य में बहुत पीछे मिलाई गई थी। इसका नाम छत्तीसगढ़ के ३६ गढ़ों में नहीं मिलता। चीज़म साहब ने इसके सम्बन्ध में लिखा है कि रत्नपुर के राजा बहारसायने इसे सन् १५२० के लगभग सिरगुजा-नरेश से छीन लिया था (उसी समय, जिस समय उसने कोसगईं छुरीमें पठानों को हराया था) रत्नपुर से दूर रहने के कारण इसके जमींदार ज्यादा स्वतन्त्र थे। मराठों को इन्होंने खूब तंग किया था। एकबार बिम्बाजी ने टकोली न पटने के कारण जमींदारी जब्त कर ली थी पर उसके कर्मचारी वहां से शीघ्र ही भगा दिये गये। अन्त में २०००) पानेपर बिम्बाजी मान गये और जमींदारी भरतसिंह को वापस दे दी।

प्रबंध अच्छा होनेपर इस जमींदारी की आमदनी बहुत ज्यादा हो सकती है। लोहा और कोयला के खदानों को छोड़कर सालके बहुत बड़े बड़े जंगल यहां हैं। जमींदारी के जंगली भागमें कंवर और कोरवा जातिके लोगोंकी अधिक बस्ती है। कुदुरमाल में माघ पूनोको मेला लगता है। कोरबा खास हसदो नदीके तटपर बसा हुआ है। वह चांपा स्टेशन से २३ मील उत्तर की ओर है। वहां एक

प्रायमरी-पाठशाला, पुलिस थाना और डाकघर है। श्रीमती रानी धनराज कुंवरि इसकी वर्तमान जमीन्दारिन हैं। आपने हमारे महायज्ञ को सानंद सम्पन्न करने में बड़ी सहायता दी थी। इनके जमाई श्री. ठा. रुद्रशरणसिंह सरबराकार द्वारा जमींदारी व्यवस्थित रूप से चलाई जारही है।

४ कंतेली—रकबा २५ वर्गमील, मनुष्य संख्या ६१९६, जमींदार का पद ठाकुर, ग्राम संख्या ४४।

यह जमींदारी मैदानी भागमें है। जंगल यहां बिलकुल नहीं है। इसका पुराना इतिहास इसके स्वर्गवासी जमींदार के शब्दों में ही सुनिए—"मेरे पूर्वज पहले मुंगेली जमींदारी के जमींदार थे। यह जमींदारी ६ पुश्तोंसे उनके अधिकार में थी। सन् १७९८ के लगभग नागपुर के राजा प्रथम रघुजी के भाई नानाजी जगन्नाथपुरी जाते हुए मुंगेली आये। यहां उनके एक साथीने जमींदार के भाई के घोड़े को जबरदस्ती पकड़कर लेना चाहा। इसपर झगड़ा हो गया। बात बहुत बढ़ गई। फल यह हुआ कि जमींदार फतेसिंह गिरफ्तार कर लिये गये और विचार के लिए रत्नपुर भेज दिये गये। रत्नपुर के सूबा केशोपंतने उन्हें तोपसे उड़वा दिया और सारी जमींदारी जब्त कर ली। पर दूसरे वर्ष उनके परिवारवालों को मदनपुर तालुका दिया गया और बादमें लोरमी-तालुका भी उन्हें प्राप्त हुआ। इसके पश्चात् एक समय मेरे पिता संतोषसिंह ने लोरमी से आकर मुंगेली को घेर लिया। उस समय अंगरेज़ों का अधिकार हो चला था। मेरे पिता कैद कर लिये गये और कैदखाने हीमें उनका स्वर्गवास हो गया। उस समय मैं आठ वर्ष का था। पीछे मुझे मदनपुर (कंतेली) जमीन्दारी दी गई। यह जमीन्दारी मुंगेली जमीन्दारी का एक टुकड़ा है। मुंगेली जमीन्दारी को रत्नपुर के राजा कल्याणसिंह ने हमारे एक पूर्वज तरवरसिंह को दिया था।"

जमीन्दार ठाकुर पुखराजसिंह नाबालिग हैं। इनकी माता श्री पिनाक-कुमारी योग्यता पूर्वक जमींदारी का कारबार चला रही हैं। घराना इनका बड़ा पुराना है। कंतेली गांवमें एक प्रायमरी पाठशाला और डाकघर है।

५ चांपा—क्षेत्रफल १०५ वर्ग मील, म० सं० ३२६३७, जमींदार का पद दीवान, ग्रामसंख्या ६४।

यह जमीन्दारी जिले के पूर्वी भाग में हसदो नदी के दोनों तटोंपर फैली हुई है। कहते हैं—यह जमीन्दारी वर्तमान जमीन्दार के अधिकार में १७ पीढ़ी से है। इसका नाम पहले मदनपुर चौरासी था और इसका सदर मुकाम मदनपुर के पुराने किले में था जिसके खण्डहर हसदो नदी के तटपर अब भी मौजूद हैं।

इस जमीन्दारी का विस्तार पहले अधिक था। इस में कमी मराठों के समय में हुई। कैसे हुई, इसकी कथा यों है—रत्नपुर के राजा बिम्बाजी का



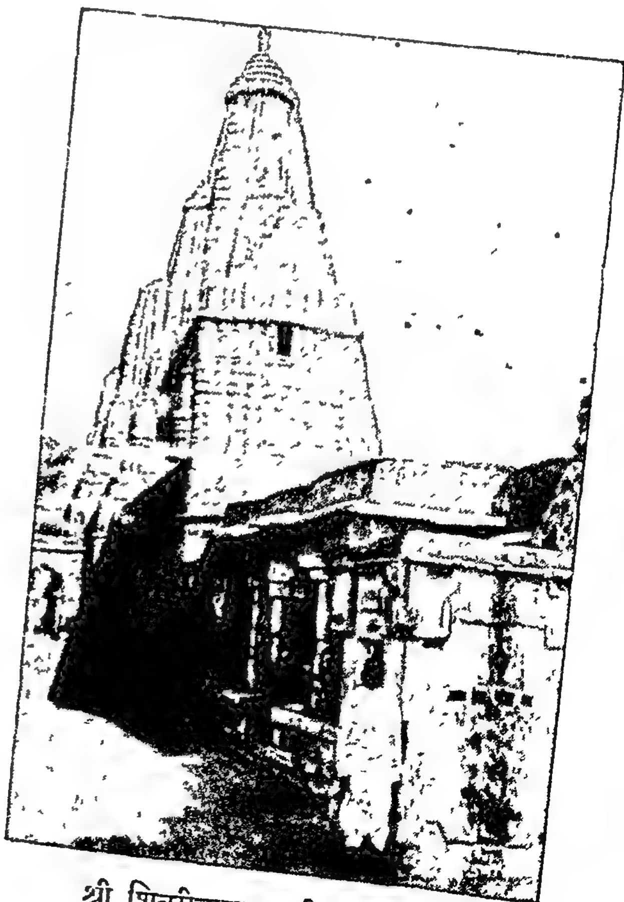
श्री वृद्धेश्वर नाथ (बूढ़ा महादेव) का मन्दिर, रत्नपुर



श्री भैरवजी का मन्दिर, रत्नपुर



श्री रामचन्द्रजी और श्री विम्बाजी
भोसले का मन्दिर (रामटेकड़ी)
रत्नपुर



श्री शिवरीनारायणजी का मन्दिर

वहारसाय ने १६ वीं सदी में वनवाया था पर लोग अब कहते हैं कि वहारसाय से वहुत पहले का वह किला बना हुआ है। वहुत सम्भव है कि वह चेदि राज्य के समय का हो और यहां से उतरते हुए रत्नपुर के राजे छत्तीसगढ़ में आ घुसे हों।

हसदो नदी जमींदारी के बीच से वहती है। इस जमींदारी में लाख का वड़ा व्यौपार होता है। कोसा के फल यहां से अन्य स्थानों को भेजे जाते हैं। कोसाका कपड़ा भी यहां अच्छा बनता है। श्री प्रधान भुवनपाल सिंह आजकल इसके जमीन्दार हैं। आप अपना कारवार वडी योग्यता पूर्वक चला रहे हैं। आप हमारे महायश के वड़े सहायक थे।

७ मातिन—रकवा ५४४ वर्गमील; म० सं० १७,१४१ जमींदार का पद दीवान, ग्राम संख्या १०९।

यह दूसरी जमींदारी है जिसका सम्बन्ध पंडराजमींदार-परिवार से है। इस जमींदारी के पुराने अधिकारी जाति के राजगोंड़ थे, जिनके वंशज अब भी सिरीं नामक गांव में है। यह गांव मातिन जमींदारी की वायव्य सीमापर है। सिरीं के राज गोंड़ परिवार का कहना है कि हम यहां २२ पीढ़ियों से निवास कर रहे हैं। जव उनकी चौरासी छिन गई थी तव भी उनके पास १२ गांवों का एक वरहो था। संवत् १६९९ में उपरोड़ा जमींदार हिम्मतराय के छोटे पुत्र कल्याणसिंह ने मातिन जमींदारी पर जवरदस्ती अपना कब्जा कर लिया पर सिरीं के तारफाना गोंड़ ने शीघ्र ही उसे मार कर वदला चुकाया। पर रत्नपुर के राजा राजसिंह ने कल्याणसिंह को ही वहां का अधिकारी करार दिया और तव से यह उसी के वंश में है।

मातिन जमीन्दारी उपरोड़ा जमीन्दारी से कई वातों में मिलती जुलती है। यहां भी घन जंगल हैं और जलपवन खराव है। इस जिले के पटवारियों ने इस जमीन्दारी के सम्वन्ध में मशहूर कर रखा है:—

जहर पिये न माहुर खाय। मरे का होय तो मातिन जाय॥

सन् १७९५ में कप्तान व्लंट चुनारगढ़ से राजमहेंद्री की यात्रा करते समय इस जमीन्दारी के वीच होकर गये थे। उसने अपनी डायरी में इसके विषय में यों लिखा है:—"पश्चिमी वाजू पर कुछ ऊंची पहाड़ियों की श्रेणियों को छोड़ते हुए आज हम पोंड़ी पहुंचे। यहां का कंवर अधिपति मुझ से मिलने आया या यों कहिये एक गोरे मनुष्य को कौतुहलवश देखने आया। संग में उसके पुत्र और पौत्र भी थे। ये दोनों वड़े हट्टे कट्टे और डीलडौल वाले थे। फिर भी गोंड़ों के साथ इनकी समता नहीं हो सकती। हम दोनों एक दूसरे की ओर वहुत देरतक घूरते रहे। हम लोग आपस में वातचीत नहीं कर सकते थे क्योंकि दोनों दोनों की भाषा से अनजान थे। इतने में एक "वैरागी फकीर" आया।

मुहम्मद खां तारान नामक एक "खासगी सरदार" था। यह २०० घुड़सवार और ५०० पैदल सिपाहियों का अफसर था। इसके काम से प्रसन्न हो राजाने इसे अकलतरा, लवन, किकरदा, खरौद और मदनपुर ये पांच परगने इनाम में दिये। खां साहब इनाम पाये हुए परगनों पर अधिकार जमाने के लिए अपने सिपाहियों सहित जांजगीर में आ धमके। जांजगीर मदनपुर परगना के अन्दर था। मदनपुर के जमींदार छत्रसाल को जब इसकी खबर लगी तो वे अपने दोनों लड़कों सहित खां साहब के पास दौड़े आये और पूछने लगे कि किन अपराधों के कारण मेरी जमीन्दारी छीनी गई है। मुहम्मद खां ने कहा कि मुझे ये सब बातें नहीं मालूम, आप राजा साहब से जाकर प्रार्थना कीजिए। बेचारे उनके पास गये। उत्तर मिला—परगने तो अब खां साहब को दे दिये गये हैं, सो वही इसका फैसला करेंगे। छत्रसाल खां साहब के पास फिर लौटे। तब उसने बड़ी दया कर के सब अच्छे अच्छे गांव आप रख लिये और हसदो नदी के तटपर जो २३ ठो रद्दी गांव थे, छत्रसाल को दे दिये। उसी समय उसने मदनपुर चौरासी के उमरेली और कोठारी नामक दो 'बरहों' कोरबा जमींदार को भी दिये। यह कोई सन् १७८० की बात है।

इस कथा की सत्यता में बहुत कम संदेह है। कोरबा जमींदारी में उमरेली और कोठारी बरहों अब भी चौबीसा के नाम से प्रसिद्ध हैं और यह भी स्वीकार किया जाता जाता है कि ये हमें बहुत पीछे मिले थे। इसके सिवा चांपा जमींदारी के तीन गांव इस समय भी जांजगीर के निकट हैं, जिनसे इस कथा की पुष्टता होती है। सन् १८८५ में चांपा के जमींदार विश्वनाथसिंह ने इसी कथा के आधारपर अर्जी दी थी कि उसे ३७ गांव खालसा के और २४ गांव कोरबा के दिये जांय पर कहना न होगा, इसका कुछ परिणाम न हुआ।

सो सन् १७८० में केवल २३ गांवों को लेकर चांपा जमींदारी रह गई। पर धीरे धीरे उसने अच्छी उन्नति कर ली। सन् १८६७ में उसके ४४ गांव हो गये और अब इस समय ६४ गांव हैं। जमीन्दारिन श्रीमती उपमान कुंवर तथा सरबराकार ठाकुर चित्रभानसिंह हैं। आप से महायज्ञ को बड़ी सहायताएं मिली थीं।

६. छुरी—रकबा ३२९ वर्गमील, म० सं० २६०२०, जमींदार का पद प्रधान, ग्राम संख्या १४३।

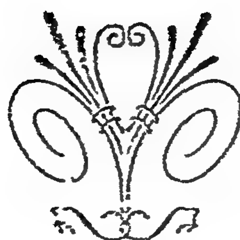
यह जमींदारी कंवरान के नाम से भी प्रसिद्ध है क्योंकि यहां कंवरों की संख्या बहुत अधिक है। छुरी खास से ५ मील दूर कोसगई नामक पहाड़ी है। वहां धामधुरवा नामक एक डाकू रहता था। उसे रत्नपुर-राजा के एक पहरेदार ने मार डाला और यह जमींदारी इनाम में पाई। तब से यह उसी के घराने के अधिकार में है। कोसगई पहाड़ी पर जो किला है, कहते हैं उसे रत्नपुर-नरेश

राजा पृथ्वीदेव लुंगाराव को १२० गांव प्रदान करते हैं। ताम्रपत्र में संवत् ८०६ की मिती पड़ी है। इसके अनुसार लाफा जमींदारी इस घराने के अधिकार में ११७३ वर्ष से है। रायबहादुर हीरालाल साहब इस ताम्रपत्र को सच्चा नहीं मानते। मृत जमींदार का कथन था कि यह जमींदारी उसके वंश में २१ पुश्तों से चली आ रही है जब कि उनका पिता केवल १६ पुश्तों का दावा करता था। पर ये दोनों आंकड़े गलत हैं। और यदि ये सच भी मान लिए जांय तो ११७३ वर्ष की लम्बी अवधि को २१ या १६ पुश्तों में बांट कर अपनी बातों पर लोगों का विश्वास सम्पादन नहीं करा सकते।

लाफा जमीन्दारी में जंगल-पहाड़ अधिक हैं। निवासी अधिकतर मांझी, महतो, बिंझवार और बनुहार जाति के हैं।

लाफा जमींदारी से होती हुई एक सड़क रतनपुर चली गई है। इसी रास्ते से प्राचीन समय में मिरजापुर तक व्यापार होता था। इस जमींदारी में लोहा बहुत मिलता है जिससे बहुत से अगरियों की गुजर बसर हो जाती है। यहां की मुख्य पहाड़ियां चितौरगढ़ (जिसपर लाफा का किला है) पलमा और धितोरी हैं।

काम काज श्रीमती दीवानिन दुलौरिन कुंवरि देखती हैं। सरबराकार दीवान रामशरणसिंह हमारे महायज्ञ समिति के सभापतित्व का कार्य बड़ी योग्यता पूर्वक अपनी पूज्य माता के प्रतिनिधि स्वरूप करते रहे। महायज्ञ को सानंद सम्पन्न करने में जो सहायता आप लोगों ने दी है, वह बहुमूल्य है।



यह जंगल पहाड़ों में घूमा करता था। इसने दुभाषिये का काम किया। अधिपति के साथ वार्तालाप कर के मुझे यह मालूम हुआ कि इन पहाड़ों में सात छोटे छोटे ज़िले हैं, जिन्हें "चौरासी" कहते हैं। पर ये नाम मात्र के चौरासी हैं। वास्तव में इन में पंद्रह से अधिक गांव नहीं हैं। ये सब मातिन परगना के भीतर हैं और मराठों को कर देते हैं। कर के रूप में बहुत ही ज्यादा अन्न वसूल किया जाता है। यदि कर बराबर नहीं दिया जाता तो मराठे बड़ी लूटपाट मचाते हैं। मैंने पूछा—क्या यहांपर कंवर या किसी जाति का स्वतन्त्र राज्य कभी नहीं था? उत्तर मिला—यह भाग पहले बघेलखण्ड-रींवा राजा के आधीन था। पर अनुमान ३० वर्ष हुए मराठों ने उसे भगा दिया। इस झगड़े में यह देश गरीब और वीरान हो गया। वार्तालाप से कुछ अधिक लाभ मैं नहीं उठा सका क्योंकि दुभाषिये को कंवर-भाषाका बहुत ही कम ज्ञान था। अन्त में वृद्ध अधिपति ने जिसका ध्यान रायनगर मोढ़े (स्टूल) की ओर बहुत था, उसकी बनावट के विषय में पूछताछ की और उत्तर पा लेनेपर विदा मांगा और चला गया। दो पहर से एक घंटा पहले हम लोग मतिन पहुंचे और ताती नदी के तटपर डेरा लगाया। यहां से एक मील उत्तर एक बहुत ही मनोहर पहाड़ी थी जिसे कंवर लोग मातिन देवी कहते थे। मैंने अपनी दूर्बीन से देखा तो उसकी चोटीपर पताका फहराते पाया। पूछने पर मालूम हुआ कि वहां हिन्दू देवी भवानी का स्थान है। होली के दिन थे, सो पहाड़ी लोग गा और नाच कर बड़े गंवारू ढंग से त्यौहार मना रहे थे। बाजा जो वे बजा रहे थे, उसे एक किस्म का आप नगाड़ा समझिए। यह मिट्टी के बर्तनपर चमड़ा छाकर बनाया गया था। वे इस बात को नहीं जानते थे कि इस त्यौहार की उत्पत्ति कब से हुई और इस का मतलब क्या है। उन में इस बात का बतानेवाला कोई ब्राह्मण भी न था। मेरी समझ से तो वे नीच जाति के हिन्दू थे। मैं उनकी निरक्षरता और विचित्र बोली के कारण उनके इतिहास, रहन सहन और धर्म के विषय में कुछ पता न लगा सका।"

यहां के जंगलों में पहले हाथी पाये जाते थे और खेदा भी होता था। पर अब जंगल कम हो जाने के कारण इनका पता नहीं। वर्तमान जमीन्दार दीवान लालमणिसिंह हैं। पसान में जहां ये रहते हैं, स्कूल, कांजीहौस और डाक है। आप हमारे महायज्ञ के बड़े सहायक थे।

८ पेंडरा — रकबा ७७४ वर्गमील, म० सं० ७४,०९४, जमींदार की पदवी लाल, ग्राम संख्या २२५।

रतनपुर-नरेश के आश्रय में हिंदूसिंह और छिन्दूसिंह नामक दो भाई रहते थे। उन्हों ने एक दिन सड़क के किनारेपर एक बोरा भर द्रव्य पड़े पाया। उसे वे राजा को दे आये। इस पर राजासाहब ने प्रसन्न हो कर उन्हें पेंडरा ज़मींदारी इनाम दे दी। यह बात संवत् १५५२ की है। यह जमीन्दारी इस

कविवर गोपाल और माखन



(लेखक—श्री बानूलाल श्रीवास्तव)

गोपाल कवि रत्नपुर के निवासी थे। उनके पिता का नाम गंगाराम तथा पुत्र का नाम माखन था। "रामप्रताप" की भूमिका में पं. जयलालजी ने जो लिखा है कि "गोपाल कवि ने कविता रचना सम्वत् १७५९ में आरम्भ किया, और "भक्ति चिंतामणि" एवं "खूब तमाशा" ग्रन्थ रचकर आधा "रामप्रताप" लिखा तथा आधा अपने पुत्र माखन को लिखने के लिए दिया" सो अशुद्ध जान पड़ता है। उपर्युक्त पिता पुत्र के द्वारा रचित ग्रन्थों की संख्या तथा उनका काव्य-निर्माण-काल ठीक नहीं है। खोज करने से उनके उपर्युक्त ग्रन्थों के अतिरिक्त निम्नलिखित ग्रन्थ और भी पाये गये हैं:—

१ जैमिनी-अश्वमेध } गोपाल कवि कृत
२ सुदामा-चरित }
३ छन्द-विलास — माखन कवि कृत

इस प्रकार इनके रचे हुए छः ग्रन्थों का पता लगा है, अर्थात् (१) भक्त चिन्तामणि—इस में गोपाल कवि ने अनेक प्रकार के छन्दों में भागवत के अनुसार कृष्ण-चरित वर्णन किया है। यह ग्रन्थ काव्य-प्रौढ़ता तथा भाव व्यंजकता में इनके सब ग्रन्थों से श्रेष्ठ है। इसे कांकेर राज्य के स्वर्गवासी नरेश श्री नृसिंहदेव ने मुद्रित कराया था। इस में बड़े आकार के २५० पृष्ठ हैं। (२) रामप्रताप—इस में पिता पुत्र दोनों ने मिलकर रामचरित वर्णन किया है। इसे पं. जयलालजी ने मुद्रित कराया है। (३) जैमिनि-अश्वमेध—इसमें गोपाल कवि ने महाभारत के आधार पर युधिष्ठिर के अश्वमेध—यज्ञ का वर्णन किया है। इसको खैरागढ़ के स्वर्गवासी राजा श्री कमलनारायण-सिंह ने छपाया था। (४) खूब तमाशा—यह एक छोटासा काव्य है तथा प्रकाशित हो गया है। (५) सुदामाचरित—इसमें गोपाल कवि ने श्री कृष्णचन्द्र के सखा सुदामाजी की कथा का वर्णन लगभग १० पृष्ठों में किया है। यह अप्रकाशित है। (६) छन्द विलास—इसे गोपाल कवि के पुत्र माखन ने रचा है। यह लगभग ५०० छन्दों में रचा गया है और सात भिन्न भिन्न तरंगों में विभाजित है। यह ग्रन्थ भी अप्रकाशित है।

आत्म-परिचय



(रचयिता—श्री बन्देअली फातमी)

मैं रत्नपुरी का हूँ खँडहर,

मुझमें कितना इतिहास भरा, कितना निर्माण विनाश भरा।
मुझमें पतझड़ मुझमें वसन्त, है कितना रोदन हास भरा।
ओ पथिक ! बता दूँ तुझे ठहर, मैं रत्नपुरी०—

मोरध्वज की हूँ कथा लिये, हैहय वंशों की व्यथा लिये।
जैसे मुझमें है एक विश्व, जिसने समुद्र शत मथा लिये।
अस्तित्व अरे मम अजर अमर, मैं रत्नपुरी०—

बीते युग की हूँ याद सदृश, भावी का हूँ नवनाद सदृश।
जो रत्न ऊगने वाले हैं, उन रत्नों की हूँ खाद सदृश।
मैं सत्य और मैं शिव सुन्दर, मैं रत्नपुरी०—

मैं ही विलासपुर वैभव हूँ, मैं एक राष्ट्र का उद्भव हूँ।
मैं अखण्ड मैं हूँ अभिन्न, मैं भारत का चिरगौरव हूँ।
विन्ध्याचल है मेरा यशधर, मैं रत्नपुरी०—

कौशल को मैंने किया महा, यह था मेरा ही हिया महा।
किसको रत्नाकर कहता है, मैंने रत्नाकर पिया महा।
रत्नों से हैं मेरे प्रस्तर, मैं रत्नपुरी०—



प्रत्येक तरङ्ग की पूर्ति में भी माखन ने निम्नलिखित समाप्ति सूचक वाक्य लिखा है —

" इति श्री हैहय-कुल-कमल-प्रकाश-भास्कर-प्रताप राजा राजसिंह चूड़ामणि चाणक गोपाल विरचाय......तरङ्ग समाप्तम् "। छन्द विलास के किसी किसी छन्द में तथा प्रत्येक तरङ्ग की समाप्ति में गोपाल कवि ही का नाम रख दिया है, यह केवल उनके पितृ-प्रेम का ही परिचायक है।

छन्द-विलास के उपर्युक्त अवतरणों से पाठकों को यह मालूम हो सकता है कि राजा राजसिंह का शासनकाल अच्छा था। वे विद्वानों का आदर करते थे और ये कविद्वय उनके चाणक थे। रामप्रताप में रामचरित्र वर्णित है।

अब यहां यह प्रश्न उपस्थित होता है कि राजसिंह तो रत्नपुर के राजा थे पर माखन ने " राजसिंह नृपराज मणि हैहय-वंश-प्रकाश। सुवस रायपुर में रच्यो सुन्दर छन्द विलास " क्यों लिखा है? इसका उत्तर यह होगा कि इतिहाससे तो यह नहीं जान पड़ता कि रत्नपुर को छोड़कर रायपुरमें भी राजसिंह नामका कोई राजा हुआ हो। हां यह स्पष्ट है कि रायपुर का राजवंश रत्नपुर के घराने का था, और राजसिंह की कोई सन्तान न होने से वह रायपुर राजवंश के मोहनसिंह को अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहते थे। इस प्रकार जब दोनों राजघरानों में घनिष्ट सम्बन्ध था तो बहुत सम्भव है कि माखन कवि राजा के चाणक होने से उनकी आज्ञानुसार रायपुर में भी रहते रहे हों अथवा इस ग्रन्थ की समाप्ति के समय रायपुर में आये रहे हों।

"भक्त चिन्तामणि" के टाइटिल पेज (आवरण-पृष्ठ) पर इस प्रकार लिखा है—

"भक्त चिन्तामणि

श्रीमन्महाराजाधिराज दक्षिण रायपुरान्तर्गत कांकेर राज्याधिपति श्री क्षत्रिय राजकुलावतंश श्री नृहरि देव महाराज के आश्रित रत्नपुर निवासी कविवर श्री गोपाल मिश्र द्वारा विरचित, जिसको उक्त महाराज की आज्ञानुसार विश्वनाथ पाठक ने प्रकाशित किया।

हरि प्रकाश यंत्रालय काशी संवत् १९४१"

इस लेख को देखकर बड़ा आश्चर्य होता है क्यों उपर्युक्त कवि और महाराज के जीवन समय में बहुत ही अन्तर है। गोपाल कवि इनसे बहुत पहले हो चुके थे। तब यह कैसे सम्भव है कि वे आपके (राजा साहब के) आश्रित रहे हों। यह सत्य है कि कांकेर के राजा श्री नरहरिदेवजी ने निज व्यय से उपर्युक्त ग्रन्थ को मुद्रित कराया था। यदि इसी सम्बन्ध से वे श्रीमान् के आश्रित मान

उपर्युक्त छहों ग्रंथों में से 'भक्त चिन्तामणि, जैमिनि-अश्वमेध और राम-प्रताप बहुत प्रख्यात तथा कविद्वय की प्रतिभा के पूर्ण परिचायक हैं।

पं० जयलालजी ने रामप्रताप की भूमिका में गोपाल कवि की काव्य-रचना का आरम्भ-काल संवत् १७५९ लिखा है। यह अशुद्ध जान पड़ता है, क्योंकि उपर्युक्त कविने जैमिनि-अश्वमेध, सुदामा-चरित तथा भक्त चिन्तामणि में अपना संक्षिप्त परिचय तथा ग्रन्थ रचना का समय दिया है। इन से स्पष्ट प्रकट होता है कि वे ग्रन्थ रचना पहिले से ही करते थे। देखिए:—

प्लवंगम छन्द—पूरण पुण्य प्रताप सु गंगाराम के।
तिन नन्दन गोपाल रसिक हरिनाम के॥
तिन सुत माखन कहिय हेत सुन लीजिए।
अश्वमेध इतिहास कथा करि दीजिए॥

दोहा— लोक वेद सागर मिले शिव हग संवत् साल।
बावन गुण बदि फालगुन उपजी कथा रसाल॥ (जैमिनि अश्वमेध)

दोहा— आश्विन बदि गोमति तिथी, औ कहिए गुरुवार।
संभु बदन सर उरग ससि संवत्सर निरधार॥ (सुदामा चरित)

शुभ सम्वत् सत्रहि सै उनसट्ठहिं मारग मास उजागर में।
वसु वासर पुष्य बुधे अवतार विचार कस्यो मति आगर में।
अवलम्बन श्री मुरलीधर हैं तिन केलि कहौ नरनागर में।
मन-मीन गोपाल विहार करैं हरिनाम-सुधानिधि-सागर में॥

इस प्रकार जब जैमिनि अश्वमेध का रचना काल सम्वत् १७५२, सुदामा चरित का सं. १७५५ तथा भक्त चिन्तामणि का सं. १७५९ स्वयं कवि ही की वाणी से सिद्ध है, तब उनके ग्रन्थ-रचना का प्रारम्भ सं. १७५९ से मानना भ्रम-पूर्ण है। यदि उन्होंने इस संवत् को भक्त चिन्तामणि का रचना-काल लिखा होता तो ठीक था।

छन्द-विलास में माखन कवि ने राजा राजसिंह का उल्लेख जिनका शासन-काल सं. १७५६ से १७७६ तक था, किया है। यथा:—

दोहा—राजसिंह नृपराज मणि, हैहय वंश प्रकास।
सुवस रायपुर में रच्यो सुन्दर छन्द-विलास॥
सदा सुकवि गोपाल को श्री गोपाल कृपाल।
तिन सासन हित ते रच्यो छन्द-विलास रसाल॥
नर वानी पिंगल कह्यो, छन्द सेस मति धारि।
यथा सुमति माखन रच्यो, बुधजन लेहु सुधारि॥

अवनि में ऐंड़ ऐसो इन्द्र सों को अरतो ॥
कोमल निपट भुज बल की बलाइ लेउं,
कहति जसोदा दुख ऐसो कौन हरतो ॥
हो तो कौन हाल बहि जाते सब ग्वाल बाल,
जो न री गोपाल गिरि ऐसो आजु धरतो ॥

किरीट छन्द—गाल बजाइ बजाउ सबै दिन कान्ह छिपाइ बसे बन ऊसर ।
दाम सुदाम बड़े अति साम निकाम परे भये बासर चूसर ॥
बैठहिंगे जुबराबरि कालिंदि आदि के दानी टका दस मूसर ।
खाइ चोराइ चोराई अहीर मोटाइ भये ब्रज में धन धूसर ॥

श्रीकृष्णजी की वंशी

भुजँगप्रयात— जबै मोहना मोह बंसी बजायो,
मनो लैन को मैन को दूत धायो ।
जहां जौन जैसी हुती गोपनारी,
तहां तौन तैसी चली रैन भारी ।
सबै अंगना अंग की लाज भूली,
मनो स्वर्ण की बल्लिका फैलि फूली ।
छुटी मांग मुक्तावली भाल झूलें,
कपोले लुरैं सीस तें सीस फूलें ।
लसै भाल सिन्दूर बिन्दा बिसाला,
कि मन्दाकिनी मध्य मन्दारमाला ।
किधौं हेम सैलाग्र में सूर झूल्यौ,
किधौं भाल सौभाग्य को फूल फूल्यौ ।
किधौं वाड़वाग्नि की वेदिका में,
कि स्वाहा हिये सोम बन्धूक दामें ।
लसै सीपजा जुक्त सीमन्त वेषा,
घटा में मनों चन्द्र की चारु रेखा ।
बनी चारु बेनी त्रिवेणी धसी है,
सुधा इन्दु को कै भुजंगी ग्रसी है ।
फबै सीस फूलो प्रभा हंस गोहैं,
कहै को कहां लौं घने भांति सोहैं ।
उरोजें बिना कंचुकि एक बांहैं,
लई मेलि कै किंकनी कण्ठ माहैं ।
मनो स्वर्ण के वर्ण तें संभु सोहैं,
छमी संजमी से जिन्हैं देख मोहैं ।
किधौं कन्ज के बुन्द कै गुच्छ होऊ,
किधौं काम जू के बने गेंद दोऊ ।

लिये गये हों तो बात दूसरी है परन्तु यदि उपर्युक्त लेख का यह मतलब हो कि गोपाल या उनके पुत्र माखन उन राजा साहब के आश्रय में या उनके दरबार में आकर रहे हों तो यह नितान्त भ्रमपूर्ण है, क्योंकि राजा साहिब के जीवनकाल में इन कवियों का जीवित रहना कदापि सम्भव नहीं है। मालूम नहीं इस टाइटिल पेज के लेखका वास्तविक अर्थ क्या है? जो हो, अब हम उपर्युक्त कवियों की कविता के कुछ नमूने यहां देकर इस लेख को समाप्त करते हैं—

गोवर्द्धन-धारण

त्रोटक— लखि चक्रहिं सक्रहिं क्रोध बढ्यो,
घन छप्पन कोटिनि साजि चढ्यो।
करि वृष्टि अनेक प्रकार अर्‌यो,
बहु वज्र अघात प्रहार कर्‌यो।
अति मेघ घटा भट गरजत है,
इत गोप-समाज विराजत है।
अवलोकि जसोमति नन्द तबै,
अति निर्दय मूढ़ अहीर सबै।
तुम टेकि पहार घरीक धरौ,
कहि भोजन राम गोपाल करौ।

ग्वालउवाच—हम लाठिनि मन्दर जोर गहैं,
इनसों हम बार हजार कहैं।
सुनि राम गोपाल हु ख्याल ठये,
गिरिभार कछू छुटकाइ दये।

कवित्त— ग्वालन के गरब विचारि के गोपाल लाल,
ख्यालि ही में दीन्हें नेक गिरि छुटकाइ हैं।
दै दै कीक बलत ढपेलत परत झुकि,
टूटत लकुटि कहुं टिकत न पाइ हैं।
शरण सरण करि टेरत विकल मति,
आरत पुकारत अनेक बिततांइ हैं।
दावा को न पाइ दावि मारत पहार तर,
राखु राखु रे कन्हैया तेरी हम गाइ हैं॥

दोहा— श्री गिरिधर गिरि कर धरे, सब हरषे हिय माह।
नन्द जसोदा गोपिका, ग्वालिनि पूजे चांह॥

यशोदा-कवित्त—लरती सबै रहीतैं लारिकै लगाय दोष,
देखती हौ आंखि कछु कौन ऐसो करतो॥
बूड़ि जातो गरब गुमान धन गोधन को,

सर सूखत दरखत अनेक दुख होत पथिक पथ।
तजत भवन इन दिनहिं कौन मोहत मन मन्मथ।
आधार एक राधा रमन बाधा विरह विहंडिये।
कर जोरि कहत गिरिधर सुनो, सुग्रीषम भवन न छांड़िये॥
प्रबल बात अररात चलत चहुं ओर चपल गति।
घुमड़ि घटा घहरात उमड़ि नभ लयो घेरि अति।
तड़पि तड़पि झुकि झरइ वृन्द बरजोरनि बरसत।
हरित भूमि सरसंत मोर बनवन मन हरषत।
अब झूलहु लाल हिंडोरने नवल नेह नित मान हितु।
यह समय बेस कोउ चलत नाहिं सुपावस विविध विलास रितु॥

चौबोला—सेनापति किय कामदेव को महामोह को मंत्री।
क्रोध खवास कपट दरबारी माद नकीब कुजंत्री।
महा कागदी प्रबल लोभ सो करै खलक का लेखा।
अष्टादश परताप तेज का खूब तमासा देखा॥
पास वान अपमारग सिगरे खलग सुमारग मारे।
वैद सोक संताप प्रोहितो कविता अजस उचारे।
रानी रूपवंति अति तृष्णा चिन्ता सदा नवेली।
परनिन्दा दुरमति रति रस को सोहै संग नवेली॥

सवैया— मोह के होत महा नित आनँद मान अनेगनि के जित मारे।
लोभ के भीर रहे निसिवासर होत अलोभन के दुख भारे।
ज्ञान विवेक बिमा सत्काम सुकोक कला रस चाहन सारे।
राजत यों प्रभुता कलिराज के बाजत पाप के पौरि नगारे॥ (छन्द-विलास)



लसै रोम राजी महा सोभ देनी,
मनो चारु सिंगार की स्वच्छ बेनी।
सबै अंग योंही अलंकार सोहै,
इते मान गोपाल जू बाल मोहै ॥

बाणासुरकृत हरिहर स्तुति

त्रिभंगी—जय बनमाली जयति कपाली मर्दन काली व्यालधरं।
जय पंकज वदनं पंच सुवदनं रसवर मदनं मदन हरं।
जय पुरुष पुराणं जोग निधानं निगम निदानं प्रकृति परं।
जय धरणि उधरणं अंधक हरणं हरिपद सरणं जयति हरं ॥

(भक्त चिन्तामणि)

दोहा— निरखत शोभा नगर की, चलत विप्र बेहाल।
आगे देखा बिसद पुनि, अद्भुत अति हयसाल ॥

सवैया— देखत विप्र चले हयसाल बिसाल बँधे बहुरंग बिराजी।
चञ्चलता मन मानहि गंजन पौनहु की गति ते छविछाजी ॥
भांति अनेक सकै कहि कौन कहे न परै तिन साज समाजी।
राजत हैं रव हंस लखैं गति यों जो गोपाल दिये द्विज बाजी ॥

छप्पय— चलत छुधित श्रम थकित झुकित हय सालहिं नक्क्यो।
लखत व्याल थल कठिन चकित चित गति मति थक्क्यो।
नगहिं द्वीप श्रुति मेरु झिरत झरना कपोल मद।
उड़ द्विरेफ रव व्यूह ललित विकराल कठिन रद।
चिक्करहिं बलाहक प्रबल जिमि उड़त खेह रवि छिपत कर।
गोपाल कबहुं तकि अमर तरु खैंचत शुण्डा दण्ड धर ॥

दोहा— नकत नकत सिंधुर सदन, सोच पुञ्ज द्विजराज।
कौन भूप केहि देस को कीन्हों मोर अकाज ॥

सवैया— आय सुदाम लखे निज ठाम नहीं वह धाम न नाम विलोकी।
धाय इतै उत व्याकुलता न हनै उर पात अयात दिलोकी।
काह करौं कित बूड़ मरौं किम हाल कियो मम नाथ तिलोकी।
जाय इतै उत नारि गंवाय सो बाट परै अस मीत मिलोकी ॥

दोहा— देखि अटा पर द्विज वधू बिधू छटा के भाय।
डोलत अति व्याकुल हृदय, मारग रोकी आय ॥

(सुदामा-चरित)

छप्पय— तजत तेज अति तरुनि जीव व्याकुल जल थल थल।
अनिल अनल सम बहत बहत सब सीतल पल पल।

७

चूतोद्भूताऽभिनव मुकुलैश्चञ्चुचाञ्चल्यमञ्च,
नुद्यानेऽस्मिन्मदकल ! मुदापञ्चमं पञ्चयेस्त्वम्।
यः श्रोतॄणां श्रुतिषु तिरयन् किन्नरी कण्ठ तन्त्री-
त्यावर्त्तोत्थध्वनिमयि, सुधाशीकरानभ्यवर्षत् ॥

८

शैल श्रेणी वनतरुचयच्छन्नलीलेन्द्र रौत्रि-
यस्यित्युच्चैर्नयनपदवीं काऽपि तामुत्तरेण।
आणदान्तं कुसुम-समयेऽलवङ्गलता या प्रसूनैः
सद्यः प्रीतिं जनयति मधोः प्रेयसी-भूय-भूयः॥

९

तस्यास्तीरे शिशिर-सलिलं वीचि-सम्मर्दरम्यं-
पश्येः पूतं प्रिय ! गुरु सरः स्वच्छ मागाध लक्ष्यम्।
कादम्बानां मधुर रणितैर्निक्वणत्काञ्चिमन्दं,
नृत्यत्यस्मिन्नलिन चरणं प्रत्यहं कानन श्रीः ॥

१०

कासारोन्यः कृतगुरुशिलाश्रेणि रम्यावतारः
प्रेक्ष्यश्चक्रावलि मुखरितश्चारु कृष्णार्जुनीयः।
प्रादादर्धाममितनुमिति प्राङ्मयूरध्वजोऽस्मिन,
वीचिक्षोभस्वनितवचनैर्यो ऽनिशं शंसतीव ॥

११

स्नात्वा ऽऽचम्य द्रुतमिह महापूत-चेतास्ततः स्याः
प्रासादाध्वव्यवसित यदः श्रील-वृद्धेश्वरस्य।
सद्यश्छेत्तुं त्रिगुणमिव यस्त्र्यम्बको ऽ त्रिलोक्या-
स्त्रैविद्यानामविदित तनु : पाति पाणौ त्रिशूलम् ॥

१२

भक्ति प्रह्वाः कमपि समयं संयतस्त्वं सहेथा-
स्तस्मिन् यावत् प्रसरित विधिर्नास्य माध्यन्दिनीयः।
आतोद्यानां स्फुरति जलदध्वान-गम्भीर-घोषे,
वीणा क्वाणैः कलय निपुणं काकली मेकतानम् ॥

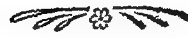
१३

पातिव्रत्यं स्थिरयितुमिव स्वं यशोविग्रहेण,
स्तूपीभूतं गणय शतशस्तत्र तासां सतीनाम्।
सिक्ताः स्नैहै युर्वहुतभुजिस्वाहुतीभूय जग्मुः
स्वर्लोकं याश्चिरतरमीय स्वर्गतेभ्यः प्रियेभ्यः ॥

१४

प्रासादं तं विशद सुभगं व्योम्निवेल्लत्-पताकं,
यायाः संध्यार्चनविधिनदद्दुन्दुभिध्वान रम्यम्।

रत्नपुरं-प्रति



(रचयिता–व्याकरण-साहित्याचार्य श्री. पं० सदाशिवदास शर्मा, वेदान्त शास्त्री)

१

पुष्पोद्ग्रैर्नवकुसुमितां किंशुकैः शीर्णवेणीं
लज्जालीनां सिकतिल-तल-क्षोणि-शय्या-निषण्णाम्।
त्यक्त्वाऽपि त्वं पिक ! सहचरीं चारु चित्रोत्पलां तां
गच्छोदीच्यां शशिकुलभुवां भूभुजां राजधानीम्॥

२

शुभ्रं यस्यां चलमपि यशस्तेऽचलीभूय भूमौ,
भासेताग्रे विबुध-सदन-व्याजतो हैहयानाम्।
केतुच्छद्मोदित शतशतस्फीत जिह्वा भिरेत—
च्चान्द्रं रोचिश्चुलुकयदिव व्योम सीमानमेति॥

३

भूपालैस्तैः कलित जनुपस्तद्यशः ख्यापनाय,
व्याघ्रात्मानः श्लभितवपुषश्चिन्तया यत्र सौधाः।
दीर्णाः शीर्णाः स्वयमयिचतेऽद्यापि तत्पोषयन्ति,
स्वात्मोत्सर्गैरपि परयशः पालयन्त्येव सन्तः॥

४

कण्ठेऽकुण्ठं स्तुतिशत-रसैः काकलीं लालयिष्यन्,
पुष्यत् पुष्पैरपि परिमलैः सम्भृताचौंय चारः।
भूतोद्भूतिस्थिति–लयकृतं भूरि तत्रोपकण्ठे,
प्रादीक्षण्यैर्विधिवदभितो भैरवं भावयेथाः॥

५

दुर्गं दृष्ट्वा गतशतमहाध्वंस-तौर्यत्रिकाणां,
रङ्गागारं रिपुकुल गलल्लोहितो स्निग्ध गीतम्।
मूकध्वानैरसि समुदयोद्दीप्त-निर्घोष-भीमं,
शौर्यैरार्यैस्त्वमपि हृदये, विस्मितः क्ष्माभुजां स्याः॥

६

तत्रोपान्ते मलयमरुतश्चुम्बनोत्फुल्ल गात्रीं—
चूतोद्यानावलिमनलसः कोकिल ! त्वं समीयाः।
इषित् कम्पैर्मुकुलनयनैः पल्लवैर्माधवाय,
त्वत्संगीतस्वनमय-कलैः स्वागतं याऽभिधास्याम्॥

मौन-कथा

~೦ೲ(.0:)ೲ೦~

(रचियता—डा० बल्देवप्रसाद मिश्र, एम. ए., एल-एल. बी., डी. लिट्.)

कौन सुनेगा मौन कथा ?
भग्न खँडहर वता रहे हैं रत्नपूर था, यहाँ न था।

कहाँ गया द्वापर का गौरव,
कहाँ हैहयों का वह वैभव,
कहाँ मरहठा शाही भागी,
वह देखो जो सुना न था! कौन० ?

दुर्ग ढहा, सूखे कितने सर,
छिन्न-भिन्न हैं मठ मन्दिर घर,
प्रतिमाएँ पाषाण बनी हैं,—
सहकर उर में विषम-व्यथा! कौन० ?

भैरव और महामाया हैं,
दोनों ब्रह्म और माया हैं,
किन्तु गई काया, अब केवल,
छाया का ही तार गथा! कौन० ?

सतियों की समाधियाँ छाईं,
भरी न किन्तु काल की खाईं,
ढहती ही जाती है दिन-दिन-
पुर की रत्न प्रकाश प्रथा! कौन० ?

रामटेकड़ी अब भी ऊँची,
लिये राम की मूर्ति समूची,
क्या न कभी इस विषम दृश्य ने,
जगदीश्वर का हृदय मथा!
कौन सुनेगा मौन- कथा ?

———

तीर्थीभूतः प्रभवति महामययाध्यासितोयः,
सद्यः पुण्यैर्जगदघवतां श्रेयसेऽपीक्ष्यमाणः।

१५

तस्मिन्नेकाऽसितगुरु शिलाखण्डनिर्वर्तिताचा-
मम्बां भेदत्रयमयतनुं श्रद्धया लोकयेथाः।
नित्याविश्वप्रकृतिरतनोदद्वयाऽपिस्वतन्त्रं-
दिव्यंमूर्तित्रितयमिवसा सन्ततोद्यद्याभिः॥

१६

मन्दैः पुष्पस्तवकगलितैः शीतलैस्तवं समीरै,
रन्तः स्निग्धः सविधि जगतां वीजयेथाः सवित्रीम्।
गन्तव्ये ते पथि पिक ! भवेद् भद्रमेतेन भावि,
सूते सिद्धिं समभिलषिते कां न मातुःसपर्या॥

१७

सद्भोद्याने तरल सुमनः सौरभे माधवीनां,
कुञ्जे कस्मिँश्चिदपि भवता यामिनी यापनीया।
श्रावं श्रावं मधुरललितं माधव प्रीतिगीतं,
रेवारामसमरणजसुखं लप्स्यसेऽत्रापि भूयः॥



बाबू रेवारामजी की स्त्री का नाम फुंदरी था। वह बड़ी सुन्दरी और सती साध्वी थी। पति के जीते जी उसका देहावसान हो गया था। इससे बाबूजी को बड़ा कष्ट हुआ। उन्होंने उसके मरने की तिथि निज रचित कई ग्रन्थों में लिखी है: जैसा कि नीचे लिखे अवतरणों से प्रकट होगाः—

श्लोक—मूर्द्धा मूर्द्धी कल्लोलासित हृदि सुदाधाय रामांघ्रिपद्मं
गीतां गीतांनिपीयश्रवसि मदिसुरव्योंम पृथ्वीग्रहेंदौ।
साध्वां साध्वीशगार्मी रविरथिदिवसे मासराषाढ़ कृष्णे,
चैकादश्यामुपोष्यो हरिपद गमत्फुंदरी सुन्दरी मे॥
(सार रामायण दीपिका)

इससे ज्ञात होता है कि बाबूजी की स्त्री का परलोकयान सम्वत् १९१० के आषाढ़ कृष्ण एकादशी को गीता सुनने के पश्चात् हुआ था। यही बात निम्न लिखित छन्दों से भी प्रकट होती हैः—

सती फुंदरी रामचरन लवलीन सुहाई,
गीता सुनि भजि राम देह तजि हरि पद पाई।
हरिवासर रविवार मास आषाढ़ सुहाये,
आदि पक्ष कौबेर दिशा दिनकर छबि छाये।
भय उदय अस्त जन सकल जग राम भजन इक सार
रेवाराम गरीब कह, राम नाम आधार॥ (गंगालहरी)

लोग कहते हैं-एक समय बाबूजी ने जगदम्बा की स्तुति में पद्य रचना करते समय एक शब्द हरवरनी लिख दिया जिससे उनकी स्त्री का निधन हो गया यद्यपि उन्होंने बाद में हरवरनी को सुधारकर शिववरनी कर दिया था।

बाबूजी की कुल कितनी संतति हुई इसका भी कुछ पता नहीं चलता। केवल एक पुत्री के विषय में जिसका नाम सेवती था, कुछ हाल जाना जाता है। कहते हैं-उनके एक पुत्र भी था। उसके विषय में यह दंतकथा प्रचलित है-बाबूजी ने एक दिन एक कविता-कमल बनाया। फिर कविता का ही एक भौंरा बनाकर उसको उसपर लुभाया। पश्चात् भौंरे को कमल के भीतर बन्द कर आपने कमल को सम्पुट कर दिया। फल यह हुआ कि आपका लड़का मर गया।

राजाओं की राजधानी होने के कारण रतनपुर में पंडितों का जमाव सदा होते रहा। यहां के पंडितों की प्रशंसा सुनकर काशी आदि कई स्थानों से बहुत से विद्वान शास्त्रार्थ की इच्छा से यहां आते रहे। रेवाराम बाबू के समय में भी जब यहां का प्रबन्ध नागपुर के भोंसले की ओर से कमायसदार लोग रहकर करते थे और उसके पश्चात् भी जब यह अंगरेजी राज्य में मिला लिया गया, यहां अनेक स्थानों से ऐसे पंडितों का आवागमन जारी ही रहा। इस समय रतनपुर की बहुत गिरती दशा थी जो अबतक बनी है। अच्छे २ पंडितों का अभाव सा

कविवर बाबू रेवारामजी

(लेखक—श्री प्यारेलाल गुप्त)

ऐसा कौन छत्तीसगढ़ निवासी होगा जिसने रत्नपुर के प्रतिभाशाली कवि स्वर्गीय बाबू रेवाराम का नाम न सुना हो। इनके बनाये हुए भजनों का छत्तीसगढ़ में इतना प्रचार है कि जितना, श्री तुलसीदासजी कृत रामायण को छोड़कर कदाचित् ही किसी दूसरे धार्मिक साहित्य का हो। आज इस लेख में बाबूजी की जीवनी तथा उनकी रचनाओंपर कुछ प्रकाश डालने का प्रयत्न किया जाता है।

बाबूजी का जन्म किस सम्वत् में हुआ इसका कुछ पता नहीं चलता यद्यपि उन्होंने अपने बनाये भिन्न २ ग्रंथों में अपना वंश परिचय दिया है। फिर भी अपनी जन्म तिथि, बाल्यावस्था तथा विद्याध्ययन के विषय में उन्होंने कुछ नहीं लिखा है। अस्तु; उनके बनाये ग्रन्थों और जन श्रुतियों के आधार पर उनकी संक्षिप्त जीवनी नीचे लिखी जाती है—

बाबू रेवारामजी के प्रपितामह का नाम महंतराय, पितामह का शिवसिंह, पिता का जगत राय और माता का सीता था। आप जाति के कायस्थ थे। किस विभाग के कायस्थ थे यह तो पता नहीं चलता किन्तु आपने अपना गोत्र "जैमनि" लिखा है। आपके पूर्वज हैहय वंशी राजाओं के दीवान थे, अतएव आपका घराना बहुत उच्च और प्रतिष्ठित था।

बाबूजी का जन्म अनुमानतः सम्वत् १८७० के लगभग हुआ होगा। आपकी उत्पत्ति शायद नर्मदा (रेवा) की मानता मानने से हुई थी। इसीसे आपका नाम रेवाराम रक्खा गया। आपका कविता-नाम रेवा, रेवाराम या रेवाजन था। आपका रूप कुछ अच्छा नहीं था। रंग सांवला था, दोनों पैर फूल उठे थे और उनमें ज़मीकन्द की गांठों के सदृश गांठें उठ आईं थी, अतएव बहुतेर लोग आपको ज़मीकन्द बाबू कहकर भी पुकारते थे।

यद्यपि बाबूजी की शिक्षा-दीक्षा के विषय में कोई बात ज्ञात नहीं तौ भी आपके ग्रन्थों से यह प्रमाणित होता है कि आप हिंदी, संस्कृत और बृज भाषा के पूर्ण पण्डित थे। उर्दू-फारसी और संगीत शास्त्र में भी आपका बहुत कुछ दखल था। इनके सिवाय महाराष्ट्रों की संगति से आपने मराठी ढंग की कविता करना भी कुछ २ सीख लिया था।

बाबूजी का देहान्त सम्वत् १९३० के आसपास हुआ था। **मरने के समय** आपको अपार कष्ट हुआ।

खेद है कि ऐसे महाकवि के वंश में अब कोई नहीं रहा, यहां तक कि रत्नपुर में जहां कुछ वर्ष पहिले पचास-साठ घर कायस्थों के थे, वहां अब एक जरा सा बच्चा भी अपने को कायस्थ बतलाने वाला न रहा।

बाबूजी ने ऐसे तो कई ग्रन्थ लिखे हैं; पर हमें केवल १३ ग्रन्थों का ही पता लगा है। उन ग्रन्थों के नाम ये हैं :—

१-सार रामायण दीपिका २-ब्राह्मण-स्तोत्र ३-गीत-माधव महाकाव्य ४-नर्मदाष्टक ५-गंगालहरी ६-रामाश्वमेध ७-विक्रम-विलास ८-रत्न-परीक्षा ९-दोहावली १०-माता के भजन ११-कृष्णलीला के भजन १२-लोकलावण्य-वृतान्त और १३-रत्नपुर का इतिहास।

इनमें से पांच ग्रन्थ तो संस्कृत में: मध्य के छः पद्यमें और शेष दो गद्य में हैं।

अब हम अपने पाठकों को इन ग्रन्थों का संक्षिप्त परिचय देने की चेष्टा करते हैं:—

१ सार रामायण दीपिका :—इसमें श्रीरामचन्द्रजी की लीला १०८ श्लोकों में वर्णित है। बाबूजी ने प्रत्येक श्लोक के नीचे संस्कृत ही में उसकी टीका लिखी है। बड़ा विशद ग्रन्थ है। नीचे एक पद उदाहरणार्थ उद्धृत किया जाता है। यह आरती है और ग्रन्थ के अन्त में है :—

जय देव जय देव जय रघुपति रामं,
सीता विलसित वामं सुखमाजित कामं।
मेदुर मुदिर श्यामं पूरित जन कामं,
मणि मय ललित ललामं ध्याये प्रति यामं।
गुण पायोधि गंभीरं पालित हरिवीरं,
दिनकर कुल मति धीरं चिन्तानल नीरं।
धृतकर शर कोदंडं हत खल पाखंडं,
श्रुति दृश भुवन करंडं कल कुंडल गंडं।
सुर मुनि जन परिवारं करुणा अपारं,
विलसित तत्व विचारं भासित संसारं।
निज जन मानस हंसं नाशित दनुवंशं,
शत रवि रुचिर वतंसं ध्वंसित कलि दंशं।
संहृत खल भूभारं हृदि मणि गण हारं,
सुर पंकज सवितारं रावव सदुदारं।
वन्देत्वामनु यामं पूरिजन कामं,
पालय रेवारामं खिल करुणा आमं॥

हो चला था। ऐसे समय में हमारे चरितनायक ने रत्नपुर की बहुत कुछ प्रतिष्ठा बचा ली थी। अपनी ओर से एक पंडित को मुखिया बना, आप उसके पीछे बैठ उन शास्त्रार्थेच्छुक पंडितों से शास्त्रार्थ करते थे और उन्हें पराजित करते थे। ऐसे कई शास्त्रार्थों का हाल लोग बतलाते हैं जो विस्तार भय से यहां नहीं लिखे जाते। ब्राह्मणों के सम्मुख होकर कभी वितण्डावाद नहीं करते थे। अपनी ओर से एक ब्राह्मण बिठा, उसकी आड़ ले, अपना वक्तव्य आप बड़ी नम्रता के साथ निवेदन करते थे। इससे ब्राह्मणों के प्रति आपकी भक्ति और दृढ़ निष्ठा व्यक्त होती है। इस बात की पुष्टि आपकी लिखी ब्राह्मण-स्तोत्र नामक पुस्तक से भी होती है।

बाबूजी को जगदम्बा का इष्ट था। लोग कहते हैं कि यह उन्हीं की कृपा-कटाक्ष का फल है जो ये ऐसे महाकवि हो सके। एक बार इनसे और रत्नपुर के कमायसदार श्री मधुसूदनराव से कुछ झगड़ा हो गया। राव साहबने बाबूजी का बड़ा निरादर किया और इन्हें अनेक तिरस्कारयुक्त बातें कहीं। बाबूजीको राव साहब के इस व्यवहार से बड़ा क्षोभ और अत्यन्त दुःख हुआ। इन्होंने राव साहब को शिकायत में एक श्लोक लिखकर महामाया के मन्दिर में डाल दिया। फल यह हुआ कि राव साहब को रातभर कय और दस्त होते रहे। बहुत कुछ इलाज हुआ पर वे चंगे नहीं हुए। सबेरे जब पुजारियोंने मंदिर खोला तो वह कागज पड़ा पाया। उन्होंने तत्काल ही इस बात की सूचना रावसाहब को दी। राव सा० की समझ में सब बातें आ गईं और वे लोगों की सलाह से बाबूजी को अपने घर सादर बुलवा क्षमा मांगने लगे। बाबूजी का चित्त बड़ा सरल और उदार था। इन्हों ने अपना वह कागज मंगवा केवल एक अक्षर सुधार दिया। अब उस श्लोक से राव सा० की रक्षा का अर्थ ध्वनित होने लगा। वह कागज फिर महामाया के मन्दिर में भेज दिया गया और राव सा० तत्काल ही अच्छे हो गये। इस घटना के बाद लोग बाबूजी का बहुत मान करने लगे और उनसे डरने भी लगे।

बाबूजी पुस्तक रचकर अपना जीवन निर्वाह करते थे। बालकों को संस्कृत् पढ़ाकर भी आप कुछ द्रव्य प्राप्त कर लेते थे। कुछ समय तक आपने पुत्रीशाला का शिक्षकीय कार्य भी किया था किन्तु यह सत्य है कि आपका जीवन अत्यन्त दुखः दारिद्र्य और रोगावस्था में व्यतीत हुआ। लक्ष्मी और सरस्वती की अनबन वाली आख्यायिका आप पर पूर्ण रूप से चरितार्थ होती रही।

बाबूजी को किसी की खुशामद करना बिलकुल नापसंद था। कहते हैं-रीवां के तत्कालीन राजा ने आपको लेने के लिए कई बार हाथी भेजा, पर आपने जाने से सदा इन्कार कर दिया।

बाबूजी के अक्षर बहुत अच्छे मोती के समान गोल बनते थे। एकाएक देखने से छापे के अक्षरों का धोखा हो जाता है।

(७) विक्रम विलास :—यह सिंहासन बत्तीसी का पद्यानुवाद बाबूजी ने अपने मित्र प्रेमसाहुके पुत्र मोहरसाहु के अनुरोध से किया था। हम यह पहला ग्रंथ पाते हैं जिसमें कवि द्वारा 'छत्तीसगढ़' शब्द व्यवहृत हुआ हो। नीचे वह अंश उद्धृत किया जाता है जिसमें छत्तीसगढ़ शब्द आया है और साथही जिसमें रत्नपुर का विशद वर्णन है:—

पादाकुलिक छन्द

विपुला लसित विपुल विस्तारा। तामें सात दीप है सारा॥
सात दीप में जम्बू दीपा। देव मध्य जनु सोहत श्रीपा॥
तिन जंबू के हैं नव खंडा। नव सहस्र चाकर अति चंडा॥
तिनमें भरत खंड सिरताजा। कर्म भूमि ता पर है राजा॥
तामें अमित देस सुचि सोहै। वास करन हित सुरपति मोहै॥
दिल्ली तखत तासु के स्वामी। चारिहु फल तहँ हैं अनुगामी॥
तिनमें दक्षिन कोसल देसा। जहं हरि ओतु केसरी वेसा॥
तासु मध्य छत्तिसगढ़ पावन। पुण्य भूमि सुर मुनि मन भावन॥
रत्नपुरी तिनमें है नायक। काँसी सम सब विधि सुखदायक॥
जोजन पांच तासु ते छाजै। अमर कंठ रेवा तहं राजै॥

दोहा

तीरथ पुन्यारन्य सहं, सुर मुनि करैं निवास।
रत्नपुरी सोहत भले, करै इन्द्र तेहि आस॥

छप्पय

आसपास गिरि कोट ललित उपवन वन सोहै।
विमल तड़ाग अनेक विकच सरसिज अलि मोहै।
फूलो षटरितु फूल फूलि तरु वल्ली राजै।
कीर कोक धुनि धीर कोकिला कलरव छाजै।
नन्दन समान किमु चैत्ररथ वन सोभा नहिं जात कहि।
इमि रत्नपुरी परि सर लसत ताते सोभत होत महि॥
वसो नगर अति विमल मध्य गिरिवर यक सोहै।
रामटेक तिहि नाम देखि सुन नर मुनि मोहै।
तिहि पर सौध विचित्र विमल सब भांति पुण्य घन।
वसत जानकी राम लच्छिमन भरत सत्रुहन।
जिहि दरस सकल कलिमल हरन चरन कलपतरु सरनकी
यह रत्नपुरी सेवहु सुजन सो सकल पतित उद्धरन की॥

दोहा

आज्ञाधारक लसत हैं हनूमन्त बल वीर।
तिनके दरसन तें मिटत दुख दारिद की पीर॥

यह ग्रन्थ सम्वत् १९१० की श्रावण शुक्ल सप्तमी को समाप्त हुआ था।

(२) ब्राह्मण स्तोत्रः— इसमें ब्राह्मणों की प्रशंसा की गई है।

(३) गीत माधव महाकाव्यः— बाबूजी ने इसे जयदेव कवि के गीत गोविन्द काव्य का अनुकरण कर के बनाया है। इसके पद्य बड़े ही सरस हैं। यह ग्रन्थ सम्वत् १९११ में समाप्त हुआ था।

(४-५) नर्मदाष्टक, गंगालहरीः— नाम के अनुसार ग्रन्थों का विषय है।

(६) रामाश्वमेधः—भाषा-पद्य में है। बाबूजी का यह अकेला ही ग्रन्थ है जो छप चुका है। बम्बई के सुप्रसिद्ध सेठ खेमराज श्रीकृष्णदासजी ने रत्नपुर निवासी स्वर्गवासी श्रीयुत मुकुंदसिंह पोद्दार आनरेरी मजिस्ट्रेट के प्रयत्न से इसे छपवाकर प्रकाशित किया है। बड़े आकार के ४३३-पृष्ठों में यह समाप्त हुआ है। इसमें दोहा-चौपाई, सवैया और विविध प्रकार के छन्दों में रामचन्द्रजी के अश्वमेध यज्ञ का वर्णन है। बाबूजी ने इसमें वीररस पूर्ण युद्ध का बड़ाही अच्छा चित्र खींचा है। कुश के कथन का एक उदाहरण सुन लीजिएः—

छोड़ो जी भरोसो तोसो रोष मो बताऊं कपि,
शंकर भयंकर के नाकी नाथ धाता के।
शेष वो गणेश सिंधुरेश वर वेशहू के,
तीन लोक देवगण पन्नगेश दाता के।
दानवादि मानवादि जेते शूरवीर बड़े,
भृगु के प्रचन्ड महिमण्डलेश भ्राता के।
तात के न गात के निचोड़ खोड़ डारौं लोक,
चाहौं तो तुरन्त ही भरोसा पांय माता के॥

हनुमानजी की प्रार्थना से उनके बन्धन काटने के लिए श्रीरामचन्द्रजी दौड़े आये। उस समय का एक कवित्त सुन लीजिएः—

शारद सरोज लोल लोचन विलोल लोल,
कुंडल कपोलन मे कुन्तलालि लोल है।
लोल है निचोल पीत पुष्पक विमान लोल,
चढ़ि के विलोकत विलोल दृग डोल है।
डोलन ललाम लोल ललकन लपन लोल,
अधर प्रवाल लोल श्रमजल कपोल है।
लोल काम ललित कमान ताने भौंह लोल,
भक्त हेतु धायो राम विरुद अमोल है॥

यह ग्रन्थ सम्वत् १९११ में समाप्त हुआ था।

६ ९ ८ १
संवत रस ग्रह अंग ससि वीते अंक प्रमान।
भादों सुक्क गणेश तिथि बुद्धवार सुभखान ॥

इसके अनुसार इसका रचना काल संवत १८९६ के बीतने के बाद जो वर्ष हो वह अर्थात सं० १८९७ होता है। उस समय छत्तीसगढ़ शब्द का प्रयोग बहुत व्यापक और उसका प्रचार ऐसा विस्तृत हो गया था कि उसका उल्लेख काव्य-ग्रंथ में करना कवि को उचित जान पड़ा।

अब हम विक्रम चरित्र से दो चार सुंदर पद्य और उद्धृत करते हैं—

कानन में मकराकृति कुण्डल जो उदयारवि मोटा सा।
मृगमद तिलक भाल बिच सोहै अरु नैनन दुइ जोटा सा॥
जमुना के निरतिर धेनु चरावै लिये लकुटिया सोटा सा।
रूप सांवला सब जग मोहै अजब छोकरा छोटा सा॥

क्या हम इसे खड़ी बोली की ललित रचना नहीं कह सकते?

दोहा

गमन भंग स्वर भंगता गात भंग अति भीति।
मरण चिन्ह येते सबै सो जाचक में रीति॥
सब को सब कुछ देत हो तुम अस भाखत सृष्ट।
ना दर दीन्हों और त्रिय ना रिपु दीन्हों पृष्ट॥

कवित्त

ताल गति परम विचित्र तान गान ताको।
नृत्य की विमलताई देखि सुर मोहे हैं।
किन्नर और किन्नरी विलोकि धन्य धन्य बोले,
खोलि खोलि वदन सक्रोधि मुख जोहे हैं।
धन्य वोह भूमि जहां रहत मुनीस ऐसे,
जासे सुरराज के समाज आज सोहे है।
मूढ़ता हमारी जो विचारे सुरलोक बड़े,
सुख को निधान सब भांति के धरोहे है॥

वसन्त तिलक छन्द

धारा पुरी सकल सम्मति सोभमाना, राजा तहां लसत धीर कृपा निधाना।
श्री भोजराज वसुधाधिप राजधानी, लक्ष्मी निवास बहु धर्म, अधर्म हानी।

भुजंगप्रयात छन्द

येहां सोभमाना पुरी है अवन्ती। बिड़ौजापुरी को मनौ है हसन्ती॥
तहां विक्रमादित्य राजा विराजै। महाधीर पुन्यावली साज साजै॥

तिनके निकट विराजहीं श्री वृद्धेश्वर नाथ।
विश्वनाथ महिमा लसत कहत पुरातन गाथ॥
पुर परिसर दक्षिन असल सिद्धि भूमि सुर धाम।
आदि जोति माया लसत देति सदा मन काम॥
नगर सकल दिसि देव के धाम अमित सुख देत।
जगदम्बा तिहिं मध्य में सोहति कला समेत॥
जेहि ध्यावत विधि विष्णु हर सुरनायक मुनि सेष।
सो माया जगदम्बिका राजत सुखद सुवेस॥

चौबोला छन्द

वसत नगर सोभा की खानि,
चारि वरन निज धर्म निदान।
और कुरी छत्तिस है तहां,
रूप रासि गुन पूरन महा।
अति विस्तार सघन वहु वसे,
रुचि वाजार महल जहं लसे।
अमरावती सरिस पुर सोभा,
देखत परम रम्य सुर लोभा॥

उद्धृतांश में दक्षिण कोसल के अन्तर्गत छत्तीसगढ़ का होना लिखा गया है। दक्षिण कोसल वर्तमान् छत्तीसगढ़ और उसके आसपास के देशों का प्राचीन नाम है। उत्तर कोसल अवध का प्राचीन नाम था। यथाः—

यदुपते, क्व गता मथुरा पुरी
रघुपते, क्व गतोत्तर कोसल:।

इसीलिए इस प्रदेश को दक्षिणकोशल या महाकोशल कहते थे, "जहं हरि ओतु केसरी वेसा" में ओतु का ठीक २ अर्थ नहीं मालूम होता। औतरेऊ या औतु (आवतु) का अर्थ मानें तो यह होता है कि जहां हरि (भगवान) ने केशरी (नृसिंह) वेश (रूप) धारण करके अवतार लिया था।

वर्तमान सम्बलपुर जिलान्तर्गत "बोड़ा सामर" जमींदारी में एक स्थान नृसिंहनाथ नाम का है। वहां पार्वतीय शोभा और जलप्रपात का दृश्य बड़ा ही चित्ताकर्षक एवं शांतिप्रद है। ज्ञात होता है कविवर रेवाराम ने इसी तीर्थ को लक्ष करके ऐसा लिखा है। इस तीर्थ का उल्लेख "खूब तमाशा" के राजशतक प्रकरण में कविवर गोपाल मिश्र ने भी किया है। यथा —

पाप हरन नरसिंह कहि वेलपान गौरीस।
अति पुण्या चित्रोत्पला, तट राजै सिवरीस॥

नृसिंहनाथ का नाम हरिशंकर और पापहरण भी है। अब हमें यह देखना है कि विक्रम चरित्र ग्रन्थ कब लिखा गया था। इस पुस्तक में एक दोहा है—

पुस्तक देखने योग्य है।

(९) दोहावली:—फुटकर दोहों का संग्रह। कुछ दोहे नीचे उद्धृत किये जाते हैं:—

रेवा सठ संगति मिले होहि कुपथ की आस।
किये मिताई काक से हंसहु चाहत मॉस॥

रेवा हरिपद कमल तजि करहु न खल के संग।
कज्जल कुटी निवास तै लगै स्यामता अंग॥

रेवा खल भल सीखते उठे हृदय में दाह।
जैसे छींचत वारि के भभकै सघृत कराह॥

रेवा सठ भल सीख तें तजे न कुमति विकार।
जैसे धोये दूध तें मीठो होत न खार॥

रेवा सुमति न तजत खल जदपि मिले सतसंग।
चन्दन तरु सेवत सदा विष नहिं तजत भुजंग॥

रेवा सज्जनता कहा जो चाहत खल संग।
कहा भवन के सुभगता जो तो बसत भुजंग॥

होनो है सो होइगे जो रचि राखे राम।
वृथा भरनि भटकत कहा रे मन रेवाराम॥

दई दई से मिलहिगो नई न होवन हार।
बई बई सो फलहिगो तीतो मीठो डार॥

चढ़ अधम तो का भयो कबहुं न गहिये बांह।
लगै न कारज पथिक के ज्यों खजूर की छांह॥

एक राम सब मों रम्यो रेवा करहु विचार।
ज्यों सविता प्रतिबिम्ब बहु पूरो कुम्भ अपार॥

(१०) माता के भजन:—यह कहना ही नहीं होगा कि अधिकांश हिन्दू, माता का निकलना देवीजी की कोप या कृपा का फल समझते हैं। छत्तीसगढ़ में जिस मनुष्य को माता निकलती है, जब तक वह आराम नहीं हो जाता, बड़ी पूज्य दृष्टि से देखा जाता है। लोग उसके आराम होते तक रोज उसके घर रात को जाते हैं और भजन गाकर बरुआ (जिसको माता निकलती है वह बरुआ कहलाता है) की सेवा करते हैं। वह पोथी जिसमें इन भजनों का संग्रह रहता है माता का गुटका कहलाती है। रत्नपुर में जो गुटका प्रचलित है उसमें बीसों कवि के पद हैं, फिर भी इसके अधिकांश पद हमारे बाबूजी के रचे हुए हैं। कहना नहीं होगा, बाबूजी की अन्य कविताओं के समान ये पद भी परम मनोहर हैं। नीचे एक ऐसा ही पद दिया जाता है जिसमें पद ऋतु के साथ ही साथ अनुप्रास का भी अच्छा आनन्द आता है—

तहां अष्ट पद्मादि विद्या विनीता। वसै भूप गोष्ठी लसै पुण्य गीता ॥
सदा नीति विद्योतमाना सुधर्मा। मनो देह धारे लसै धर्म कर्मा ॥

आज की प्रभात आली री जसोदा गेह,
नेह भर लीन्हों बालकृष्ण को हिये लगाइ।
पोंछि पुचकर अच्छे ओट करि आंचर की,
हसन विलोकों वो मल्हावों धरि गाइ गाइ।
किलकि कलोल कर बोल भरि आनन में,
लोचन विलोकि छवि छाकी सुख पाइ पाइ।
कैसे कहि जात बैन नैन बिन नैन बैन,
रेवा हरखाइ रहो गूंगा गुर खाइ खाइ॥ (क. १०)

विक्रम चरित के २१ वें कथानक में श्रीक्षेत्र जगन्नाथपुरी की रथ यात्रा आदि दृश्यका सुन्दर वर्णन है। ज्ञात होता है–रेवारामजी ने पुरी धाम की यात्रा करके उसका आंखों देखा वर्णन किया है। रत्नपुर से जगन्नाथपुरी बहुत दूर भी नहीं। इस वर्णन के यहां केवल दो कवित्त दिये जाते हैं:—

चन्दन तड़ाग नीर देखि ताप दूर होत मारकंडे विमल विलोकि सुख पूरे हैं।
धन्य धन्य सो है चक्र तीरथ पुनीत जहं परसुराम कीन्हें तप पाइ काम भूरे हैं।
और हूं अमित तहं तीरथ निवास करैं बटे कृष्ण भक्ति मुक्ति देत फल रूरे हैं।
ऐसे पुरुषोत्तम के छेत्र तीर वारिधि के नीलगिरि शिखर विलोकि अघ दूरे हैं॥

हरित भरित रथ चलति सवेग कहुं कहुं अड़ि रहत कतहुं नहिं सरके।
जय जय कहत फिरत गजपति नृप पूजन करत बहु पहर पहर के।
फिरि कहुं चलति सघन धन धुनि करि सक पक कुलम बराह डाढ़ कर के।
बाजत निसान कहुं घण्ट ठहनात कहुं जय हलधर जय हरि हलधर के॥

(८) रत्न परीक्षा (रत्न प्रदीप):—बाबूजी ने इसे व्यास, बाड़वाचार्य, मुनि भल्लूक और अन्य मुनिवरों के ग्रन्थों के आधार पर दोहा, चौपाई, छप्पय आदि छन्दों में लिखा है। इसमें रत्नों के प्रकार, भेद, दोष, मिलने का स्थान आदि बातों का वर्णन बड़ी उत्तम रीति से सरस पदों में किया गया है। यथा—

दोहा

पद्मराग वर्णन— रुचि चकोर खंजन नयन अगिन जोत सम भास।
लाल कमल कदली कुसुम पल्लव सहित प्रकास॥

विन्ध्या कर महि ते जनम भौम देव ते होइ।
मंगल ग्रह के दोष हर मंगल प्रद मणि सोइ॥

क्षत्रि वर्ण सो रत्न है स्वच्छ कांति सुखमूल।
कतहुं श्यामतायुक्त जो ताको लेहु न भूल॥

(१३) रत्नपुर का इतिहास:—यह भी गद्य में है। हैहय वंशी राजाओं के समय का भी इसमें वृत्तांत है किन्तु यह अधूरा है। उपर्युक्त ग्रन्थों के सिवाय बाबूजी के बनाये हुए और भी कई ग्रन्थ हैं परन्तु उनका पता हमें नहीं लगा।

भगवान जाने रत्नगर्भा रत्नपुर नगरी में बाबू रेवारामजी के सदृश प्रतिभाशाली कवि और लेखक अब कब जन्म लेते हैं ?

रत्नपुर के प्रति



(रचयिता—साहित्य विशारद पं० सरयूप्रसाद त्रिपाठी, एम. ए., मधुकर)

(१)

ओ रत्नपुर, तुम किस चिन्ता में हो निमग्न ?
क्यों हुए निपट उत्साहहीन, शुभ आशाएं क्या हुईं भग्न ?
ओ, कर्मठ योगी बोलो तो, आज तुम्हारा कहां ध्यान ?
भग्नावशेष गा रहे सतत हैं, चिर अतीत के विरह गान ॥

(२)

क्या अपने बीते वैभव की है तुम्हें आज फिर सुध आई ?
जिससे कातर तुम हुए हाय ! सहसा आंखें हैं भर आईं ॥
रह रह उसास क्यों लेते हो, क्यों सदा प्रफुल्लित वदन म्लान ?
यह कैसा अद्भुत परिवर्तन, यह कैसा दुखमय विहान !

(३)

री, रामटेकरी, बतला दे, वे तेरे सीता-राम कहां ?
भैरव रखवाली क्या करते, जब बिगड़ा सारा काम यहां ?
नृप मोरध्वज की नगरी का, हे हर ! आज दयनीय हाल !
कलचुरियों, हैहयवंशी, मरहट्ठों का सुन्दर राज्य काल ॥

(४)

ओ छत्तीसगढ़ के रत्न, आज तुम रजकण में असहाय सने।
कटु काल-चक्र में पड़कर हा ! गुदड़ी के मानो लाल बने ॥
सब नगरों में थे अग्रगण्य, यश छाया था क्षिति छोर छोर।
नृपगण भी उत्सुक रहते थे, पाने को अविकल कृपा कोर ॥

(५)

तुम रहो सखे ! कैसे भी पर, पाओगे संतत उच्च स्थान।
क्या धूल धूसरित हीरा भी, पाता न जगत में मान-दान ?
जो चक्र-भाग है नीचे वह, आवेगा ऊपर निश्चय ही।
जो तिमराच्छन्न पड़ा सम्प्रति, होगा प्रकाशमय निश्चय ही ॥

मैया मनि मंदिर भासित आसन मोद हो माय,
बसत बसंत बाग बन कुसमित कोयल बोलत मंद ।
सारी सरत सुहात सुभग तन चन्दन चर्चित अंग ॥
ग्रीष्म ग्रीवा शिवा सुखमा कर गज मनि माल विराजे ।
कलित कमल कर कंकन कंचन कांची सुन्दर साजे ॥
पावस पवन मंद परमानंद गज गामिनि सुखकंद ।
छमक छमक पग जेवर विछिया बाजत तनु नव छंद ॥
सरद चन्द निंदक मुख सुंदर झलकत कुण्डल गंड ।
जन मन रंजन मंजन माया सुंभ निसुंभ प्रचण्ड ॥
हिमि हिसालु लता विस्फोटक नासन विरद तुम्हारे ।
कर जोरे युग वरुआ विनवे चितवो करुना कारे ॥
सिसिर सिन्धु सीतल मह माया सिंहासन पर सोहै ।
जुगुल पानि कर सम्पुट सुरपति दिन प्रति भृकुटी जोहै ॥

इस गुटका के अधिकांश पद ऐसे ललित हैं जिसका वर्णन नहीं हो सकता। जगन्नाथ प्रेस, विलासपुर से यह गुटका प्रकाशित हो चुका है।

(११) कृष्ण लीला के गीतः— रत्नपुर और इसके आसपास के देहातों में गणेशोत्सव के समय बाबूजी के बनाये हुए इन्हीं गीतों के द्वारा कृष्ण लीला की जाती है। इसके पद भी परम ललित और भाव पूर्ण हैं। कोई २ पद तो सूरदास जी के पद से टक्कर खाते हैं। यथाः—

सोरठ

राधा भाव भरे अनखात ।
स्यामहु अनखि और कुंजन में बैठे जाइ सुहात ॥
लोचन सील संकोच न छांड़त नींद भरे जमुहात ।
जैसे सुधा जलधि में पंकज परत वारद विधु हाथ ॥
सांचत सलिल निचोहैं चितवन सुमरि प्रेम बिलखात ।
सरद चन्द्र ज्यों मुदित कंज पर बिलसत अस पछतात ॥
प्रेम प्रीति की रीति अटपटी जाने सोइ समुहात ।
समीपत्र में जुगल बैठि जनु सोवत बैठे खात ॥
निरखि इतै महरानी राधा विकल भई सब गात ।
स्याम मनावन सखियां भेजीं रेचा हरपत जात ॥

(१२) लोक-लावण्य-वृत्तान्तः— यह गद्य में हैं और तीन भागों में है। इसमें सृष्टि कब पैदा हुई, कैसे पैदा हुई, उसके कितने खण्ड हैं, इत्यादि बातें विस्तार पूर्वक शास्त्र पुराणादि से छांट कर लिखी गई हैं। विलासपुर के एकस्ट्रा असिस्टेंट कमिश्नर बीरू बाबू की आज्ञानुसार इसकी रचना की गई थी। और तत्कालीन चीफ कमिश्नर सा० बहादुर को यह समर्पण किया गया था। इस ग्रंथ के ऊपर जून सन् १८६८ लिखा है।

३

पाकर भी नव-निधि जीवन में
मन भर क्या उपभोग किया है?
खोई-सी द्वापर के युग-सी
तन में तूने योग लिया है?

४

करुणा भरी कहानी में ले-
मौन कंठ की सूखी वाणी,
सब कहते हैं-' याद करोगी '-
किस वैभव की थी तू रानी?

५

जाने कितनी छिपीं तुम्हारे—
कण-कण में हैं दर्द कहानी?
कितने लुटे हुए मानस के—
तुझ में सूखे दृग के पानी?

६

और तुम्हारे शून्य भाल पर
है किसकी स्मृति की रेखा?
कितने सपनों की दुनिया का,
आज छिपाये बैठी लेखा?

७

तू उस कलचुरि हैहय की वह
अलकापुर-सी रत्नपुरी थी!
जिसकी चारों ओर प्रशंसा—
की बजती नित मधुर तुरी थी।

८

तू चारों युग की रानी बन
चतुयुर्गी की उपमा पाई!
मणिपुर, माणिकपुर, हीरापुर—
रत्नपुरी कलियुग कहलाई!

९

अरी! यहीं तेरे प्राङ्गण में—
वह शिव का मन्दिर सुन्दर सा।
जिसमें नाना रत्न राशि से—
भूषित वह था अजर-अमर सा।

१०

यहीं मयुरध्वज राजा का—
छिपा हुआ इतिहास यथा है।
अर्जुन कृष्ण बने ये भिक्षुक
कृष्णार्जुन की एक कथा है।

११

यहीं विश्व का सबसे पहले
विद्या का स्थान रहा है।
यहां अनेकों देश देश का
पाता विद्या-ज्ञान रहा है।

१२

यहां न जाने ललित कला का
कितना वह विस्तार रहा है।
यहां अनेकों यज्ञादिक का—
बनता नव-संसार रहा है।

१३

अरी! इसी जीवन में तेरे—
एक झलक सुरपुर की आई।
पृथ्वी देव भूप से स्वर्णिम—
युग, सौभाग्य, सौख्यदा पाई।

१४

तेरे उस नूतन प्रकाश में
भारत का गौरव जग-मग था।
तेरे सन्मुख इतर विश्व के
नीति धर्म का पग डग मग था।

१५

तू कलचुरि हैहय का गौरव
अब भी निशि दिन बतलाती है।
सत्यं शिवं सुन्दरम् का ही—
प्रति क्षण यहां गीत गाती है।

१६

तू चुप है तो क्या?—पर तेरी
उड़ती धूल जगत से कहती!
क्या थी? क्या हूँ? क्या कहने को
और कहानी बाकी रहती?

कविवर बाबू रेवारामजी का वसन्त-वर्णन



(राग-वसन्त)

गायति युवति जनोऽपि निकुञ्जे, समुदित मदन विलास वने।
चिर मुखरित कोकिल पुंजे, गायति० ....॥
विकसित कुसुम विविध लतिका भर, विलसित विटपि कलापे।
स्मर चतुरंग चमू निर्वासित इव, कलित शिलीमुख चापे॥
त्रिविध समीर चलित नव किसलय, पूरित कोकिल नादे।
प्रणिधि समागम विजय परिप दनु, मन्त्र कृतानक वादे॥
केतक निकर लसित हरिदञ्चित, किंशुक पुष्प विताने।
कुन्तक कर परि रक्षित भूपति, लोहित वसन पिधाने॥
यमुना भुवन विभूति तमाल, पलाश तमिस्र विकासे।
मदवदनेप घटित रुचाविव, केकि सुभट रव भासे॥
सरस रसाल कुसुम सुरभी कृत, वन भुवि गलित मधू के।
माधव विपणि पणित विभवेऽनु, विमोहित दिविज वधू के॥
विलसित मत्त मयूर चलित नव, केसर कुसुम समूहे।
समर सयान विघान कलाप, वलित वर हेम मदूहे॥
पुलकित विटुल निकुञ्ज विकच सम, मञ्जुल वञ्जुल शोभे।
लोचित शोभित हृदय सुरति रस, संचित युवजन लोभे॥
द्विजगण कलरव पणित विविध, धरणी रुह सफलित नीये।
भणति जगत तनये समुदयति स, वन सुख संकुल दीये॥

रत्नपुरी



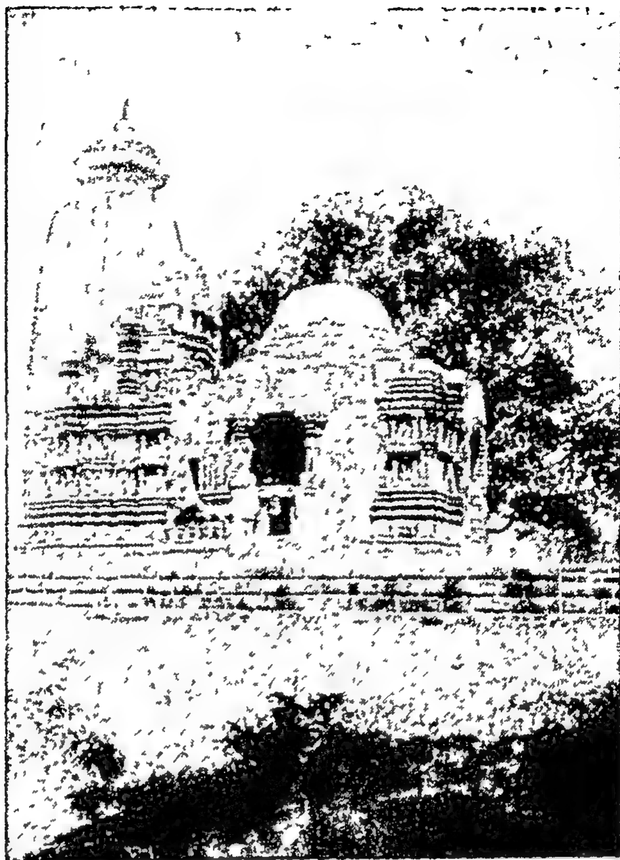
(रचयिता—पं० केदारनाथ झा 'चन्द्र')

१

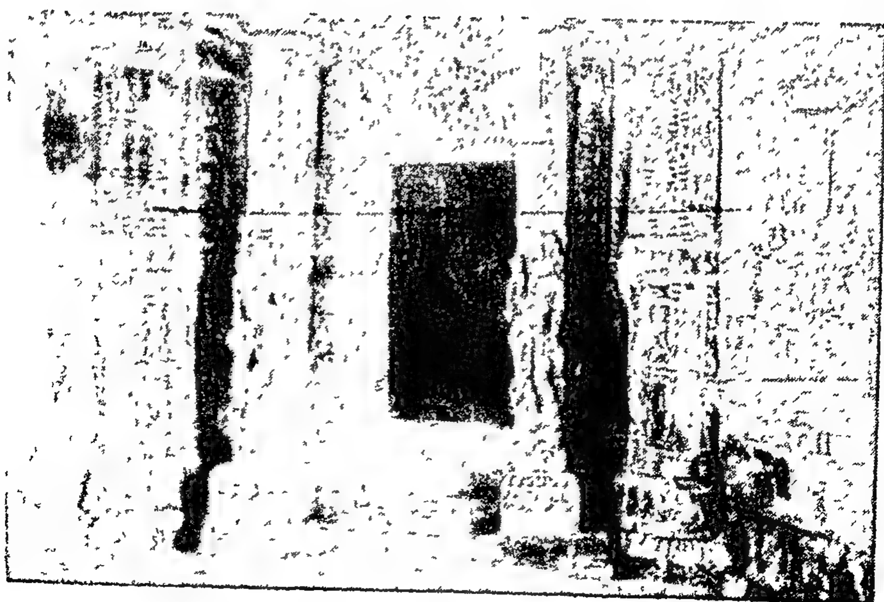
ओ रत्नपुरी! तू भग्न-खंडहर!
क्या अपना परिचय कुछ जाना?
कितना सुख, कितनी कुछ पीड़ा,
कैसा वैभव? यह पहिचाना?

२

क्या कुछ अनुभव कर पाया है,
सदियों के सूने जीवन में?
बोलो, वे मीठी आशायें-
नाच रहीं क्या अब भी मन में?



पाली का शिवमन्दिर



पाली मन्दिर का गर्भ—गृह

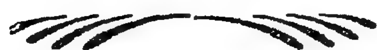
जाजल्लदेव ने इस मंदिर का निर्माण कराया था तब समझना होगा कि इसका निर्माण ग्यारहवीं शताब्दी (ईस्वी) के अंत अंत में हुआ होगा।

परन्तु यह मंदिर इससे भी प्राचीन है। इसका प्रमाण यह है—मंदिर के गर्भ-गृह के द्वार की गणेशपट्टी पर अत्यन्त बारीक अक्षरों में खुदा हुआ एक लेख है जिसपर सामान्यतः लोगों की दृष्टि नहीं पड़ती। इस लेख का आशय यह है कि महामण्डलेश्वर मल्लदेव के पुत्र विक्रमादित्य ने यह देवालय-निर्माण रूपी कीर्तिदायक काम किया। इस लेख को डा० देवदत्त जी भांडारकर ने चालीस वर्ष पहिले पढ़ा था। उस समय जो लेख उपलब्ध थे उन पर से उन्हें ज्ञात था कि बाणवंश में विक्रमादित्य नामक राजा हो गये हैं। उन्होंने यह भी अटकल लगाया था कि संभवतः यह विक्रमादित्य बाणवंशी ही होगा पर उस समय वे यह नहीं जान पाये थे कि विक्रमादित्य हुए कब थे? उस समय से अबतक बाणवंशी राजाओं से सम्बन्ध रखनेवाले अनेक लेख प्रकाशित हो चुके हैं जिनसे यह ज्ञात होता है कि बाणवंश में विक्रमादित्य उपाधिधारी तीन राजा हो चुके हैं। उनमें से प्रथम विक्रमादित्य, जिसे जयमेरु भी कहते थे, मल्लदेव का पुत्र था। पाली के मंदिर वाले लेख में भी विक्रमादित्य को महामण्डलेश्वर मल्लदेव का पुत्र बताया गया है, अतएव यह मान लेने में हर्ज नहीं है कि ये दोनों विक्रमादित्य एक ही थे। इस विक्रमादित्य का अभी कोई और लेख नहीं मिला है पर उसके पुत्र विजयादित्य उर्फ प्रभुमेरु के सम्बन्ध में जो शिलालेख प्राप्त हुए हैं उनका सम्बन्ध शके ८२० (सन ८९८-९९) से शके ८३१ (सन ९०९-१०) तक है। इस से यह पता लगता है कि इस विक्रमादित्य (जयमेरु) ने सन् ८७० से ८९५ तक राज्य किया था और इसी ने पाली के इस शिवमंदिर का भी निर्माण कराया था।

इस विक्रमादित्य ने जब इतने सुन्दर नक्काशीदार मंदिर का पाली में निर्माण कराया था तब इसका अर्थ यह हुआ कि उस समय यह इस प्रान्त पर राज्य-शासन भी करता था। ईसा की सातवी शताब्दी में, छत्तीसगढ़ में, सोमवंशियों का राज्य था। ऐसा जान पड़ता है कि सन् ९०० के लगभग त्रिपुरी के कलचुरी राजा मुग्धतुंग प्रसिद्धधवल ने कोसलाधिपति से पाली देश जीत लिया था। छत्तीसगढ़ का अष्टम और नवम शताब्दी का इतिहास अभी भी अंधेरे में है। फिर भी यह अनुमान किया जा सकता है कि इस काल में इस बाणवंशी राजा प्रथम विक्रमादित्य ने कोसल देश पर अधिकार कर कुछ काल तक यहां राज्य भी किया था।

ये बाणवंशी राजा गण मूलतः उत्तर अर्काट प्रान्त के निवासी थे। वहां प्राप्त हुए तामील लेखों में उस देश का "पेरुम्बानप्पाड़ी" नाम उल्लेखित है। इसका विस्तार पश्चिम में पुंगनूर से लगाकर पूर्व में कालहस्ति तक था। ऐतिहासिकों का अनुमान है कि इसके भी उत्तर तेलगू प्रान्त में इसका राज्य विस्तार रहा होगा और फिर वहां से बाण राजाओं ने उत्तर की ओर बढ़ते बढ़ते

पाली का शिव-मंदिर



(लेखक—महामहोपाध्याय वा. वि. मिराशी, एम, ए., प्रिंसिपाल मॉरिस कॉलेज, नागपुर)

रत्नपुर के उत्तर दिशा में पाली नामक एक गांव है। वहां भगवान् शंकर का एक अतीव सुन्दर और प्राचीन मंदिर है। (इस मंदिर के दो चित्र इस ग्रन्थ में प्रकाशित किये जा रहे हैं) यह मंदिर छत्तीसगढ़ के मंदिरों में अत्यन्त प्राचीन है। मंदिर के बाहरी भाग, भीतर सभा मण्डप और गर्भ-गृह के द्वार पर खुदाव का इतना अधिक सुन्दर और दर्शनीय काम किया गया है जिन्हें देखकर आबू पर्वत के जैन-मंदिरों पर किये गये जालीदार खुदाव का बरबस स्मरण हो आता है। इस सम्बन्ध में बिलासपुर जिले के प्रथम सेटलमेंट आफिसर मि० चीज़मने (Chisolm) अपनी रिपोर्ट में एक स्थल पर लिखा है—" इस मंदिर का अवशिष्ट भाग अर्थात गर्भगृह का सभामण्डप, अष्ट-कोण गुम्बज़दार है। सभा मण्डप में प्रवेश करते ही, नीचे से लगातार ऊपरतक खुदाव का जो बारीक काम किया गया है उसे देखकर मन आश्चर्य से थकित हो जाता है। सभा मण्डप का गुम्बज़ जिन खंभोंपर स्थित है उन पर हिन्दू पुराणों और काव्यों में वर्णित प्रसिद्ध व्यक्तियों की आकृतियां खचित की गई हैं। गुम्बज़ के सबसे निचले भाग के वर्तुलाकृत थर में अत्यन्त विचित्र आकृतियां लकीरों में बनाई गई हैं। सबसे उत्तम और परिश्रमपूर्वक खुदाव का काम गर्भ-गृह के द्वार पर किया गया है। यह खुदाव अत्यन्त बारीक है और इसके खोदने में बड़ी कुशलता दिखाई गई है।" पर इस शब्द-चित्रसे मंदिर के सौन्दर्य का ठीक ठीक अनुमान नहीं हो सकता। अतः इसे स्वयं देखकर संतोष-लाभ करना उचित होगा।

अब यह प्रश्न सहज ही उपस्थित होता है कि इस मंदिर का निर्माण किसने किया था ? मंदिर में तीन चार स्थानों पर " श्रीमज्जाजल्लदेवस्य कीर्तिरियम् " खुदा हुआ है, इससे साधारणतः यह अनुमान लगाया जाता है कि इसे कलचुरीवंशी राजा जाजल्लदेव ने बनवाया था। रत्नपुर के कलचुरी वंश में जाजल्लदेव नामक दो राजा हो गये हैं। इनमें से प्रथम जाजल्लदेव महाप्रतापी था। अनुमानतः इसका राजत्वकाल सन् १०९५ से ११२० तक रहा। ऊपर जिन शब्दों के खोदे जाने का उल्लेख किया गया है, उनके अक्षरों की बनावट से यह जान पड़ता है कि इन्हें प्रथम जाजल्लदेव ने ही खुदवाया होगा। सो यदि इसी

रत्न-विलास सरोवर [खूँटाघाट]



(रचयिता—पं. लोचन प्रसाद पाण्डेय)

'रत्न-विलास' जलाशय सुखमा-सार,
द्वीप-पुंज, वन-कुंज, विहग-गुंजार।
गिरि-माला-परिचुंबित वायु विलास,
शिखर-विमंडित गिरि-पथ-पथिक निवास।
हरित-भरित कृषि फल दायक अनुकूल,
देश-जाति-धन-कृषिबल जीवन-मूल।
सुधा-रूप वसुधा प्रति, सुरस-समास,
सर विलासपुर-मुकुट सु-'रत्न-विलास'॥

दोहा

रत्नपुरी--छवि माधुरी, विलसत जहँ स-विलास,
यह विलासपुर-रत्ननिधि, कृषि बल रत्न विलास।
निरखि जासु छवि लहत नित, सुकवि चित्रकर मोद।
'रत्नविलास' कला--सदन गिरि-वन-नीर-विनोद।
चारु रत्नपुर चारुता सर, गिरि, शृंग-निवास।
द्वीप पुंज, हर-सदन-युत, सरवर 'रत्नविलास'।



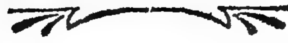
बिलासपुर जिले में अपना राज्य स्थापित किया होगा। मद्रास जिले के उदयेंदिरम् नामक स्थान में एक ताम्रपत्र मिला है जिसमें 'नन्दिवर्मन्' का उल्लेख है। आज तक जितने बाणवंशी राजाओं का पता लगा है उनमें यह नन्दिवर्मन् सबसे प्राचीन है। इसके प्रपौत्र प्रथम विक्रमादित्य (जयमेरु) का राजत्वकाल सन् ८७० से ८९५ तक था। इस हिसाब से नन्दिवर्मन का समय सन् ८०० के लगभग आता है। इसने या इसके पिता ने कोसल देश पर चढ़ाई कर यहां अपना राज्य स्थापित किया था। तीन चार पीढ़ी तक ये यहां जमे रहे। पश्चात् कलचुरियों का राज्य हो गया जैसा कि ऊपर बतलाया जा चुका है।

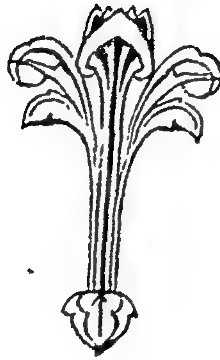
अब यह शंका उत्पन्न होती है कि यदि इस बाणवंशी राजा विक्रमादित्य ने पाली के मन्दिर का निर्माण कराया तब कलचुरीवंशी राजा जाजल्लदेव का लेख वहां तीन चार स्थानों पर कैसे खुदा हुआ पाया जाता है? इसका उत्तर यह है कि इस मन्दिर का जीर्णोद्धार जाजल्लदेव के समय में हुआ था और ये लेख इसी बात के द्योतक हैं। मि० कजिन्स ने चालीस वर्ष पहिले इस मन्दिर का अवलोकन किया था। वे लिखते हैं कि "इस मन्दिर का सभा-मण्डप पहिले चतुष्कोण था। पश्चात् ऊपर के गुम्बज को सहारा देने के लिए चार कोनों में चार आड़ी दीवालें बनाई गईं जिनके कारण अब यह अष्टकोण दृष्टिगोचर होता है। इसी प्रकार गर्भ गृह के सामने दो नये स्तंभ हैं, जिन पर नक्काशी का काम उतना अधिक नहीं है जितना सभा मण्डप के अन्य स्तंभों पर हैं। ये स्तंभ ऊपर छत की टूटी हुई मयाल को सहारा देने के लिए बनाये गये हैं। इसके सिवाय सभामण्डप का एक दरवाजा भी पीछे बना हुआ जान पड़ता है। विशेष ध्यान देने योग्य बात यह है कि जीर्णोद्धार करते समय जितने नये काम बनाये गये, उदाहरणार्थ नई आड़ी दीवालें, गर्भ-गृह के सन्मुख नये खंभे, सभामण्डप का नया द्वार, केवल उन्हीं पर जाजल्लदेव सम्बन्धी लेख खुदे हुए पाये जाते हैं। इन सब बातों से यह स्पष्ट प्रकट होता है कि प्रथम जाजल्लदेव ने इस मन्दिर का निर्माण नहीं प्रत्युत जीर्णोद्धार कराया था। मन्दिर-निर्माण-काल के करीब दो सौ वर्ष पश्चात् जीर्णोद्धार की आवश्यकता प्रतीत होना कोई आश्चर्य की बात भी नहीं है।

उपर्युक्त विवेचन से यह सिद्ध होता है कि पाली के इस सुन्दर और नक्काशीदार दर्शनीय शिव-मन्दिर को बाणवंशी प्रथम विक्रमादित्य (उर्फ जयमेरु) ने नवीं शताब्दी (ईस्वी) के अन्त में निर्माण कराया था। इस प्रकार यह मन्दिर एक हज़ार वर्ष से भी अधिक प्राचीन है।



यज्ञ-खण्ड





यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः ।
तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्त सङ्गःसमाचार ॥

देवधाम किला और ललाम धौल धाम रहे,
वाटिका तड़ाग-नर नारि प्रजा ज्ञानी थी।
प्रांत में प्रधान पुर पूर्ण धनी मानी रहा,
सत्य सती नारियों से भरी राजधानी थी॥

द्वै सहस्र सम्वत् को कोटि धन्यवाद आज,
आभा सत्य युग की प्रजा में देखरानी है।
धन्य धन्य धर्मवान सकल सुजान धन्य,
धन्य धनवान धन देय बने दानी है।
सुजन-उदारन की सुमति विकास भये,
रत्नपुर भूमि विष्णु यज्ञ जिनि ठानी है।
कथा औ पुरान कल गान वेद पंडितों के,
'कवि लाल' धर्म की पताका फहरानी है॥

———



रत्नपुर और श्रीविष्णु महायज्ञ



(रचयिता—महामहोपाध्याय, साहित्य-वाचस्पति,
रायबहादुर श्री जगन्नाथप्रसाद "भानु")

(१)

वृद्धेश्वर शिवधाम, परम प्राचीन विराजत।
मंदिर विमल विशाल, रामगिरि ऊपर छाजत।
महामाय शुभ थान, किला जगदीश सुहाये।
हनुमत गिरजावन्ध, सीम भैरव छवि छाये।
पुर सुर भजन प्रभाव नर, विघन कोटि पावत विजय।
तहं पावन मख-विष्णु रचि, "भानु" होइ कल्याणमय॥

रतनपूर प्राचीन, भूप क्षत्री रजधानी।
परिवर्तित बहुकाल, विजय भौंसले प्रमानी।
विद्या, धन, गुण, साज काज शुभ मंगल खानी।
भक्ति, प्रेम, सत, नेम, ध्वजा शुचि यश फहरानी।
"भानु" धन्य पुर सुजन मति, सोन, सुगंध उपमा विमल।
विष्णु महा शुभ यज्ञ रचि, लही कीर्ति जग में अटल॥

सुख सम्पति मिलि जात, मिलत भोजन रुचि, जानी।
शीलवन्त सब नारि मिलत प्रतिभा यश खानी।
धवल धाय मिलि जात, होत विद्युत उजियारी।
मिलत भूरि गज वाजि, मिलत प्रभुता अधिकारी।
विद्या बल अरु ज्ञान ते, लहै मनुज भवभय विजय।
"भानु" कीर्ति मिल तबहिं जय, राम होय प्रेरक हृदय॥

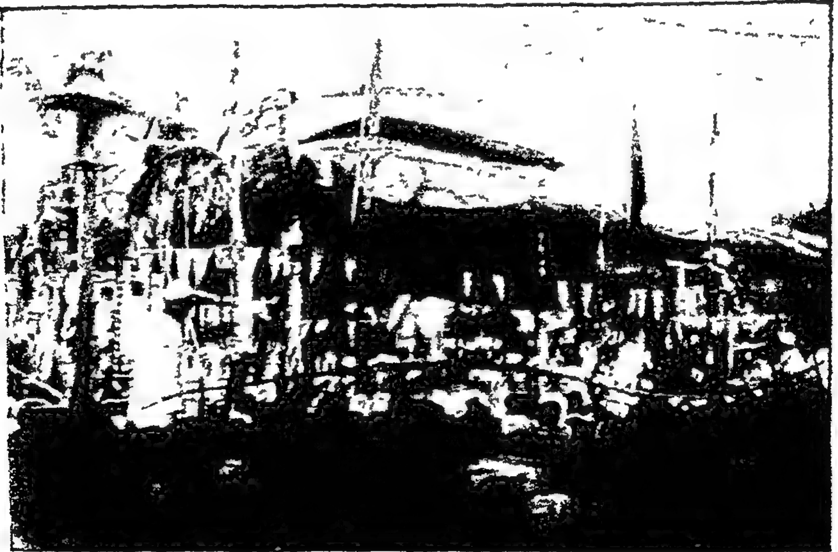
(२)

(रचयिता—धर्ममनीषी पं० पुत्तीलाल शुक्ल 'लाल')

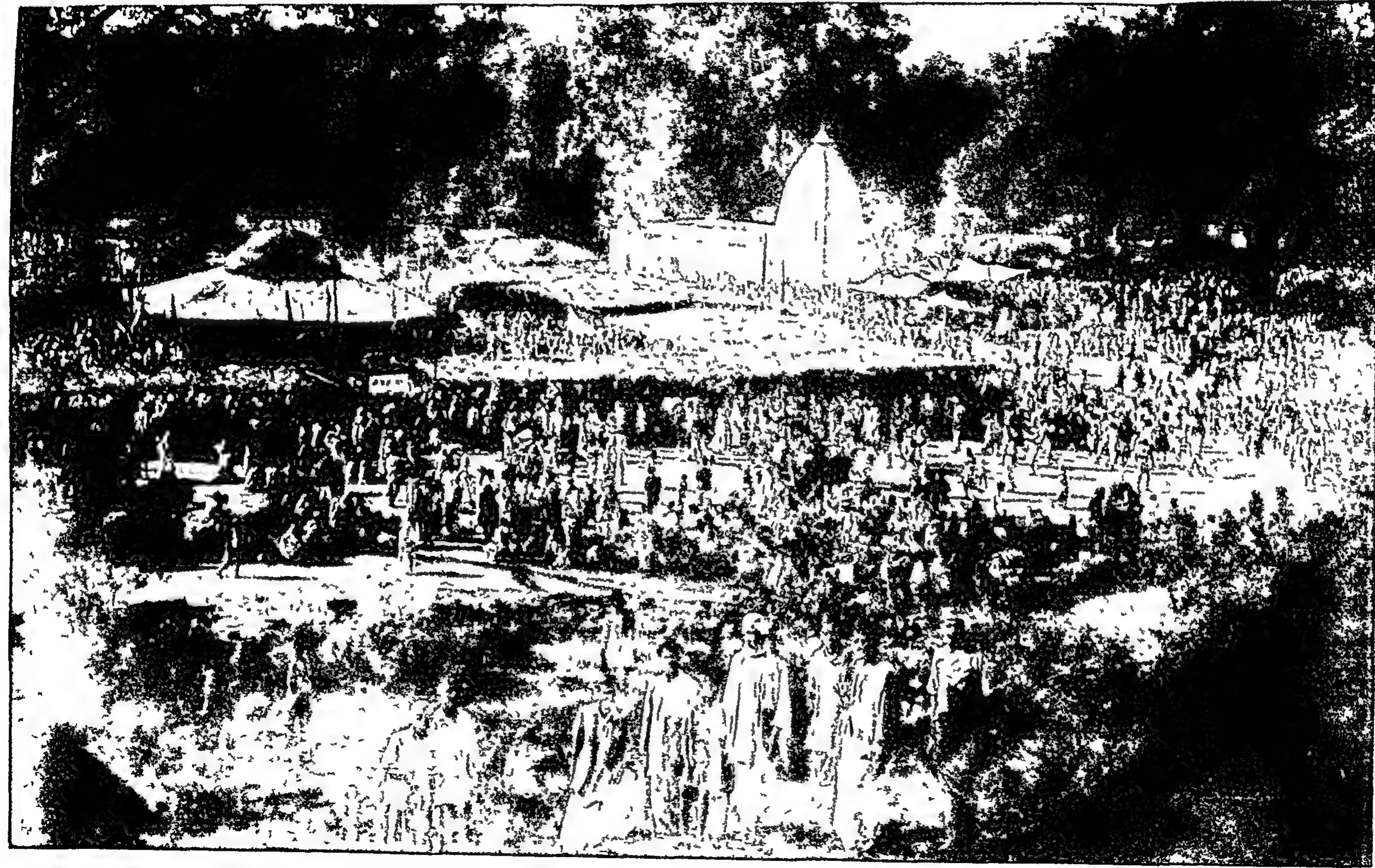
देखा इतिहास साम्राज्य वीर क्षत्रियों का,
सैन्य-बल साज राजनीति सुख खानी थी।
बीता कुछ काल राजगोंड़न की सत्ता गये,
धीर वीर भौंसलों की विजै कीर्ति मानी थी।



श्री विष्णु महायज्ञ–शाला रत्नपुर का प्रवेश द्वार



श्री विष्णु महायज्ञ–शाला, रत्नपुर



श्री विष्णु महायज्ञ रत्नपुर का आंशिक दृश्य

यह प्रस्ताव भी स्वीकृत किया गया कि इस विक्रमोत्सव के स्मरणार्थ श्री विष्णु महायज्ञ-स्मारक-ग्रन्थ प्रकाशित किया जाय जिसमें महाराज विक्रमादित्य संबंधी लेख और कविताएं हों; धार्मिक लेख हों; महाकोसल, छत्तीसगढ़ और रत्नपुर का इतिहास और तत्संबंधी कविताएं हों; महोत्सव का विवरण और उसके आय-व्यय का जांच किया हुआ हिसाब हो, ऐतिहासिक स्थानों, यज्ञ संबंधी दृश्य तथा २००) और उससे अधिक चन्दा या दान देनेवालों, पंडितों और कार्यकर्ताओं के चित्र हों, आदि।

यह भी निश्चय हुआ कि ऊपर लिखी समस्त बातों से संयुक्त विज्ञापन छपाया जाय जिसमें पूज्य आचार्य महोदय का भी परिचय दिया जाय तथा जनता से इस शुभ कार्य में द्रव्य और योग दान देने के लिए अपील की जाय। इस अपील की प्रतिलिपि पाठक परिशिष्ट में पावेंगे। इस अपील से तथा सिनेमा के द्वारा विज्ञापन से बिलासपुर, रायपुर, तथा दुर्ग जिले में खूब प्रचार हुआ। अंग्रेजी और हिन्दी पत्रों में भी उत्सव संबंधी सूचनाएँ समय समय पर प्रकाशित होती रहीं।

आचार्य—

श्रीविष्णु महायज्ञ के आचार्य पद का गुरुतर भार ग्रहण करने के लिए काशी के प्रकाण्ड विद्वान, गवर्नमेंट क्वीन्स संस्कृत कालेज के प्रोफेसर, जयपुर राजकीय भूतपूर्व कथाभट्ट, श्रौतस्मार्त कर्म-काण्ड पारीण, धर्मरत्न, वैदिकभूषण पण्डित श्री भगवत्प्रसाद शर्मा मिश्र वेदाचार्य से प्रार्थना की गई जिसे उन्होंने कृपापूर्वक सहर्ष स्वीकार कर लिया।

आचार्य महोदय का यहां संक्षिप्त परिचय दे देना अप्रसंगिक न समझा जावेगा। आचार्यजी सन् १९२८ से क्वीन्स संस्कृत कालेज बनारस में वेदाध्यक्ष का कार्य कर रहे हैं। इसके पहले आप जयपुर राज्य (राजपुताना) के महाराजा-संस्कृत कालेज में इसी पद पर आसीन थे। आज दिन आपके शिष्य प्रायः सभी प्रांतों में फैले हुए हैं और वेदाध्यायन का पवित्र कार्य कर रहे हैं। जयपुर, बीकानेर, अमावा, टिकारी, सेहरा (बिहार), मयूरगंज आदि कई राज्यों से आपका सम्मानीय सम्बन्ध है। देश के प्रतिष्ठित सेठ साहूकारों में भी आपकी बड़ी प्रतिष्ठा है। आप काशी के सर्व प्रसिद्ध विशिष्ट कर्म-काण्डी हैं। हिन्दू विश्वविद्यालय, जयपुर राज्य, उड़ीसा, बिहार और बंगाल के अनेक शिक्षण संस्थाओं ने आपको उच्च मौखिक तथा लेखबद्ध परीक्षाओं का परीक्षक नियुक्त कर रक्खा है। आपका वैदिक साहित्य पर पूर्ण अधिकार है। आपका सम्पादित 'अग्निष्टोम पद्धति' ग्रन्थ काशी, बिहार, कलकत्ता आदि स्थानों की आचार्य परीक्षाओं में निर्धारित है। आपके कई संपादित ग्रन्थों में 'स्मार्तोल्लास' उल्लेखनीय ग्रन्थ है। आपके "श्रौत देवता विज्ञान" आदि कई लेख बहुत प्रसिद्ध हैं। आपका धर्म-शास्त्रीय निर्णय बहुत प्रामाणिक और विद्वन्मान्य होता है।

श्रीविष्णुमहायज्ञ-रत्नपुर का विवरण

विषय प्रवेश—

भारत गौरव-सम्राट श्री विक्रमादित्य के चलाये हुए २००० संवत्सर के समाप्त होने के उपलक्ष में, श्री विष्णुमहायज्ञ का आयोजन, छत्तीसगढ़ की प्राचीन राजधानी पुण्यभूमि श्री रत्नपुर में, किया जाय ये तीनों विचार-धाराएँ लोगों को एक साथ ऐसी हृदयङ्गम हुईं, जैसे त्रिवेणी का सङ्गम। उनकी आंखों के सामने बीते हुए दो हज़ार वर्षों का इतिहास चल-चित्र के पट के सदृश गुजर सा गया। उन्हें महाराज विक्रमादित्य के पराक्रम, प्रताप, शौर्य, औदार्य, धर्म-प्रियता, विद्वता, गुण ग्राहकता आदि सभी सद्गुणों का एक एक करके स्मरण हो आया। फिर वे अपने छोटे से राज्य छत्तीसगढ़ के संबंध में सोचने लगे-उस समय यह कितना समृद्धिशाली और वैभववान रहा होगा और आज इसकी कितनी दुर्दशा है! इसे लोग कितनी हीन दृष्टि से देखते हैं और इसकी राजधानी रत्नपुर कितनी गिरी हुई अवस्था में है! इसके प्राचीन गौरव के सूचक चिन्ह आज उल्लू और गीदड़ों के निवास स्थान बने हुए हैं। फिर जब अपनी निज की दशा पर लोग विचार करने लगे तब तो उनका असंतोष और बढ़ गया। उन्होंने दृष्टि को और भी व्यापक किया तो देखा कि सारे विश्व में अशांति फैली हुई है। भांति भांति के कष्टों से प्राणी मात्र पीड़ित और क्षुब्ध हो रहे हैं। ऐसे समय में श्रीविष्णुमहायज्ञ के आयोजन का प्रकाश उन्हें ऐसा जान पड़ा जैसे घनघोर घटा और अंधकार के बीच चन्द्रदेव कहीं से मुसकुरा उठे हों। वे फिर एक बार अतीत काल की बातों पर विचार करने लगे। वे तत्कालीन आत्मत्याग और आत्म-बलि की कथाओं को स्मरण करके मुग्ध से हो उठे। वे सोचने लगे—

हाय, वे दिन भी कितने सुखकर थे जब राजा आत्मशुद्धि के लिए; आत्माको पतन की ओर ले जाने वाली शक्तियों पर विजय पाने के लिए; समस्त प्रकार के ज्ञान की प्राप्ति के लिए; प्रजा के सुख, शान्ति और कल्याण के लिए यज्ञ करता था—सामूहिक शक्तियों और द्रव्य का व्यय करता था और सर्वस्व त्याग करके आत्म-संतोष का लाभ करता था। इधर यज्ञ कराने वाले ऋत्विज् ब्राह्मण भी कितने महान् और त्यागी थे। वे राजा को उसका राज्य लौटा देते थे और कहते थे—धरोहर की भांति तू इसकी रक्षा कर, प्रजा का पालन और शासन कर। बदले में इसकी आय से उतना ही अंश अपने लिए व्यय कर जितना एक राजा के लिए परमावश्यक है। पश्चात् वे ब्राह्मण भी अपने और अपने कुटुम्ब के उदर-



श्री विष्णु महायज्ञ रत्नपुर के आचार्य
पं. श्री भगवत्प्रसाद मिश्र वेदाचार्य,
प्रोफेसर, गवर्नमेंट संस्कृत कालेज
(बनारस)



संत तुकड़ोजी महाराज



वरणी—पंडित—वृन्द
श्री विष्णु महायज्ञ, रत्नपुर

पत्रों के वंदनवार से सारा मार्ग अथ से इति तक सुशोभित था। द्वितीय द्वार पर कोई तीन हजार जनता का समूह आचार्य देव तथा अन्य विद्वानों के स्वागत् के लिए बाजा गाजा सहित उपस्थित थे। वहाँ आचार्य महोदय मोटर से उतार लिए गये, उनकी विधिवत् पूजा की गई और उन्हें इतनी पुष्प मालाएं और हार पहिनाये गये कि वे पुष्पमय हो गये। पश्चात् उन्हें अश्वारूढ़ कराकर जय जयजयकार की तुमुल ध्वनि के साथ जुलूस रवाना हुआ। करैहापारा पार करते समय प्रत्येक गृह की स्वामिनी ने अपने २ द्वार पर अपनी बहू-बेटियों और बच्चों सहित उनकी आरती उतारी। यहीं से वे गजारूढ़ कराये गये। यज्ञ स्थानपर पहुंचते २ जुलूस में सम्मिलित जनता की संख्या लगभग पांच छः सहस्त्र तक बढ़ गई थी। यज्ञ शाला के निकट ही दर्शक स्थान पर बड़े पैमाने में बिछावन की गई थी। मुख्य भाग कीमती गलीचों तथा तकियों से सुशोभित था। आचार्य महोदय विद्वत्मण्डली सहित वहाँ सादर बैठाये गये और सारा जुलूस सभा के रूप में परिणत हो गया। यज्ञ समिति के उपमंत्री श्रीप्यारेलाल गुप्त ने आचार्य महोदय और विद्वानों का चुने हुए सुन्दर शब्दों में परिचय दिया तथा उनका स्वागत किया। फिर यज्ञ समिति की ओर से श्री पं. रामदेव व्यास शर्मा ने स्व-रचित संस्कृत अभिनन्दन-पत्र पढ़ा और उसे आचार्य महोदय को समर्पित करते हुए होनेवाली त्रुटियों के लिए क्षमा मांगी। समर्पित किये हुए अभिनन्दन पत्र की प्रतिलिपि अन्यत्र परिशिष्ट में दी गई है।

अभिनन्दन पत्र का उत्तर आचार्य महोदय ने धारा प्रवाह संस्कृत ही में दिया जिससे उपस्थित जनता पर उनकी योग्यता की अच्छी छाप पड़ी। उनके उत्तर का सारांश इस प्रकार है—

"सम्माननीय मनीषिमण्डल एवं उपस्थित सज्जन वृन्द !

आज जगदीश्वर की निःसीम महिमा से उसके दयावश उसके क्रीड़ाविरचित जागतिक शरीर के पोषणार्थ, उसकी यज्ञात्मक उपासना के सफल कार्य में आप लोग सक्रिय सम्मिलित होने जा रहे हैं। आज से ही प्रधानतया यज्ञ एवं तदङ्गभूत सम्मेलनों का कार्यभार संभालने का सुअवसर आरंभ होता है। कल से आप अपने संकलिपत कार्य को क्रियात्मक रूप से देखेंगे।

आपने मेरे साथ इस अभिनन्दन पत्र द्वारा जो स्नेह प्रगट किया है उसके लिए मैं कृतज्ञ हूँ। मेरी समझ से आप सब इसके द्वारा 'स्तुतिसंक्रमन्याय' से यज्ञ का ही अभिनन्दन कर रहे हैं।

आप भारतीय विद्वान और पूर्ण धार्मिक हैं। धर्म विषयक आपका अगाध प्रेम और महान श्रद्धा देख मुझे बड़ा हर्ष है। भगवान विश्वेश्वर के आशीर्वाद और अपने महान श्रम के बल पर आपने एक ऐसे विशाल यज्ञ का आयोजन कर लिया है जो समस्त सी. पी. प्रांत के लिए गौरव का विषय होगा और जिसका स्मरण भावी सन्तान एक उच्च ऐतिहासिक एवं धार्मिक दृष्टि से सदैव करेगी।

तैयारियां —

उत्सव सम्बन्धी तैय्यारियां बड़े जोरों से होने लगीं। भिन्न भिन्न उप-समितियों के कार्यकर्त्तागण, अपना कार्य तत्परता के साथ करने लगे। ज्यों ज्यों यज्ञारंभ की तिथि निकट आती जाती थी तैयारियोंका जोर बढ़ते जाता था। समस्त कार्य-कर्त्ता एक सुर से कार्य कर रहे थे। किसी को बेसुरा होने का अवसर ही नहीं मिलता था। सबको एकही चिन्ता थी, सबका एक ही ध्येय था और सबके सामने एक ही लक्ष्य था—और वह था श्री विष्णुमहायज्ञ का सफलता पूर्वक सानन्द सम्पन्न होना।

इसी अवसर पर कार्यकारिणी समिति ने उत्सव काल का दैनिक कार्यक्रम (माघ कृष्ण १५ से माघ शुक्ल १५ सं० २००० ता० २५-१-४४ से ८-२-४४ तक) छपाकर वितरण करा दिया (पाठक इस कार्यक्रम की प्रतिलिपि परिशिष्टमें पावेंगे) इस कार्यक्रम को पाकर जनता में हड़बड़ी सी मच गई। दुकानदार यज्ञ मेला में दुकानें रिजर्व कराने के लिए दौड़ धूप करने लगे। दर्शक गण ठहरने के लिए स्थान पानेको आकाश पाताल एक मचाने लगे। और श्रद्धालुजन धैर्य पूर्वक उस शुभ तिथि की बाट जोहने लगे जिस दिन से यह शुभ कार्य आरम्भ होने वाला था।

और कार्यकर्तागण—न उन्हें भूख थी न प्यास; न विराम था, न विश्राम; वे सोते जागते केवल एक ही स्वप्न देखा करते थे,—यज्ञ, यज्ञ और यज्ञ! उनकी चिन्ता स्वाभाविक थी। आशा से अधिक आयोजन बढ़ गया था। लाखों मनुष्यों की भीड़ होने की सम्भावना थी। परन्तु उन्हें भरोसा था उस भगवान का जिनकी कृपा का प्रमाण उन्हें पग पग पर मिल रहा था।

माघ कृष्ण १५ सम्वत् २००० (ता. २५-१-४४) मंगलवार

मंगल सुप्रभात—

आखिर वह दिन आ ही गया जिस दिन पूज्य आचार्य महोदय का रत्नपुर आगमन निश्चित किया गया था। इसके एक दिन पहले वे बिलासपुर आ गये थे जहाँ उनका स्वागत यज्ञ समिति की ओर से स्टेशन पर से ही आरम्भ हो गया था। यहां वे काशी के अन्य १४ पण्डितों सहित श्री सेठ राधाकृष्ण के विशाल मन्दिर में ठहराये गये। पश्चात् माघ कृष्ण १५ मंगलवार (ता. २५-१-४४) को वे सदलबल मोटर द्वारा रत्नपुर पहुंचाये गये।

सन्ध्या होने में थोड़ा बिलम्ब था। रत्नपुर नगर खूब सजाया गया था। रत्नपुर की सीमा जहां से प्रारम्भ होती है वहां स्वागतम् शब्द से संयुक्त बृहद 'रत्नदेव-द्वार' की रचना की गई थी। मार्ग के मुख्य २ स्थानों पर भिन्न भिन्न नामों से अंकित तोरण द्वार बने हुए थे, जैसे श्री भैरव-द्वार, श्री तुलजा देवी द्वार, श्री बिम्बाजी-द्वार, श्री पृथ्वीदेव-द्वार, श्री वृद्धेश्वरनाथ-द्वार आदि। आम्र

गया था। चारों ओर दर्शकों के बैठने के लिए सुन्दर और विस्तृत छायादार मण्डप की रचना की गई थी। द्वारों पर 'यज्ञ-मण्डप' का पट बहुत सुन्दर प्रतीत होता था। द्वार के भीतर जाने पर यज्ञ-मण्डप के दर्शन होते ही दृष्टि स्तंभित हो जाती थी। मन आनंद की लहरों से उमड़ पड़ता था। बुद्धि भारतीय वैदिक संस्कृति की सुन्दरता के लिए हठात् आकृष्ट होजाती थी। मन वहां से हटने को नहीं होता था। चारों ओर शंख, चक्र, गदा, पद्म युक्त शिखर के तोरण द्वार मानो वैकुण्ठ की ड्योढ़ियां थीं। तोरण द्वार के स्तंभों के दोनों ओर छोटी वेदी पर वस्त्र, पुष्प, फलादि से समलंकृत कलश मानो सबके मंगल के लिए प्रस्तुत थे। मण्डप के बाहर दो हाथ के चबूतरे पर चारों ओर रखे गये पुष्पित-पल्लवित लताओं-पौधों का समूह हरियाली की धूम मचा रहा था। चबूतरे के ऊपर लंबे बांसों पर देवताओं की रंगीली ध्वजाओं की मधुर स्वन की फहराहट मानो प्राणियों को शान्ति रव का उपदेश देती थी। ध्वजाओं पर चित्रित देवताओं के वाहन-आयुध, वायु से आन्दोलित होकर मानो विश्वकल्याण के लिए अग्रसर हो रहे थे। मण्डप के प्रधान चारों द्वार के दोनों ओर तथा कोनों पर अलंकृत कलश सब ओर से मङ्गल दर्शन कराते थे। द्वारों पर आरोपित जड़ सहित केले के वृक्ष अपने फलों को नीचे करके यज्ञ में सहयोग देने का अवसर पाने पर मानो कृतज्ञता प्रकाश कर रहे थे। भूमि से एक हाथ ऊँचा यज्ञमण्डप कोमल आम्र पत्रों के तोरणों से परिवेष्टित होकर एक सुन्दर आम्रवन का दृश्य उपस्थित करता था। मण्डप के ऊपर पचरंगा आच्छादनपट, मण्डप को वस्त्रमय बनाये हुए था। मण्डप के मध्य में, ऊपर, रत्नपुरी कांसे की कारीगरी से युक्त, कलश पर गरुड़ध्वज के दर्शन से आंखों में चकाचौंधसी आ जाती थी। सर्वदा विकसित दोनों ओर चित्रित गरुड़जी की मूर्ति, मानों आर्त भारतीयों को अपनी स्निग्ध दृष्टि एवं उपस्थिति से सान्त्वना दे रही थी। मण्डप का सुन्दर सीमेन्ट का प्रांगण, अपनी लाल पीली धाराओं से सायंकालीन बादल की छटा की छाया का स्मरण कराता था। मण्डपस्तंभों के वस्त्र की वेठन उसपर गोटे की चांदी सोने की लकीरें उस भूमि को जगमगा रही थीं। काशीवासी तथा प्रान्तीय विशालमूर्ति, चन्दनलिप्त, भव्यकाय वैदिक विद्वानों की उपस्थिति से मण्डप मानो सप्राण स्वर्ग बन रहा था। पांचो कुण्डों में प्रदीप्त अग्नि मानो निर्मल आकाश का चन्द्रमा था। मण्डप के चारों कोनों की वेदियों पर सुसज्जित-वस्त्र, पुष्पमाला चर्चित देवगण ऐसे ज्ञात होते थे, मानो वे प्रधान देव से परामर्श कर रहे हों। प्रधान वैकुण्ठ-वेदी पर, लाल जरीदार सुन्दर पीताम्बर पहिने, मूल्यवान दुशाला ओढ़े, छत्र, चामर, पादुका से समलंकृत, भगवान विष्णुदेव की झांकी का दर्शन भावुकों के हृदय को भक्ति भाव से ओत प्रोत कर देता था। ऐसी थी रत्नपुर के यज्ञमण्डप की कमनीय छटा !"

आचार्य देव और ऋत्विजों ने, सपत्नीक यजमान के साथ, यज्ञमण्डप की, प्रदक्षिणा की, और तत्पश्चात् यज्ञमण्डप में प्रवेश किया। अब तक की हुई समस्त क्रियाएँ यज्ञ-मण्डप के बाहर संपन्न की गई थीं।

आप और भी सन्नद्ध हो, परस्पर अधिक से अधिक प्रेम रखकर आगे बढ़ें। आपके उत्साह के साथ साथ में विद्वन्मण्डली को भी देखकर बहुत ही प्रसन्न हो रहा हूँ और इन विद्वानों से पूर्ण आशा रखता हूँ कि ये 'तानूनप्त्राज्य-ग्रहणानन्तरवत्' यज्ञ के कार्यक्रम के संचालन में सानन्द सहयोग देंगे।"

पश्चात् आचार्य महोदय तथा वरण किये जाने वाले ब्राह्मणों का इत्र, पान और पुष्प मालाओं से सम्मान करते हुए यह जानने का अवसर मिला कि वरण के लिए निमंत्रित ब्राह्मणों में से कितने जन पधारे हैं (ताकि शेष का प्रबन्ध शीघ्र किया जा सके) फिर सभी आगत तथा उपस्थित सज्जनों का यथा विधि सम्मान किया गया और सभा विसर्जित हुई। आचार्य महोदय तथा वरणित ब्राह्मणों के निवास के लिए यज्ञ भूमि में ही सुन्दर पर्ण कुटियां बनाई गई थीं। सारा स्थल तपो भूमि सा ज्ञात होता था। स्वच्छता और प्रकाश का विशेष रूप से प्रबन्ध किया गया था जिस से कहीं गन्दगी नहीं होने पाती थी और रात्रि काल में भी यज्ञ-भूमि गैस लाइट से प्रकाशवान बनी रहती थी। इस प्रकार कार्यक्रम का पहला दिन स्वागत् और जुलुसवाला सानंद समाप्त हुआ।

माघ शुक्ल १ स. २००० (ता. २६-१-४४) बुधवार

दूसरे दिन प्रातः इधर भगवान अंशुमाली ने अपनी कोमल किरणें फेंकी उधर श्रीविष्णु महायज्ञ के विशाल द्वार के ऊपर बने हुए नौबतखाने से वाजन्त्रियों ने शहनाई में मधुर राग से प्रभाती छेड़ दी। सबों ने शैया त्याग किया। मध्यान्ह काल में प्रधान मंडप से पूर्व, दर्शक मंडप में सर्व प्रायश्चित कर्म आरंभ हुआ। शास्त्रानुसार चार विद्वानों की एक परिषत् की रचना की गई तथा एक अनुवादक नियुक्त किया गया। यजमान* ने परिषत् के सामने भारत की प्राचीन महत्ता का वर्णन करके विश्व कल्याण की भावना से किये जानेवाले श्री विष्णु महायज्ञ की अधिकार-सिद्धि के लिए प्रार्थना की। परिषत् ने इस उदात्त भावना से किये जाने वाले श्रीविष्णु महायज्ञ कर्म की अधिकार प्राप्ति तथा अपनी आत्म शुद्धि के लिए षडब्द प्राजापत्य व्रत प्रत्याम्नाय स्वरूप १८० गोदान करने का उपदेश दिया। यजमान ने परिषत् के आदेश को शिरोधार्य करके प्रणामान्तर अपनी वाह्य शुद्धि के लिए शास्त्रानुसार अग्निहोत्र की पवित्र भस्म, जगन्माता गो के गोमय तीर्थ की मृत्तिका, जल गोमूत्र मय दुग्ध, दही, घृत और कुशोदक से दश विधि स्नान किया। तदनन्तर स्नानांग, तर्पण, कर्मांग, श्रीविष्णु महापूजन, श्रीविष्णु श्राद्ध, प्रत्यक्ष गोदान आदि क्रियाएं छः घंटों में विधिपूर्वक सम्पादित की गईं।

---

*यजमान—अर्थात जनता के प्रतिनिधि जो सारा यज्ञ कार्य उसकी ओर से करते थे। श्री सखारामजी पन्त मालगुजार रलपुर इस शुभ कार्य के लिए चुने गये थे। समय समय पर पुष्पांजलि आदि कृत्यों में जनता तथा कार्यकर्त्तागण भी सानन्द सम्मिलित होते थे।

लोगों की भीड़ बढ़ चली थी। यज्ञ मण्डप की परिक्रमा के लिए २२ फुट चौड़ी जगह भी छोटी जान पड़ने लगी। अतः स्त्री-पुरुषों के लिए अलग अलग परिक्रमा करने का प्रबंध घेरा डाल कर किया गया, और परिक्रमा का क्रम भी वारी वारी से कर दिया गया।

श्रीमद्भागवत्-कथा में भी भीड़ होने लगी, विशेषकर देवियों की उपस्थिति अधिक रहती थी। श्रीतुलसीकृत रामायण का अखंड पाठ जारी था।

यज्ञ मेला बढ़ चला था। नई २ दुकानें आ रही थीं। रामटेकरी-पहाड़ी पर और पास ही श्रीवृद्धेश्वर नाथ के मन्दिर में दर्शनार्थियों का तांता टूटता ही न था।

माघ शुक्ल ४ सं. २००० (ता. २९-१-४४) शनिवार

प्रतिदिन प्रातःकाल नौबत खाने से वाजंत्रियों के वाजों से ताल, सुर और लय के साथ भैरवी में निकली हुई मधुर धुन के साथ ही साथ लोगों की निद्रा टूट जाती थी। उधर, स्नान पूजादि नित्यकर्म से निवटकर ऋत्विज, महायज्ञ सम्पन्न करने में लग जाते थे, इधर, कार्यकर्ताओं को बढ़ते हुए काम से भोजन करने का अवकाश भी न मिल पाता था।

दर्शक-निवास भर चला था। यज्ञस्थल से दूर दूर के तालावों के भी चहुं ओर गाड़ियों और सवारियों की भीड़ हो चली थी। यज्ञस्थल की चहल पहल का क्या कहना था? देवियां प्रातःकाल से ही स्नान करके थाली में मंगलद्रव्य ले श्रीमद्भागवत् सुनने को आ डटती थीं। स्वयंसेवकगण चुस्ती के साथ प्रबन्ध कार्य में दत्त चित्त हो जाते थे। औषधालय के वैद्य और डाक्टरों की भी यदा कदा आवश्यकता पड़ने लगी थी। यज्ञ मेला में दुकानों और होटलों की संख्या बढ़ते जाती थी।

प्रांतीय हिन्दू महासभा का अधिवेशन प्रसिद्ध नेता डा. मुंजे की अध्यक्षता में आज रात्रि को प्रारंभ हो गया।

माघ शुक्ल ५ (ता. ३०-१-४४) रविवार

प्रातःकाल ९ बजे जब यज्ञ कार्य प्रारंभ की वेला हो जाती थी, माथे पर चंदन लगाये, बगल में आसनी दबाये और एक हाथ में पञ्चपात्र तथा आचमनी लटकाये, यज्ञशाला की ओर पधारते हुए ऋत्विज ब्राह्मणों की छटा देखने योग्य होती थी। इधर यज्ञ शाला के पांचों हवन कुण्डों से सुगन्धित पवित्र धूमराशि वायु के साथ फैल फैल कर प्राचीन काल की तपोभूमि और उसपर निवास करने वाले ऋषियों की सुधि दिलाने लगती थी।

भूमि-पूजन, वास्तु-पूजन, और मण्डप-पूजन के पश्चात् आजका अंतिम कार्य था अरणि-मंथन। अरणि-मंथन से अग्नि प्रगट होती है और फिर उसी अग्नि से यज्ञ का कार्य होता है। हवन के लिये वाहर से अग्नि नहीं लाई जाती। पहले दिन मंथन द्वारा प्रगट होने वाली अग्नि ही अन्त तक रखी जाती है। कई ऋत्विजों के सहयोग से अंत में अग्निदेव प्रकट हुए। सवका चित्त प्रफुल्लित हो गया। शंखनाद किया गया। वाजा वजने लगे।

अग्नि स्थापन हुआ। पहले ग्रह योगिनी-क्षेत्रपाल का पूजनादि होकर फिर वड़े ही सुंदर रूप में प्रधान श्री विष्णुदेव का राजोपचार विधि से पूजन हुआ। प्रधान पूजन में हस्तविन्यास पूर्वक वेदमंत्रों की गंभीर ध्वनि, तथा आचार्य महोदय के राजोपचार के भावात्मक सुन्दर श्लोकों की कर्ण-मधुर-श्रुति हृदय को भावान्वित कर देती थी।

इस प्रकार प्रथम दिवस का कार्य समाप्त हुआ। धन और उद्योग जनता का था। ईश्वर प्रीत्यर्थ किये हुए यज्ञ में कुछ न कुछ सकाम भावना आ ही जाती है तथा इसका फल यजमान को होता है। इसका परिहार आचार्य महोदय ने संकल्प पढ़ते समय ही भली भांति कर दिया था और यज्ञ का फल विश्वकल्याणार्थ समर्पित कर दिया था। अतः एक व्यक्ति को जनसमूह का प्रतिनिधि वनाकर यज्ञ करने में कोई वाधा नहीं रह गई थी।

निश्चित् कार्यक्रम के अनुसार प्रसिद्ध विद्वान और वक्ता श्री पं. रामरत्न दीक्षित (तिरोड़ा) निवासी ने श्रीमद्भागवत-कथा-सप्ताह का आज आरंभ कर दिया। इस शुभ कार्य के लिए एक सुन्दर मण्डप की रचना पहले से ही कर दी गई थी।

दरिद्र-नारायण को भोजन देना आज से आरंभ कर दिया गया। प्रसिद्ध कीर्तनकार श्रीविष्णु वुवा कालविंठ हरिदास, अस्वस्थ हो जाने के कारण न आ सके। अतः उनका कीर्तन न हो सका।

माघ शुक्ल ३ सं २००० (ता. २८-१-४४) शुक्रवार

प्रतिदिन प्रातःकाल ८ वजे से वेदपारायण, नित्यपूजा आदि कार्य सम्पन्न होने लगे। तदनंतर ६ वजे सायंकालतक आवरणार्चनन्यास ध्यान आदि करके श्रीविष्णु महायज्ञ का हवन कार्य प्रारंभ होता था। वीच में १ वजे से लेकर ३ वजे तक विश्राम का समय नियुक्त था। अन्त में प्रतिदिन अत्यन्त मनोहर कर्ण-मधुर नीराजन, मंत्र पुष्पाञ्जलि आदि शुभ कार्य हुआ करते थे।

हवन करते समय पांचो कुण्डों में निरन्तर घृत-धारा से अग्नि का अभिषेक किया जाता था। हवन के समय काशी के वैदिक विद्वान, नियमपूर्वक पर्याय से वैदिक सूत्रों का उच्चारण करते थे। ५१ विद्वानों के स्वाहाकार से यज्ञमण्डप गूंज उठता था।



डा. बी. एस. मुंजे,
अध्यक्ष, महाकोशल प्रांतीय हिन्दू महासगा, रत्नपुर ।



डा. बल्देवप्रसाद मिश्र, एम. ए., एलएल. बी., डी. लिट,
अध्यक्ष, छत्तीसगढ़ विभाग
हिन्दी-साहित्य और कवि-सम्मेलन, रत्नपुर ।



श्रीमती ठकुराइन सूरजकुंवर, करगी



श्रीमती ललाइन वृजराज कुंवर, पेंडरा

कल सन्ध्या, आज सवेरे, और फिर सन्ध्या को कुछ अच्छी बूंदाबांदी होगई, जिस से कार्यक्रम में कुछ अंतर हो गया, और रात्रि को "संगीत सम्मेलन" का प्रारम्भ, उसके कार्यक्रम की रक्षा के लिए ही किया गया।

माघ शुक्ल ६-७ सं. २००० (ता. ३१-१-४४) सोमवार

कल की वर्षा ने प्रायः सभी लोगों के हृदयमें बड़ी हलचल मचा दी थी। पिछले महीने काफी असामयिक वर्षा हो चुकी थी। यदि यही क्रम अभी भी जारी रहा तो लाखोंकी भीड़ के रहने बसने का क्या प्रबंध हो सकेगा, ये सब कार्यक्रम कैसे पूरे हो सकेंगे, इस चिन्ता से कार्यकर्ताओं की प्रायः सारी रात इन्द्रदेव की प्रार्थना करने में व्यतीत हुई। प्रार्थना सुन ली गई, आकाश निर्मल हो गया। फिर यज्ञ समाप्त होने तक बादलों की आड़ में इन्द्रदेव यज्ञ भगवान का दर्शन कर लेते थे, पर वर्षा की बूंदों पर आरूढ़ होकर पधारने का कष्ट आपने नहीं उठाया। यज्ञ समाप्ति के पश्चात् फिर तो आपने सारे फाल्गुन और चैत्र मास में इतना पानी बरसाया कि लोग मजाक से कहने लगे कि—"लो, ये लोग यज्ञ करके यह असामयिक वर्षा करा रहे हैं।" यज्ञ के प्रबन्धकर्ता भी मजाक ही से उत्तर देते—"आखिर आपको विश्वास तो हुआ कि यज्ञ करने से पर्जन्य होता है"। अस्तु, यज्ञ कार्य नियमानुकूल चल रहा था। श्रीमद्भागवत् और श्री रामायण की कथाएं भी चालू थीं। दर्शनार्थी, साधु-सन्त और सन्यासियों की भीड़ बढ़ रही थी।

इधर संगीत सम्मेलन, और छत्तीसगढ़ तृतीय हिन्दी-साहित्य तथा कवि-सम्मेलन के कार्यकर्ताओं ने कार्यक्रम में कुछ परिवर्तन कर, साहित्य-सम्मेलन दिन में, तथा साथ ही कवि-सम्मेलन सन्ध्या में कर डाला। रायपुर म्युनिसिपैल्टी के प्रेसिडेंट, प्रसिद्ध देशसेवक, ठाकुर प्यारेलालसिंह ने इस सम्मेलन का उद्घाटन किया। उद्घाटन करते समय आपने जो भाषण दिया था उसका सारांश यह है—कर्म, विचार और भावना की उन्नति करना ही साहित्य का उद्देश्य है, अतएव साहित्य का सृजन उसी भाषा में होना चाहिए जिसे देश के ९५ सैकड़ा लोग समझ सकें।

पश्चात् सम्मेलन के सभापति डा. श्री बल्देवप्रसाद मिश्र, एम. ए. एल-एल. बी., डि. लिट्. ने सभापति का आसन ग्रहण कर जो भाषण दिया वह इस प्रकार है—

"प्रसन्नता की बात है इस बार छत्तीसगढ़ प्रांतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन रत्नपुर की उस पवित्र भूमि में हो रहा है जिसने भारतीय संस्कृति के अतीत वैभव को न केवल शताब्दियों वरं सहस्राब्दियों तक अपनी गोद में खिलाया है। कहा जाता है कि नालन्दा और तक्षशिला के सुविख्यात विश्वविद्यालयों के भी पहिले यहीं एक विश्वविद्यालय की स्थापना हुई थी; जिसे कदाचित् पिछली

श्रीमद्भागवत कथा में श्रोताओं भीड़ बढ़ती जाती थी। व्यास-गद्दी के नीचे फल-फूल और नारियलों का पहाड़ सा लग जाता था।

प्रांतीय हिन्दू-महासभा का आज, दूसरे और अंतिम दिन का अधिवेशन सानंद समाप्त हो गया। डा० मुंजे महोदय को रत्नपुर नगर तथा निकटवर्ती गांवों के लोगों ने ५०१) की थैली भेंट में दी, जिसे डा० महोदय ने भोंसला सैनिक शाला नासिक के कोष में जमा कर दिया। रत्नपुर-नगर निवासियों तथा यज्ञ-समिति ने उन्हें अभिनन्दन पत्र देकर उन का सन्मान तथा अतिथ्य सत्कार किया। डा. साहब ने बिलासपुर जिले में ही अपना बाल्यकाल बिताया था। ६२ वर्ष के पश्चात् रत्नपुर का अवलोकन कर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्हें ऐसा लगता था मानो वे अपनी जन्म भूमि ही में आ गये हों।

डा. साहब ने प्रान्तीय महासभा के अध्यक्ष के नाते जो भाषण दिया वह बड़े मार्के का था। उसमें पाकिस्तान का विरोध, हिंदुओं को अपनी शक्ति बढ़ाने का उपदेश, संगठन करने की शिक्षा आदि अनेक उपयोगी बातें थीं। महासभा ने लगभग २० उपयोगी प्रस्ताव भी पास किये और उनके सम्बन्ध में भिन्न भिन्न हिन्दू नेताओं के प्रभावशाली भाषण हुए। प्रान्तीय महासभा का सफलतापूर्वक सम्पन्न होने का सारा श्रेय प्रान्त के प्रसिद्ध हिन्दू नेता श्री पं. त्र्यम्बकराव देहनकर, पं. रामकृष्ण पाण्डेय और पं. विठ्ठल रामचन्द्र काळे तथा उनके सहायक मित्रों को है।

नासिक पहुंचकर डा० महोदय ने यज्ञ-समिति को जो पत्रोत्तर भेजा था, वह बड़ा ही उत्साहवर्धक था। उसका कुछ अंश नीचे दिया जाता है—

"मैं जब रत्नपुर महाकोशल कान्फरेंस के वास्ते आया था, उस समय मुझको "श्रीविष्णु महायज्ञ" में एक दिन उपस्थित रहने का अवसर मिला था। चारों तरफ घूमकर यज्ञमण्डप की व्यवस्था मैंने देखी, और, वहां के पण्डित-गणों से भी मिला। धर्म सम्बन्ध में भी उनसे कुछ चर्चा हुई। यज्ञ की व्यवस्था बहुत अच्छी थी, और जिस चौहट्टे पर यज्ञ की स्थापना की गई थी वह चौहट्टा वैसा ही अगर कायम रखा जावे तो वह यज्ञ का स्मृति-चिन्ह होगा।

हिन्दू-समाज, रत्नपुर के हिन्दू नेताओं का ऋणी है जो उन्होंने ऐसे संकट के समय पर यज्ञ भगवान की आराधना करने का अवसर दिया। यज्ञभगवान की आराधना से दुनियाँ में साहस, शांति, और सुख की वृद्धि होगी।"

यज्ञ-समिति, श्री मुंजे महोदय का उनकी बहुमूल्य सम्मति के लिए अत्यन्त आभार मानती है और उन्हें विश्वास दिलाती है कि यज्ञ का चौहट्टा यथावत् रखने का पूर्ण प्रयत्न किया जा रहा है और साथ ही भगवान ने चाहा तो यज्ञ के स्मारक स्वरूप वेद-विद्यालय की भी स्थापना होगी।

में विताने की चेष्टा कीजिए। यदि आप श्री सम्पन्न हैं और आपको अपने व्यवसाय से अवकाश नहीं मिलता तो भी आप पुस्तकें अवश्य मंगवाइये। उन्हें आपके लड़के बच्चे अथवा अन्य आश्रित या इष्ट मित्र पढ़ेंगे। इस प्रकार आप न केवल इन्हें ही लाभ पहुंचावेंगे वरं उन ग्रन्थकारों को भी, जिन्होंने आपके लिए अपने हृदय और मस्तिष्क का रक्त गम्भीर चिन्ता के शिकंजे से निचोड़कर ग्रन्थों के पन्नों पर विखरा दिया है। पुस्तक पाठ के साथ ही साथ पदार्थ-पाठ की ओर भी आप ध्यान रखें। प्रकृति की पाठशाला ही सबसे बड़ा विश्वविद्यालय है जहां से हमें वास्तविकता और व्यवहारिकता की अलक्षित डिग्रियां मिला करती हैं। साहित्य-सृजन के कार्य के लिए ऐसी अलक्षित डिग्रियां अनिवार्य हैं। साहित्यस्रष्टा भी एक विधाता ही है। लोगों को कुछ सन्देश देने के पहिले उसे स्वतः बहुत बड़ी साधना की आवश्यकता है। इसलिए उसे लिखने की अपेक्षा पढ़ने की प्रवृत्ति ही अधिक बढ़ानी चाहिए। जो व्यक्ति लेखकों की अपेक्षा पाठकों की संख्या अधिक बढ़ा सकता है उसे मैं अधिक मूल्यवान साहित्य सेवी समझता हूं।

आज कल इस देश में साहित्यकारों की एक बाढ़ सी आगई है। वक्ता बहुत और श्रोता कम होते जा रहे हैं। जिसे देखो वही कवि, लेखक और साहित्यकार बना जा रहा है। वह बलपूर्वक अपनी कृतियों का भार समाज पर लादना चाहता है और यदि कोई उसकी बात सुनने के लिए तैयार नहीं होता तो वह अपने थोथे अभिमान के कारण समाज ही पर रुष्ट हो जाता है। वह अपने अतिरिक्त दूसरों को मूर्ख बताने के लिए कला और साहित्य की नयी नयी परिभाषाएं गढ़ता है। वह कहता है साहित्य हरएक प्रकार के बन्धन से मुक्त होना चाहिए। उसकी दृष्टि में चरित्र, धर्म, व्याकरण, छन्द शास्त्र आदि सबके सब बन्धन ही हैं। वह उनके प्रति ऐसी क्रान्ति उत्पन्न करता है जिससे साहित्य की आतमा पर ही कुठाराघात हो रहा है। इतना ही नहीं, वह अपनी ईश्वरदत्त प्रतिभा को पैसे की रखेली बनाकर कभी राजनैतिक क्षेत्र में और कभी ब्लैक मेलिंग-स्वार्थपूर्ण परनिन्दा-के मैदान में अपना अकाण्डताण्डव दिखाता फिरता है। वह अनेकानेक पत्र पत्रिकाओं को भी इसी हेतु जन्म देता है। और इस प्रकार, साहित्यकार के शुभ नाम को धनिकों, अधिकारियों, और विचारशील विद्वानों की मण्डली में कलंकित करता फिरता है। वह नहीं जानता कि वह भारत के भावी सन्तान के अमूल्य समय का दुरुपयोग करने के लिए तथा साहित्य सरीखी उत्कृष्ट कला के प्रति सर्वसाधारण में घृणा भाव उत्पन्न करने के लिए कितने हेय साधन एकत्र करता चला जा रहा है। सत्साहित्यिकों से मेरा अनुरोध है कि वे निष्ठुर होकर अपनी आलोचनाओं आदि के द्वारा ऐसे व्यक्ति को सन्मार्ग-गामी बनावें और इस प्रकार भगवती भारती के मंदिर के गौरव और उसकी पवित्रता को पतित होने से बचावें।

प्रान्तीय बोलियों के साहित्य-निर्माण की ओर भी कुछ विज्ञों का ध्यान आकृष्ट हुआ है। बुन्देलखंड में ऐसा प्रयत्न हो भी रहा है। हर्ष है कि आपको

दो या तीन सहस्त्राब्दियों में भारत का सर्व प्रथम विश्वविद्यालय होने का गौरव प्राप्त था। महाकोशल की इस राजधानी में न जाने कितने कलाकारों और भारतीभक्तों ने प्रश्रय पाया होगा! आज उनके नामों तक का पता नहीं। सर्वग्रासी काल कितना कराल होता है। परन्तु उस काल सर्प के फन पर चमकने वाले मणिरूप मठ मन्दिरों के ध्वंसावशेष, ताम्र पत्र, शिलालेख मूर्तियाँ, मुद्राएं, पूरे अथवा अधूरे हस्त लिखित ग्रन्थ तथा ऐसे ही अन्य पदार्थ; इस पावन स्थल पर यत्र-तत्र बिखरे पड़े अनेक वर्षों से बड़ी उत्कंठा के साथ आप लोगों की राह देख रहे हैं। वे उत्सुक हैं कि आप उन तक पहुँचें तथा उनकी सहायता से अपने विगत कलाकारों और उनकी कलाकृतियों के इतिहास आदि का उद्धार कर और इस प्रकार अपने ही विगत गौरव का प्रकाश पाकर स्वयं को धन्य बनावें। यह सम्मेलन तभी सफल कहा जायगा जब इस दिशा में आपका क्रियात्मक सहयोग प्राप्त हो जाय।

रत्नपुर के सदश और भी अनेकों स्थान अपने इस पिछड़े समझे जाने वाले प्रान्त में भरे पड़े हैं जिनमें इस प्रकार के रत्नों का पूर सा मिल सकता है। हम लोगों में से कितनों ने इस ओर प्रयत्न किया है ? जो निर्जीव वस्तुओं के मौन-आख्यान सुन और सुना सकता है, जिसकी हृत्तंत्री के तारों को न केवल गगनविहारी तारों के तरल प्रकाश अथवा वनविहारी द्रुमलता पुंजों के मर्मर संगीत ही मुखरित कर देते हैं वरं यत्र तत्र पड़े हुए प्रस्तर खंड भी — वे प्रस्तर खंड जिनमें मानवीय संस्कृति के मापक यंत्र की तरह का कोई कला कौशल छिपा पड़ा है— एक भैरव या विहाग सुनाने के लिए बाध्य कर देते हैं, वही तो सफल साहित्यिक है। निर्जीवों की बात जाने दीजिए, सजीव व्यक्तियों अथवा जातियों को भी हमने कहां तक अपने अध्ययन् और विवेचन का विषय बनाया है ? छत्तीसगढ़ प्रांत प्राचीन महाकान्तार का वह भाग है जहां अनेक प्रकार के पशुओं, पक्षियों, असभ्य और अर्ध सभ्य मानवों तथा दानवों तक का निवास कहा जाता है। इनके सम्बन्ध की जानकारी बताने वाली कितनी पुस्तकें हमारे पास हैं ? क्या यह हमारे साहित्यकारों को शोभा देता है कि वे अपनी ही परिस्थिति से ज्ञान-चक्षुओं को ढांक कर विकृत साहित्य रचने ही में अपना गौरव समझें ? ऐसे प्रज्ञाचक्षुओं की रचना से माता सरस्वती के मन्दिर का शृङ्गार नहीं बढ़ता। हां, भार अवश्य बढ़ता है।

आप लोगों से मेरा विनम्र निवेदन है कि आप लोग लिखने की अपेक्षा पढ़ने की प्रवृत्ति अधिक बढ़ावें। साक्षरता का अधिक से अधिक प्रचार हो यह तो आवश्यक है ही परन्तु केवल इतने से ही काम न चलेगा। आप में आजीवन कुछ न कुछ पढ़ते रहने की अभिरुचि होनी चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति के पास सामर्थ्यानुसार कुछ न कुछ पुस्तकें रहनी ही चाहिए। और नहीं तो रामायण तथा गीता अवश्य ही हो। भारतीय वाङ्मय में चन्द्र और सूर्य की तरह ये दो ग्रन्थ रत्न अनवरत देदीप्यमान् रहेंगे। समय मिले तो उसे काव्यशास्त्र विनोद



सेठ मूलजी सिक्का, बिलासपुर



श्रीमती रानी धनराजकुंवर जमीन्दारिन साहिबा, कोरबा



श्रीमती दुलैरिन कुंवर जमीन्दारिन साहिबा (लाफा)
अध्यक्ष, श्री विष्णु महायज्ञ समिति, रत्नपुर



श्री दीवान रामशरणसिंह सरबराकार (लाफा)
प्रतिनिधि—अध्यक्ष ।

कवि-सम्मेलन में पं. पुत्तीलाल शुक्ल "लाल कवि", पं. सरयूप्रसाद त्रिपाठी, एम. ए. "मधुकर", पं. द्वारिका प्रसाद तिवारी "विप्र", ठाकुर मेहरवानसिंह, डा. गोविन्द प्रसाद द्विवेदी, श्री वंदे अली फातमी, श्री धनसहाय "विदेह", श्री देवचरण तिवारी, श्री घनश्याम प्रसाद "श्याम," श्री उदय प्रसाद द्रुग, आदि छत्तीसगढ़स्थ कवियों ने अपनी अपनी कविताओं का पाठ कर बड़ा मनोरंजन किया। सभापति डा. वल्देव प्रसाद मिश्र की हास्य रस की कविताएँ सुनकर तो लोग हंसते हँसते लोट पोट हो गये थे।

रात्रि में प्रसिद्ध संगीतज्ञ श्रीजुगलकिशोरजी की अध्यक्षता में संगीत-सम्मेलन का अधिवेशन हुआ। वागेश्वरी, काफी, विहाग आदि रागों पर अनेक संगीतज्ञों ने अपना अपना कौशल प्रकट किया। श्रीभानुसिंह ने तवलावादन, पं. पचकौड़ प्रसाद और श्री रामलपण दास जी ने हार्मोनियम वादन तथा श्री विशेश्वर सिंहजी ने गायन कला में परम निपुणता प्रदर्शित की। श्री सुधाराम महाजन का गायन तथा जलतरंग वादन परम प्रशंसनीय था। अध्यक्ष तथा श्री रामलपणजी ने 'संगीत और साहित्य' पर अत्यन्त मार्मिक और सारगर्भित भाषण दिये। पिछले सज्जन ने "जीवन में संगीत की आवश्यकता" वड़े अच्छे ढंग से समझाई

इन सब सम्मेलनों का सारा प्रबंध भारतेंदु-साहित्य-समिति विलासपुर ने किया था, और इसकी सफलता का सारा श्रेय उसके सभापति पं. सरयूप्रसादजी त्रिपाठी और मंत्री पं. द्वारिका प्रसाद तिवारी तथा उनके सहायक मित्रों को है।

माघ शुक्ल ८ सं. २००० [ता. १-२-४४] मंगलवार

श्रीविष्णु महायज्ञ, श्रीमद्भागवत तथा अखण्ड रामायण के पाठ नित्यानुसार चालू थे। दोपहर १ वजे से श्री पं. जगदीश प्रसाद तिवारी, बी. ए. एल-एल. वी. का श्रीरामचरित मानस पर बड़ा सुन्दर प्रवचन हुआ। भगवान की सर्वव्यापकता का वखान करते हुए, उन्होंने भगवान से साक्षात्कार का उपाय "प्रेम और शरणागत भाव" श्री रामायण से प्रमाण देकर सिद्ध किया।

पश्चात् प्रसिद्ध व्याख्याता (वरहज जि. गोरखपुर वासी) परमहंस सत्यव्रत जी महाराज का भाषण आरंभ हुआ। भाषण क्या था भक्तिरस से सराबोर अमृत वर्षा थी। बड़े सरल और सीधे शब्दों में-जो ग्रामीण स्त्रियों तक की समझ में भी आजाय, आपने प्रसंगानुसार दृष्टांत देते हुए निष्ठा का स्वरूप, भगवान से नाता, आदि विषयों को ऐसे अच्छे ढंग से समझाया कि समय कैसे बीत गया, लोग समझ ही न पाये।

दरिद्रनारायण तथा श्रीमानों के भोजनालयों में, सहृदयतापूर्वक भोजन कराने का काम नियम पूर्वक जारी था।

यह सम्मेलन ऐसे झगड़े से अलग है। मैं नहीं चाहता कि अपने ही प्रान्तों में अपनी हिन्दी केवल राष्ट्र भाषा रूप में रह कर मातृ भाषा के पुनीत सिंहासन से हटा दी जावे। बोली और भाषा के विज्ञान को जो लोग समझते हैं वे ऐसे झगड़ों से दूर ही रहेंगे।

साहित्य का मानव-समाज, राष्ट्रीय संस्कृति और प्रत्येक व्यक्ति के हृदय से कहांतक सम्बन्ध है; उसका स्वरूप क्या है, आदर्श क्या है, इतिहास और वर्तमान क्या है, उसमें कलात्मकता और उपयोगिता के अंश किस प्रकार घुले मिले हैं, इस यान्त्रिक युग में उसकी कहांतक उपयोगिता है; आदि आदि ऐसे प्रश्न हैं जिनके विवेचन के लिए न तो यह उपयुक्त मंच ही है और न हम लोगों के पास पर्याप्त अवकाश ही है। यदि हमने व्यावहारिक रूप से हल हो सकनेवाली अपनी ही प्रान्तीय समस्याओं-साहित्यिक समस्याओं पर कुछ विचार कर लिया तो बड़ा काम हो गया ऐसा समझना चाहिए। भारत की समस्यायें भारत के लिए हैं और महाकोसल की महाकोसल के लिए। छत्तीसगढ़ के साहित्य-सेवी यदि अपनी ही विशिष्ट समस्याओं को कुछ सुलझा सके तो मैं तो समझूंगा कि अपना यह सम्मेलन सफल हो गया।

हमें चाहिए कि हम साहित्य-सृजन के पहिले साहित्य की खपत का पर्याप्त प्रबन्ध करें। हम स्थान स्थान पर इस सम्मेलन की शाखा सभाएं स्थापित करके प्रवचनों आदि के द्वारा लोगों में साहित्य की ओर अभिरुचि उत्पन्न करें और उन्हें इस बात के लिए विशेष उत्साहित करें कि वे अपने प्रांतीय साहित्य-कारों, अपनी प्रांतीय वस्तुओं आदि के प्रति आत्मीयता का अनुभव करने लगें। हम यह चेष्टा पूर्वक देखें कि यहां के साहित्यिक-क्षेत्र में छलछन्द और उच्छृंखलता के पैर न जमने पावें। इन सब बातों के लिए यदि हम वार्षिक कार्यक्रम बना लें और यह निश्चित करलें कि इस वर्ष अमुक विषय में इतना कार्य होना ही चाहिए तो आप निश्चय जानें कि हम लोगों द्वारा कुछ ही वर्षों में बहुत ठोस कार्य हो सकेगा और उस समय हम लोग ऐसा साहित्य भी निर्मित कर सकेंगे जो न केवल इस प्रान्त के लिए वरं समग्र भारत की भारती के लिए गौरव पूर्ण शृङ्गार होगा।

दिव्य शान्ति और जगत कल्याण के लिए विराट् यज्ञानुष्ठान के साथ इस सम्मेलन को सम्बद्ध करके स्वागत समिति ने अपनी दूर दर्शिता ही दिखाई है। इस सुअवसर पर यदि हम लोग भी सत्संकल्पपूर्वक इस कार्य के लिए अग्रसर होंगे तो ईश्वर अवश्य हमारी सहायता करेगा ऐसा मुझे पूर्ण विश्वास है!"

इसके पश्चात् साहित्यिक लेख पढ़े गये। विक्रमादित्य पर उत्तम निबंध और उत्तम कविता लिखने वाले को पंद्रह रुपयों का पारितोषिक घोषित किया गया था, जो क्रमशः श्री रजनीकान्त शुक्ल और श्री घनश्याम प्रसाद "श्याम" को मिला। पाठक यह लेख और कविता इस ग्रंथ में अन्यत्र प्रकाशित पायेंगे।

प्रार्थना की कि वे अब परमहंस श्री सत्यव्रतजी महाराज के भाषण सुनने को तैयार रहें।

परमहंसजी ने हरिनाम कीर्तन के पश्चात् अपना भाषण दिया। आज आपने नाम की महिमा का खूब ही वर्णन किया और अनेक कथाएं कहते हुए लोगों को भाव-विभोर कर दिया। एक श्रोता तो भावावेश में आकर खड़ा होकर रोने लगा और बड़ी कठिनता से चुप हुआ। पश्चात् भाषण समाप्त होने पर वह परमहंसजी के चरणों पर आ गिरा। इधर परमहंसजी महाराज जो स्वयं बड़े श्रद्धालु और भावुक हैं उस भक्त के चरणों पर गिर गये। अद्भुत दृश्य था। फिर उन्होंने उस भक्त को हृदय से लगाकर उसकी भक्ति की बड़ी बड़ाई की, और अनेक प्रकार से सान्त्वना दे उसे विदा किया। कई भक्तों ने आपके चरणों पर कुछ भेंट चढ़ाना चाहा और नहीं कहते हुए भी १०) चढ़ ही गए जिन्हें परमहंसजी महाराज ने यज्ञ-समिति के कोष में दे दिया।

रात्रि में कीर्तन और रासलीला यथा विधि हुई। आज लाफा के जमींदारिन साहिबाने पंडितों, अतिथियों तथा रंकों को अपनी ओर से भोजन कराया।

माघ शुक्ल १० संवत् २००० (ता. ३-२-४४) गुरुवार

आज भीड़ बहुत बढ़ गई थी। बस्ती में, रास्तों में, तालावों पर, यज्ञमेला में, यज्ञभूमि में नरमुण्ड ही नरमुण्ड दिखाई देते थे। श्रीमान्-भोजनालय में अतिथियों की संख्या बढ़ गई थी। दरिद्र नारायण-भोजनालय में भोजन करने वालों की संख्या १००० तक पहुंच गई थी।

आज श्रीमद्भागवत की समाप्ति का दिन था। श्रद्धालु स्त्री-पुरुषों ने चढ़ोत्री के लिए यथाशक्ति सामग्री और द्रव्य का आयोजन कर रक्खा था। यज्ञ-समिति ने भी अपनी शक्ति और प्रतिष्ठा के अनुकूल पत्र-पुष्प से विद्वान पंडित जी का जिन्होंने अपनी पीयूष पूर्ण वाणी से सारी जनता को इतने दिनोंतक मुग्ध कर रक्खा था, सन्मान किया और अपने को कृतार्थ माना।

दोपहर में लगभग १॥ बजे से अपने ही जिले के प्रसिद्ध कीर्तनकार और व्याख्याता पं. श्रीरामभरोसे शुक्ल का भाषण हुआ। विषय था—जीवन में धर्म का स्थान। मंगलाचरण तथा रामध्वनि के पश्चात् आपने अपने विषय का प्रतिपादन बड़ी सुन्दरता के साथ किया। आपने कहा—" कपड़े में सूत का, जीवन में प्राण का या भोजन में नमक का जो स्थान हो सकता है वही स्थान धर्म का जीवन में है। श्रीशंकराचार्य जी का कथन है कि धर्म समझाया नहीं जा सकता। वह तो धर्माचारियों के व्यवहार से ही समझने योग्य है। प्रत्येक स्थान से जैसा क्षितिज एक समान नहीं दिख सकता, इसी भांति धर्म की इदम इत्यम् परिभाषा नहीं हो सकती। जीवन और धर्म अलग अलग समझकर आचरण करने योग्य है। दूसरों के लिए कष्ट सहना ही धर्माचरण है, इत्यादि " अनेक सुंदर बातें कहते

रात्रि में श्री गजानन मोड़क का कीर्तन हुआ। कीर्तन का विषय था-सख्य भक्ति। श्री मोड़क जी उत्तम गायक हैं।

आज से नरियरा ग्राम की सुप्रसिद्ध रासलीला मण्डली की रासलीला आरंभ हो गई। यहां यह लिख देना उचित होगा कि नरियरा रासलीला मण्डली, नरियरा के मालगुजार श्री ठा. कौशलसिंह, उनके परिवार के कई सज्जन तथा मित्रों के उद्योग से आज कई वर्षों से स्थापित है। इस उद्योग की जड़ में केवल श्रीकृष्णचन्द्र के प्रति अपार भक्ति है। मण्डली के संचालकों ने कई बालकों और व्यक्तियों को मथुरा-वृन्दावन भेजकर तालीम दिलवाई है। ये अपना ग्राम छोड़कर अन्यत्र अपनी मण्डली कभी नहीं ले जाते। यह तो रत्नपुर निवासियों के प्रति उनकी महती कृपा थी, जो इस शुभ अवसर पर उन्होंने रासलीला-मण्डली लाकर प्रभु के चरणों में अपनी अपार भक्ति के साथ साथ अपनी सहृदयता और बन्धुत्व का परिचय दिया तथा यज्ञसमिति को इस सम्बन्ध में यहां तक कि भोजन-छाजन में भी एक पैसा व्यय करने नहीं दिया।

माघ शुक्ल ९ सं. २००० (ता. २-२-४४) बुधवार

ज्यों ज्यों दिन बीतते जाते थे, जनता की भीड़ बढ़ती जाती थी। कंवर्धा, पंडरिया, रायपुर और आरंग से भी बहुतेरे सज्जन सपरिवार आये थे। आचार्य महोदय की अध्यक्षता में यज्ञ-कार्य सुचारु रूप से चल रहा था। श्रीमद्भागवत के श्रोताओं में, स्त्रियां अधिक संख्या में दृष्टिगोचर होती थीं।

दोपहर १ बजे से कार्यक्रम के अनुसार श्री पं. जगदीशप्रसाद तिवारी बी. ए., एल-एल. बी. का गीता पर अत्यन्त विद्वतापूर्ण प्रवचन हुआ। आपने आर्य धर्म को ही मानव धर्म बतलाया, और यह भी कहा कि आर्य धर्म का बीज गीता है। श्री शंकराचार्य ने गीता के आधार पर ही "अद्वैत" की रचना की थी। गीता को आपने थके हुए प्राणियों में उत्साह भरने वाली बतलाया और इस बात को बड़े सुन्दर ढंग से समझाया कि यह किस प्रकार प्रकृति का मनुष्य से और मनुष्य का मनुष्य से परस्पर सम्बन्ध बतलाती है। कर्म की आवश्यकता और निष्काम कर्म की साधना भी आपने गीता से सिद्ध की।

श्रीतिवारीजी का दोनों दिनों का प्रवचन बड़ा ही मर्म-पूर्ण और हृदयग्राही रहा। आप धाराप्रवाह शुद्ध हिन्दी बोलते हैं, आपके शब्द इतने उपयुक्त और अर्थपूर्ण होते हैं जिनकी प्रशंसा नहीं हो सकती। बिलासपुर जिले को इस बात का गर्व होना चाहिए कि उसका एक निवासी युवक इतना योग्य है जो आगे चलकर एक दिन अपने अध्यवसाय और परिश्रम से देश के प्रथम श्रेणी के धार्मिक वक्ताओं में निःसन्देह स्थान पा सकेगा। श्री प्यारेलाल गुप्त उपमंत्री ने उचित शब्दों में श्री तिवारीजी को धन्यवाद दिया, और उपस्थित जनता से

ने उपर्युक्त शब्दों में सन्त महाराज के प्रति यज्ञ-समिति की ओर से उनकी महती कृपा के लिए आभार प्रदर्शन किया।

रात्रि में नित्य के अनुसार रामलीला होती रही।

माघ शुक्ल १३ सं. २००० (ता. ६-२-४४) रविवार

यज्ञ के सानंद सम्पन्न हो जाने के कारण कार्यकर्तागण परम प्रसन्न होकर उन ब्राह्मणों की विदाई का प्रबन्ध कर रहे थे, जो अतिथि रूप से आजाने के कारण उपवरणी निर्वाचित हो भिन्न भिन्न स्थानों पर या मन्दिरों में भजन-पूजन, पाठ, अभिषेक आदि कार्यों के लिए नियुक्त कर दिये गये थे। आज साधु-संतों तथा ब्राह्मणों का भोजन-कार्य विशद रूप से किया गया।

यज्ञ-मण्डप में नित्य पूजन और वेद पारायण होने के पश्चात् यज्ञ-समिति की ओर से २० ब्राह्मण-कुमारों का यथाविधि उपनयन-संस्कार कराया गया।

निश्चित् कार्यक्रम के अनुसार आशीर्वाद-ग्रहण-समारोह, अति काल हो जाने के कारण कल नहीं हो सका था जो आज १ बजे से आरंभ किया गया। इस अवसर पर यज्ञ-समिति के समस्त कार्यकर्ता, सदस्य, प्रतिष्ठित अतिथि और साधारण जन काफी संख्या में उपस्थित थे। महायज्ञ के पूज्य आचार्य महोदय ने समारोह का प्रारम्भ करते हुए सरल किन्तु सारगर्भित और ओजस्वी शब्दों द्वारा यज्ञ से पुरुषों का सम्बन्ध बताते हुए यज्ञ के पांच अंगों का वर्णन किया। फिर यज्ञ की आवश्यकता आदि बातों पर प्रकाश डालते हुए, चारों वेदों के मन्त्रों द्वारा विश्व में शांति-स्थापन तथा भारतवर्ष में धन, जन, गौ आदि पशु संपत्ति की समृद्धि के लिए ईश्वर से प्रार्थना, और जन-संघ को आशीर्वाद प्रदान करते हुए अपना भाषण समाप्त किया। आचार्य महोदय का यह भाषण इस ग्रन्थ में "यज्ञ का स्वरूप" शीर्षक से अन्यत्र प्रकाशित है। उनका आशीर्वाद उनके भाषण के एक अंश के साथ नीचे उद्धृत किया जाता है—

"इस कथन में अत्युक्ति नहीं है कि २००० विक्रम वर्ष में शांति-स्थापन के हेतु किये गए महायज्ञों में पहला स्थान मध्यप्रान्त विशेषतया रत्नपुर-(बिलासपुर) का है। भगवान के अनुग्रह तथा आप लोगों के अथक परिश्रम से आज श्री विष्णु महायज्ञ सविधि, सानंद और सोत्साह सम्पन्न हो गया। आप लोगों ने मुझ जैसे अल्पज्ञ को इस महत्वपूर्ण यज्ञ-कार्य के सविधि संचालन का सारा भार देकर अपनी उदारता का परिचय दिया है। अब आप मुझ से मेरे आचार्य होने के नाते शास्त्रानुसार आशीर्वाद की अभिलाषा करते होंगे और शास्त्र के आदेश से मेरा भी कर्तव्य हो जाता है कि मैं आप सब सज्जनों को आशीर्वचन सुनाऊं। अतः सर्वजगन्नियन्ता जगदाधार यज्ञपुरुष भगवान के अंगभूत देवगणों से प्रार्थना है कि—

हुए और गीता तथा रामायण से चुभते हुए उदाहरण देते हुए आपने अपना भाषण समाप्त किया। नियमानुसार उपमंत्री श्रीप्यारेलाल गुप्त ने आपको धन्यवाद दिया।

पश्चात् हरिनाम कीर्तन पूर्वक परम हंस श्री सत्यव्रत जी महाराज का भाषण आरंभ हुआ। आज आपने आचार के बिना कथन व्यर्थ है यहां से प्रारम्भ किया और कुछ अपनी बीती सुनाने लगे। फिर आपने भिन्न भिन्न भक्तों की गाथा संक्षेप में सुनाकर लोगों को यही उपदेश दिया कि प्रभु के चरणों में भक्ति रक्खो-प्रभु-भक्ति से अत्यन्त दुराचारी भी बिना मालूम हुए सुधर कर महात्मा हो जाता है, अतः मौत और भगवान का सदा स्मरण रखना चाहिए। यहां ऐसे ही पुण्य-कार्य होते रहें आदि आशीर्वाद देते हुए और शुभ कामनाएं तथा क्षमा याचना करते हुए परमहंसजी ने अपना अन्तिम भाषण समाप्त किया।

श्री प्यारेलाल गुप्त उपमन्त्री ने परमहंसजी का उनकी कृपा के लिए यज्ञ-समिति की ओर से आभार माना। यह सूचना भी दी गई कि परमहंस जी अभी और ठहरते पर उन्हें अखिल भारतीय-धर्म-संघ के कार्यकारिणी समिति के सदस्य होने के नाते उसकी आगामी बैठक में उपस्थित होना अति आवश्यक है, अतः उन्हें जाना पड़ रहा है। लोगों को यह भी बताया गया कि परमहंस जी महाराज के उद्योग से अनेक आश्रम और विद्यालय यू० पी० में चल रहे हैं और वे यह चाहते हैं कि रत्नपुर में भी श्रीविष्णुयज्ञ के स्मारक स्वरूप एक 'वेद-विद्यालय' की स्थापना की जाय।

सायंकाल में श्रीविष्णुमहायज्ञ के पूज्य आचार्य वेदाचार्य पं. भगवत्प्रसाद जी मिश्र की अध्यक्षता में ' मध्यप्रान्तीय वैदिक-साहित्य-सम्मेलन " हुआ। सम्मेलन में अनेक वैदिक शाखाओं के विद्वान, मध्यप्रान्तीय विद्वन्मंडली, श्री परमहंस सत्यव्रत जी महाराज तथा यज्ञ-समिति के कार्यकर्त्ता और अन्य स्थानों से आये हुए अतिथिगण उपस्थित थे। समस्त पण्डाल साधारण जन-वर्ग से भरा हुआ था।

काशी के वैदिकों द्वारा मंगलाचरण होने के पश्चात् प्रसिद्ध कथावाचक पं. रामदेव शर्मा व्यास रायपुर के प्रस्ताव तथा पं. देवीप्रसाद त्रिपाठी व्याकरणाचार्य प्रधानाध्यापक, रुक्मिणीदेवी रानीदेवी संस्कृत पाठशाला, बिलासपुर एवं पं. रामप्रताप शर्मा व्याकरणाचार्य, जौनपुर के अनुमोदन और समर्थन करने पर सभापति महोदय ने आसन ग्रहण किया। सभापति महोदय ने अपने भाषण में सम्मेलन के लिए हर्ष प्रकट करते हुए उपलब्ध वेद की शाखाओं, तथा वेद के अङ्ग-उपाङ्गों के विशद विवेचन के साथ वैदिक साहित्य का पूर्ण स्वरूप विद्वानों के सामने रखा। तत्पश्चात् वैदिक विधि, शाखाओं, वेद प्रचार की वर्तमान ह्रासावस्था, अर्थशैली, वेदों के प्रचार के ह्रास-का कारण, वेदों का प्रचार कैसे हो इत्यादि महत्व पूर्ण विषयों पर अनेक विद्वानों के प्रभावशाली भाषण हुए जिनका



सेठ राधाकृष्ण गाड़ोदिया, बिलासपुर



सेठ गुरुमुखराय, बिलासपुर



श्री लक्ष्मीनारायण दाऊ, रत्नपुर
कोषाध्यक्ष

श्री गेंदराम साव, श्री बद्रीनाथ साव, श्री पीलाराम साव, पं. बेनीराम शर्मा, रायसाहब पं. रामसनेही गौरहा (सकरी), श्री गोविन्दराव शिंगाले, श्री कौशलप्रसादसिंह विशेषरसिंह (नरियरा), पं. चिन्तामणि, पं. बंशीलाल पाण्डेय (कोरबा). श्री जगन्नाथ प्रसाद (खैरा), पं. पुरंजय प्रसाद लालजी शर्मा, श्री दामोदर प्रसाद गुप्त, श्री भुवनलाल साव, श्री सोनू बद्रीसाव, श्री डा० गोविन्दप्रसाद शर्मा, श्री नाथूराम वैद्य, श्री मोहनलाल पोद्दार, श्री शंभूनाथ पुजारी, श्री गोविन्दप्रसाद द्विवेदी, श्री शिवप्रसाद मास्टर, श्री फन्दूराम टेटवार, श्री सीताकान्त झा, आदि सज्जनों की अनुपम सेवाओं की जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। श्री गंगाप्रसाद दाऊ आरंग, श्री झब्बूलाल दाऊ आरंग, श्री लक्ष्मणप्रसाद दाऊ आरंग, श्री रामकुमार दाऊ गोड़िहारी, श्री भजनलाल दाऊ गोड़िहारी, श्री दीनानाथ दाऊ गोड़िहारी, पं. बद्रीप्रसाद भरारी तथा पं कैलाशचंद भरारी भी हमारे धन्यवाद के पात्र हैं जिन्होंने दान एकत्र कराने में समिति की सहायता की थी।

श्री गेंदलाल साव (तखतपुर), श्री शीतलाशरण अग्रवाला (आरंग) और पं. रमाशंकर पाण्डेय ने जो पूजा-आर्चा संबंधी काम सम्हाला, श्री पुंडलीकराव नगरकर, श्री गोविन्दप्रसाद अग्रवाले और श्री भगवंतराव वासिंग ने जो कार्यालय और हिसाब-किताब का काम परिश्रमपूर्वक किया वह परम सराहनीय था।

श्री मनराखन मिस्त्री (बिलासपुर), श्री बहादुरराम गुप्त, श्री श्यामलाल पोद्दार, पं. दुखीराम अवस्थी, श्री विश्वनाथप्रसाद शर्मा, पं. ठाकुरप्रसाद दीक्षित पं. गुलाबप्रसाद पुजारी, पं. लक्ष्मीप्रसाद पुजारी, पं. बल्देवप्रसाद तिवारी और श्री गरीबराम अगरवाले वैद्य की सेवायें भी उल्लेखनीय हैं। पं रामदेव शर्मा व्यास ने अभिनन्दन पत्र की रचना करके तथा विविध प्रकार से यज्ञ-समिति को सहायता देने में तत्परता दिखलाई, तथा ठाकुर मेहरबानसिंह ने यज्ञ विवरण का मसाला एकत्र करने तथा कुछ समय तक यज्ञ का हिसाब-किताब रखने में जो परिश्रम किया उसके लिए यज्ञ-समिति उनके प्रति कृतज्ञता प्रकाश करती है। स्वयंसेवकगण तथा उनके अधिनायकों की सेवाओं की प्रशंसा हो ही नहीं सकती।

उन धनी-मानियों, रईस-जमींदारों, व्यापारियों, सरकारी आफिसरों, साधारण जनता तथा कृषकों का भी यज्ञ समिति अत्यन्त उपकार मानती है जिन्होंने धन-धान्य, घी, यव, तथा अन्य सामग्रियों का दान देकर; या कार्य की सम्पन्नता के हेतु दरी-गलीचा शामियाना, वर्तन आदि पहुंचाकर; या अन्य प्रकार से सहायता दे अपने को पुण्य और यश का अधिकारी बनाया है।

काशी के परम विद्वान श्री पं. गोपालचन्द्र मिश्र ब्रह्मचारी ने इस यज्ञ की निम्न लिखित ५ विशेषताएं बतलाई हैं:—

आच्या जानु दक्षिणतो निषद्येमं यज्ञमभि गृणीत विश्वे ।
मा हिंसिष्ट पितरः केन चिन्नो यद्व आगः पुरुषता कराम ॥

—यजुर्वेद ।

हे पालक देवगण! आपलोग सब मिलकर रक्षा के लिए दक्षिण की ओर बैठकर इस यज्ञ की चर्चा-प्रशंसा कीजिए। हमलोगों से मानवता धर्म वश जो अपराध हुए हैं उन्हें क्षमा कीजिए; तथा हम लोगों की किसी प्रकार से हिंसा न कीजिए।

इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहि चित्तिं दक्षस्य सुभगत्वमस्मे ।
पोषं रयीणामरिष्टिं तनूनां स्वात्मानं वाचः सुदिनत्वमन्हाम् ॥

—ऋग्वेद ।

हे परमैश्वर्ययुक्त भगवन्! हमलोगों को उत्तम धन, कार्यकुशलता की प्रसिद्धि, सौभाग्य, धनरक्षणसमर्थ बुद्धि शरीर का अच्छापन (बल) वाणी का माधुर्य और अच्छे दिन देखने को दीजिए।

संवर्चसा पयसा सन्तनूभिरगन्महि मनसा सं शिवेन ।
त्वष्टा सुदत्रो विदधातु रायोऽनु मार्ष्टु तन्वो यद्विलिष्टम् ॥

—यजुर्वेद ।

हम वैदिक अनुष्ठानों से वर्चसयुक्त रहें, अर्थात् वेदप्रिय और तत्कथितधर्मशील बनें। हम गवादि दुग्ध तथा अभिजन प्राप्त करें। हमारा मन सत्पथगामी बने। ज्ञानशील त्वष्टा देवता हमें धन प्रदान करें और हमारे शरीर की पापवृत्तियों को दूर करें।

मानो अज्ञाता वृजना दुराध्यो माशिवासोऽवक्रमुः ।
त्वया वयं शश्वतीरपोऽतिशूर तरामसि ॥

—सामवेद ।

हमारे ऊपर अज्ञात हिंसक दुष्ट मानसिक व्याधियों तथा अमङ्गल प्रवृत्तियों का आक्रमण न होवे। हम अपने कर्मों की सफलता प्राप्त करें।

इन्द्र क्रतुं न आभर पिता पुत्रेभ्यो यथा ।
शिक्षा णो अस्मिन् पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ॥—अथर्ववेद ।

हे भगवान्! हम लोगों को यज्ञविषयक ज्ञान प्राप्त होवे। जिस प्रकार पिता अपने पुत्र को सदुपदेश देता है उसी प्रकार हमें इस संसार के अनुरूप शुद्ध व्यवहार की शिक्षा दीजिए। हम आपकी कृपा से चिरकाल पर्यंत जीवन लाभ करते हुए इस लोक के सुखों का अनुभव करते रहें।

श्री गेंदराम साव, श्री बद्रीनाथ साव, श्री पीलाराम साव, पं. बेनीराम शर्मा, रायसाहब पं. रामसनेही गौरहा (सकरी), श्री गोविन्दराव डिंगाले, श्री कौशलप्रसादसिंह विशेषरसिंह (नरियरा), पं. चिन्तामणि. पं. बंशीलाल पाण्डेय (कोरबा), श्री जगन्नाथ प्रसाद (खैरा), पं. पुरंजय प्रसाद लालजी शर्मा, श्री दामोदर प्रसाद गुप्त, श्री भुवनलाल साव. श्री सोनू बद्रीसाव, श्री डा० गोविन्दप्रसाद शर्मा, श्री नाथूराम वैद्य, श्री मोहनलाल पोद्दार, श्री शंभूनाथ पुजारी, श्री गोविन्दप्रसाद द्विवेदी, श्री शिवप्रसाद मास्टर, श्री फन्दूराम टेटवार. श्री सीताकान्त झा, आदि सज्जनों की अनुपम सेवाओं की जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। श्री गंगाप्रसाद दाऊ आरंग, श्री झब्बूलाल दाऊ आरंग, श्री लक्ष्मणप्रसाद दाऊ आरंग, श्री रामकुमार दाऊ गोड़िहारी, श्री भजनलाल दाऊ गोड़िहारी, श्री दीनानाथ दाऊ गोड़िहारी, पं. बद्रीप्रसाद भरारी तथा पं कैलाशचंद भरारी भी हमारे धन्यवाद के पात्र हैं जिन्होंने दान एकत्र कराने में समिति की सहायता की थी।

श्री गेंदलाल साव (तखतपुर), श्री शीतलाशरण अग्रवाला (आरंग) और पं. रमाशंकर पाण्डेय ने जो पूजा-आर्चा संबंधी काम सम्हाला, श्री पुंडलीकराव नगरकर, श्री गोविन्दप्रसाद अग्रवाले और श्री भगवंतराव वासिंग ने जो कार्यालय और हिसाब किताब का काम परिश्रमपूर्वक किया वह परम सराहनीय था।

श्री मनराखन मिस्त्री (विलासपुर), श्री बहादुरराम गुप्त, श्री श्यामलाल पोद्दार, पं. दुखीराम अवस्थी. श्री विश्वनाथप्रसाद शर्मा, पं. ठाकुरप्रसाद दीक्षित पं. गुलाबप्रसाद पुजारी, पं. लक्ष्मीप्रसाद पुजारी, पं. बल्देवप्रसाद तिवारी और श्री गरीबराम अगरवाले वैद्य की सेवायें भी उल्लेखनीय हैं। पं रामदेव शर्मा व्यास ने अभिनन्दन पत्र की रचना करके तथा विविध प्रकार से यज्ञ-समिति को सहायता देने में तत्परता दिखलाई, तथा ठाकुर मेहरबानसिंह ने यज्ञ विवरण का मसाला एकत्र करने तथा कुछ समय तक यज्ञ का हिसाब-किताब रखने में जो परिश्रम किया उसके लिए यज्ञ-समिति उनके प्रति कृतज्ञता प्रकाश करती है। स्वयंसेवकगण तथा उनके अधिनायकों की सेवाओं की प्रशंसा हो ही नहीं सकती।

उन धनी-मानियों, रईस-जमींदारों, व्यापारियों, सरकारी आफिसरों, साधारण जनता तथा कृषकों का भी यज्ञ समिति अत्यन्त उपकार मानती है जिन्होंने धन-धान्य, घी, यव, तथा अन्य सामग्रियों का दान देकर; या कार्य की सम्पन्नता के हेतु दरी-गलीचा शामियाना, बर्तन आदि पहुंचाकर; या अन्य प्रकार से सहायता दे अपने को पुण्य और यश का अधिकारी बनाया है।

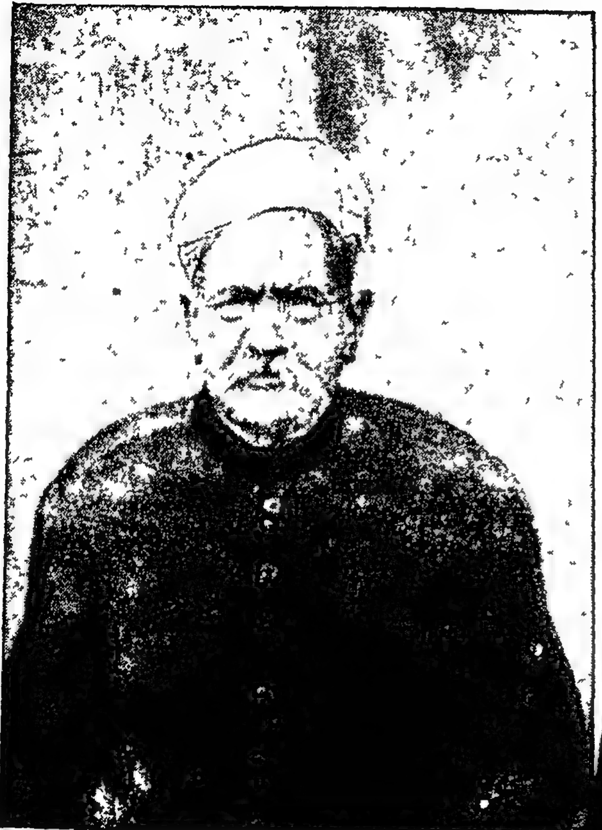
काशी के परम विद्वान श्री पं. गोपालचन्द्र मिश्र ब्रह्मचारी ने इस यज्ञ की निम्न लिखित ५ विशेषताएं बतलाई हैं:—



सेठ गोविन्दराम, बिलासपुर



सेठ बनवारीलाल, बिलासपुर



सेठ गोविन्दराम शिवनारायण, रायगढ़





सेठ नारायणदास डागा, आरंग

एवं दिनानि नवमण्डप पूजनेन
स्वाहा नमस्कृत प्रदक्षिण पूर्वकेण।
लक्षत्रयेण खलुपाद युतेन तेन,
होमेन पूर्ति मगमच्छुभ एष यज्ञ: ॥१२॥

हिन्दू जाति सुमेलनं सुविपुलं साहित्य सम्मेलनं,
जातं सत्कविमेलनं पुनरहो संगीत सम्मेलनं।
पश्चात् वैदिक मेलनं सुविदुषां शास्त्रार्थ सम्मेलनं,
सर्वेषामपि कामदं शुभकरं विष्णोःपदोमेलनम् ॥१३॥

एवं कार्याणि कृत्वा बहुविधिनियमैश्चापि दानानि दत्वा,
हुत्वा पूर्णाहुतिं वैह्यवभृथ कलशैश्चापिस्नात्वा सवर्गः।
श्रुत्वाशीर्वाद मंत्रान् द्विजवर पठितानक्षतांश्च गृहित्वा,
लब्धापुण्यं कृतार्थोऽभवदधिक यशा राजितो रत्नपुरः॥१४॥

यथेन्द्रयागे सुखदे प्रयागे, गुरुर्गरीयानखिलार्थदोऽभूत।
सद्रत्नपूरेऽखिलकामपूरे दत्तप्रसादो भगवत्प्रसादः ॥१५॥

धर्माचार्यं विमल यशसं कर्मशूरञ्च दृष्ट्वा,
गोपालं सर्वपालं बुधजन मनोहारिभूतञ्चमत्वा।
नत्वागोविप्रदेवान् मख समिति कृते स्वस्तिवाक्यञ्च दत्वा,
कृत्वा यज्ञस्य चित्रं सुविमल चरितं याचते रामदेवः ॥१६॥

सूर्याऽचन्द्रमसौयावत् यावत्सप्तर्षयो दिवि।
तावद्रत्नपुरस्यास्यभवन्तुसुखिनो जनाः ॥१७॥

माघेसिते पूर्णिमायां शुभे मङ्गलवासरे।
लिखितं रामदेवेन श्रीयज्ञ चरितामृतम् ॥ १८ ॥



१. वर्तमान समय में यह भारत का सर्व प्रथम यज्ञ है जिसमें आचार्य का यज्ञान्त-भाषण हुआ।

२. यज्ञ से साक्षात सम्बन्ध होने वाले पात्रों में मृत्तिका-पात्रों का स्थान नहीं था।

३. यज्ञ-स्थान में समागत विद्वानों के शास्त्रीय प्रश्नों का उत्तर आचार्य महोदय द्वारा समुचित रूप से शास्त्र प्रमाणानुसार सन्तोष-प्रद दिया जाता था।

४. अनाहूत ब्राह्मणों का भी सन्तोष-प्रद पूर्ण सत्कार हुआ।

५. इस प्रकार के विशाल आयोजन में जहां अनगिनती जनता तथा दूर दूर के विद्वान एकत्र हुए थे, किञ्चित मात्र विघ्न की संभावना भी नहीं हुई और सम्पूर्ण कार्य सानन्द सम्पन्न हुआ।

इन विशेषताओं का सारा श्रेय पूज्य आचार्य महोदय तथा उस परम पिता परमात्मा को है जिनके चरणों में अनन्त प्रणाम निवेदन कर यह विवरण हर्ष पूर्वक समाप्त किया जाता है।

यज्ञ की समाप्ति पर हर्ष-प्रकाश

(रचयिता—पं. रमाशंकर पाण्डेय)

श्रीमद्रत्नपुरे प्रकाम सुखदे सद्रत्नशोभायुते,
विष्णोर्याग महोत्सवोमतिमतामानन्दसंवर्धक :।
लोकानां बहुवित्तभार विलसत् संभारशोभायुतः,
विष्णोरेव कृपाकटाक्ष कलया नूनं समाप्तिं गतः।
विष्णोर्याग महोत्सवः समुदितः सर्वोपकारास्पदम्,
नाना शास्त्रविचार चरुमतिभिः यज्ञाङ्ग सम्पादकैः।
वेदाचार्यवरैः प्रधानसुबुधैः कर्माङ्ग विज्ञातृभिः,
सानन्दं परमोपकार मतिभिः पूर्णीकृतः सादरम्।
पूर्वपुण्यविभवेन सुलोके, सर्व सौख्यमहिता परमाता,
सज्जनैक लसिताविमलायाराजते मतिरियं हि प्रमोदात्।
यस्यप्रतापेन प्रकाममद्य यज्ञाङ्ग सम्पूर्तिरिहाद्यजाता,
प्रमोदसम्पूर्णा जनाः समन्तात् पुण्यस्यभारं सहसालभन्ते।
रमाशङ्करो विष्णुसेवा सुसक्तः।
प्रमोदाज्जनान् वक्ति संतोषयुक्तम्॥
भवेत् सर्वदा सन्मतिः सज्जनानाम्।
मखे द्रव्यदातुश्चसंभार भर्तुः॥



स्वयंसेवक दल
श्री विष्णु महायज्ञ, रत्नपुर



कार्य–कर्त्ता गण
श्री विष्णु महायज्ञ, रत्नपुर

(१२) पूजा-आर्चा-समिति के सदस्य :—

१. पं. कपिलनाथ द्विवेदी २. सेठ लक्ष्मीचंद ३. पं. कैलाशचंद्र शुक्ल भरारी ४. पं. वंशीलाल अकलतरी ५. श्री पीलाराममाव ६. पं. हरवंश प्रसाद वामहू ७. पं. चंद्रिका प्रसाद वामहू ८. पं. सदाशिवराव शेंडे जाली ९. पं. बलभद्र प्रसाद पुजारी १०. पं. शंभूनाथ पुजारी ११. पं. बापूसाहब शास्त्री १२. पं. रामसनेही गौरहा १३. श्री बद्रीनाथसाव बिलासपुर १४. पं. चिंतामणि प्रसाद १५. पं. वंशीलाल पांडेय १६. पं. पुंडलीकराव नगरकर (मंत्री)

(१३) स्वास्थ्य- रक्षा-समिति के सदस्य :—

१. डा. गोविन्द प्रसाद आयुर्वेदाचार्य २. श्री गरीबराम अगरवाला वैद्य ३. पं. सखाराम पंत ४. श्री मोहनलाल पोद्दार ५. श्री नाथूराम वैद्य (मंत्री)

(१४) सेवा-समिति के सदस्य :—

१. श्री हरिहर प्रसाद अगरवाला २. पं. उमाप्रसाद पाण्डेय ३. श्री बुलाकीराम पोद्दार ४. श्री घनश्याम प्रसाद (बाबूजी) ५. पं. लालजी शर्मा ६. पं. नानासाहब दिवस्कर (मंत्री)

(१५) व्यय का अनुमान-पत्र, अस्थायी रूप से नीचे लिखे अनुसार निश्चित हुआ—

१, यज्ञ-मण्डप-निर्माण (पंडाल, रोशनी, आदि)	३०००)
२. अतिथि-सत्कार	३०००)
३. प्रचार-कार्य (कार्यालय, निमंत्रण और स्मारक ग्रंथ छपाई आदि)	३०००)
४. पूजा-आर्चा (दान, दक्षिणा, यज्ञ-सामग्री, आदि) ...	७०००)
५. स्वास्थ्य-रक्षा-विभाग	५००)
६. सेवा-विभाग	५००)
७. अन्य-व्यय	३०००)
जोड़ ...	२००००)

नोट—आवश्यकतानुसार इसमें परिवर्तन किया जा सकेगा।

परिशिष्ट

(१)

श्रीविष्णु महा यज्ञ-समिति की नियमावली



संकल्प—यह यज्ञ "ईश्वर प्रीत्यर्थ निष्काम भाव" से किया जायगा। स्थायी—समिति—इस शुभ उद्देश्य को लेकर जो "श्रीविष्णु महायज्ञ" का आयोजन किया जा रहा है उसे सानन्द और सुचारु रूप से सम्पादन करने के लिए १ स्थायी समिति तथा भिन्न २ उपसमितियों की स्थापना होगी। सब से बड़ी और प्रथम समिति "स्थायी समिति" कहलाएगी। प्रत्येक चन्दा देने वाला व्यक्ति इस समिति के सदस्य समझे जावेंगे पर कार्यवाही में मत (वोट) देने का अधिकार उन्हें ही होगा जो कम से कम ५) रु. चन्दा देवेंगे। स्थायी समिति और कार्य-कारिणी-समिति चाहे तो किसी भी व्यक्ति को बिना चन्दा दिये किसी भी समिति का सदस्य बना सकेगी। स्थायी समिति के पदाधिकारी नीचे लिखे अनुसार होंगे।

अध्यक्ष–१, उपाध्यक्ष–६, मंत्री–१, उपमंत्री–३, कोषाध्यक्ष–१,

स्थायी—समिति की बैठक जितनी बार आवश्यकता होगी, हुआ करेगी। कोरम कम से कम २५ सदस्यों की उपस्थिति से माना जावेगा। स्थायी—समिति की बैठक करने के लिए कम से कम १० दिन पहिले नोटिस देना आवश्यक होगा।

कार्य—कारिणी—समिति

स्थायी समिति के सदृश बड़ी समिति की बैठक बराबर नहीं बुलाई जा सकेगी, इसलिए वह एक कार्य-कारिणी-समिति की स्थापना करेगी। इस समिति के सदस्यों की संख्या कम से कम २१ होगी।

स्थायी समिति के सभी पदाधिकारी इसके भी पदाधिकारी होंगे। कोरम ७ सदस्यों की उपस्थिति से माना जावेगा जिनमें दो सदस्य ऐसे रहेंगे जो पदाधिकारी न होंगे। बैठक के लिए ३ दिनों की नोटिस की ज़रूरत होगी।

कार्य—कारिणी—समिति के सुभीते के लिए स्थायी—समिति निम्न लिखित उप-समितियों की स्थापना करेगी—

(१) द्रव्य संचय-समिति (२) यज्ञ मण्डप निर्माण-समिति (३) अतिथि सत्कार-समिति (४) प्रचार-समिति (५) मेला-समिति (६) पूजा आर्चा-समिति (७) स्वास्थ्य रक्षा-समिति और (८) सेवा समिति।



श्री प्रधान लालमनसिंह जमीन्दार, मातिन



सेठ गेदरामसाव बिलासपुर



यज्ञान्त अवभृत स्नान का दृश्य – श्री विष्णु महायज्ञ, रत्नपुर

३. समय—महायज्ञ माघ सुदी २ सं० २००० दिन गुरुवार (ता. २७-१-४४) से आरंभ होकर नौ दिन में समाप्त होगा। तत्पश्चात् गौ ब्राह्मण तथा दरिद्र नारायण के भोजनादि विविध कार्यों में तीन दिन और लगेंगे। इसके बाद ही रतनपुर में प्रतिवर्ष होनेवाला माघ पूर्णिमा का मेला आरंभ हो जाता है।

४. स्थान—महायज्ञ मण्डप तथा तत्सम्बन्धी भिन्न भिन्न मण्डपों और शिविरों की रचना के लिए श्रीराम टेकरी की तलहटी और श्रीवृद्धेश्वरनाथ (बूढ़ा महादेव) के मंदिर के बीच की पवित्र देवभूमि चुनी गई है। निकट ही में सुंदर निर्मल जल वाला श्रीविक्रम (भिखमा) तालाब है तथा सुरम्य अमराइयां हैं। पहाड़ी पर से रत्नपुर तथा आसपास की स्वाभाविक छटाएँ और अनेक मनोरम दृश्य देखते ही बनते हैं।

५. आचार्य—काशी के प्रकाण्ड विद्वान, गवर्नमेंट क्वीन्स संस्कृत कालेज के प्रोफेसर, जयपुर राजकीय भूतपूर्व कथा भट्ट, श्रौतस्मार्त कर्म-काण्डपारीण, धर्मरत्न, वैदिक भूषण पण्डित श्री भगवत्प्रसाद शर्मा मिश्र वेदाचार्य ने इस महायज्ञ के आचार्य का पद कृपापूर्वक स्वीकार किया है।

६. अन्य योजनाएँ—प्रबंध किया जा रहा है कि यज्ञकाल में बाहर से प्रसिद्ध विद्वान बुलाये जांय और उनके विद्वत्तापूर्ण भाषण या प्रवचन गीता, रामायण या अन्य धार्मिक विषयोंपर कराये जांय जिससे दर्शकों और श्रोताओं के हृदय में धार्मिक भावनाएँ जागृत हों और वे कुछ शिक्षा लेकर घर लौटें। रात्रि में प्रसिद्ध कीर्तनकारों के कीर्तन, रामलीला और रासलीला कराने का भी विचार हो रहा है। इसी सुअवसर पर प्रान्तीय हिन्दू-सभा का भी अधिवेशन यहां होगा जिससे अनायास ही भारत प्रसिद्ध हिन्दू-नेताओं के दर्शन हो जायगें तथा उनके सुन्दर भाषण भी सुनने को मिलेंगे। प्रान्तीय तथा छत्तीसगढ़ विभाग साहित्य और सङ्गीत तथा कवि सम्मेलन के कार्यकर्तागण भी इसी अवसर पर यहां अपना वार्षिक अधिवेशन करना चाहते हैं। यदि उन्होंने समय पर इसकी सूचना दी तो उसका भी प्रबंध किया जा सकेगा।

७. श्री विष्णु महायज्ञ—स्मारक ग्रंथ—महायज्ञ के समाप्त होने के पश्चात् " श्री विष्णु महायज्ञ (रत्नपुर) स्मारक ग्रंथ " छपाने और प्रकाशित करने का आयोजन किया गया है, जिसमें रत्नपुर का प्राचीन इतिहास उसके प्रसिद्ध देव मंदिर तथा ऐतिहासिक स्थानों का चित्र, महायज्ञ और तत्सम्बन्धी प्रबंध का विस्तृत वर्णन, श्री यज्ञ भगवान तथा उसके पूजनीय आचार्य और अन्य विद्वानगण जो यज्ञ में योग देंगे उनका फोटो, यज्ञ से सम्बन्ध रखनेवाले प्रायः सभी कार्यकर्ताओं की नामावली तथा उनके फोटो, २००) और उससे अधिक चन्दा या दान देनेवालों का फोटो, आडीटर द्वारा जांच किया हुआ उनके सर्टीफिकेट से संयुक्त आय-व्यय का हिसाब, आदि प्रायः सभी जानने योग्य बातों का समावेश इस ग्रंथ में होगा। आपलोगों को ज्ञात होगा कि भारतवर्ष के अनेक स्थानों पर विक्रम संवत् २००० के समाप्त होने के उपलक्ष में उत्सव मनाने का आयोजन हो रहा है। उज्जैन में तो स्वयं ग्वालियर नरेश इस उत्सव

(२)

आयोजन-पत्र*

यतो धर्मस्ततो जयः

परम शुभ और कल्याणकारी समाचार !

छत्तीसगढ़ की प्राचीन राजधानी पुण्य-भूमि श्री रत्नपुर में विक्रम संवत्
२००० समाप्त होने के उपलक्ष में

श्री विष्णु महायज्ञ का विराट आयोजन

१. प्राक्कथन—भगवान ने 'यज्ञ कर्मसु कौशलम्' कह कर सभी वैदिक कर्मों में यज्ञ को ही प्रधान बताया है। श्रुति तो उसे साक्षात् विष्णु रूप मानती है—"यज्ञो वै विष्णुः।" सामूहिक रूप से यज्ञ में ध्वनित मन्त्र शब्दों से धारण, पालन, वहन आदि विष्णु शक्तियां प्रसन्न होती हैं, वायुमण्डल शुद्ध होता है। स्मृति का वचन है कि अग्नि में दी हुई आहुति सूर्यलोक पहुंचती है, और सूर्य से वृष्टि, वृष्टि से अन्न और अन्न से प्रजा उत्पन्न होती है। वृक्ष प्रचुर मात्रा में फूल फल देते हैं। विश्व में सुख शांति और समृद्धि की वृद्धि होती है। भगवान श्रीकृष्ण गीता में कहते हैं—"हे अर्जुन, यज्ञ से बचा हुआ अन्न और यज्ञसे बचे हुए समयमें सिझाया हुआ अन्न अमृतके समान है। इस अन्न को खानेवाले पुरुष सनातन ब्रह्म को प्राप्त करते हैं। जो यज्ञ नहीं करता उसका इहलोक भी बिगड़ जाता है परलोक की तो बात ही जाने दो।" इस प्रकार यज्ञ ऋद्धि सिद्धि को देनेवाला प्रत्येक किसान, गृहस्थ, राजा, रंक सभी के लिए कल्याणप्रद और मंगलकारी है। और सर्वव्यापक ब्रह्म की तो यह विहार भूमि ही है।

२. आयोजन—यह जानकर समस्त हिन्दू भाइयों तथा अन्य धर्म प्रेमियों को अपार हर्ष होगा कि ऊपर दिये हुए अवतरणों से प्रभावित होकर तथा श्रीविष्णु महायज्ञ की महत्ता को समझकर और उसकी आवश्यकता का अनुभवकर छत्तीसगढ़ की प्राचीन राजधानी पुण्य-भूमि श्री रत्नपुर में उसका आयोजन किया जा रहा है। यज्ञ सम्बन्धी समस्त कार्यों को सुचारु रूप से चलाने के लिए स्थायी-समिति की स्थापना हो चुकी है और उसका प्रबंध-विधान स्वीकृत कराया जा चुका है। कार्यकारिणी समिति की रचना हो गई है और भिन्न भिन्न उपसमितियाँ जैसे—द्रव्य संचय उ० स०, यज्ञ-मण्डप-निर्माण उ० स०, प्रचार उ० स०, मेला उ० स० स्वास्थ्य रक्षा उ० स० आदि उपसमितियों का भी संगठन किया जा चुका है। यज्ञ-सेवक-दल [वालन्टियर कोर] का भी निर्माण किया जा रहा है।

* यह आयोजन पत्र यज्ञ होने के कुछ मास पहले सर्वसाधारण में प्रचार की दृष्टि से प्रचुर संख्या में वितरण किया गया था।

यज्ञ-काल के प्रतिदिन का कार्य-क्रम पीछे छपाकर वितरण किया जावेगा।

यज्ञ तथा उससे सम्बन्ध रखनेवाली किसी भी बात की पूछताछ के लिए आप नीचे लिखे सज्जनों से स्वयं मिलाकर या पत्र द्वारा जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। प्रत्येक रकम जो पटेगी उसकी रसीद दी जावेगी।

१ श्री पं० लेखराम मालवीय, प्रधान मंत्री, श्रीविष्णु महायज्ञ समिति, पो० रत्नपुर, जिला विलासपुर सी० पी०।

२ श्री लक्ष्मीनारायण दाऊ, कोषाध्यक्ष, श्रीविष्णु महायज्ञ समिति, पो० रत्नपुर, जिला विलासपुर।

३ श्री पं० बापू साहब शास्त्री (मालगुजार रत्नपुर) उपाध्यक्ष, श्रीविष्णु महायज्ञ समिति, चांटापारा, विलासपुर।

---

(३)

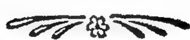
संवत् २००० समाप्त होने के उपलक्ष में श्रीविक्रम-महोत्सव।

श्री विष्णु महायज्ञ रत्नपुर।

माघ सुदी २ संवत् २००० (ता: २७-१-४४) से आरम्भ।

स्थानः—श्री रामटेकड़ी की तराई और श्री वृद्धेश्वरनाथ मंदिर के बीच की पवित्र भूमि।

❁ कार्य-क्रम ❁



१. माघ कृष्ण १५ मंगलवार ता. २५-१-४४—पूजनीय आचार्य महोदय तथा अन्य विद्वानों का स्वागत और जुलूस।

२. माघ शुक्ल १ बुधवार ता. २६-१-४४— सर्व प्रायश्चित कर्म।

३. माघ शुक्ल २ गुरुवार ता. २७-१-४४—प्रातःकाल से गणपति पूजनादि पूर्वांग, ब्राह्मण वरण, मण्डप प्रवेश, वास्तु पूजन, मंडप पूजन, अग्नि मंथन, अग्नि स्थापन, प्रधान पूजन, ग्रहयोगिनी क्षेत्रपालादि पूजन।

अन्यकार्य-२ बजे दिन से सन्ध्यापर्यन्त प्रसिद्ध विद्वान और वक्ता श्री पं. रामरत्न दीक्षित तिरोड़ा निवासी द्वारा श्रीमद्भागवत माहात्म्य वर्णन।

९ बजे रात्रि से ११ बजे पर्यंत प्रसिद्ध कीर्तनकार श्रीविष्णुबुवा कालविंठ हरिदास (काशी-निवासी) का कीर्तन।

को बड़े धूमधाम के साथ मनाने जा रहे हैं। सो यह ग्रंथ सदैव इस बात का स्मरण दिलावेगा कि आपलोगों ने भी किस प्रकार इस लहुरी काशी रत्नपुर में इस महत्वपूर्ण महायज्ञ को विक्रम संवत् २००० में करके उत्सव मनाया तथा पुण्य कमाया था। भविष्य में जो जहां कहीं यज्ञ करना चाहेंगे उनके लिए यह ग्रंथ पथ-प्रदर्शन का भी काम देगा।

८. ठहरने का सुभीता—यात्रियों और दर्शकों के सुभीते के लिए **'दर्शक-निवास'** की रचना करने का आयोजन हो रहा है जहां वे परिवार सहित ठहर सकेंगे। इस प्रबंध का खर्च निकालने के लिए लागत मात्र किराया लिया जावेगा। जो सज्जन यहां ठहरना चाहें उनका आवेदन-पत्र पौष शुक्ल ६ सं० २००० (ता० १-१-१९४४) तक मंत्री, यज्ञ समिति, पो० रत्नपुर, जिला बिलासपुर के पास आ जाना चाहिए। इसके सिवाय एक छोटासा औषधालय, उपहारगृह, भोजनालय, विश्रांति-स्थान आदि का भी प्रबंध रहेगा।

९. दुकानदार और व्यापारियों के लाभ की बात—महायज्ञ के अवसर पर दर्शकों की बड़ी भीड़ होती है। दूर दूर से लोग बाल बच्चों सहित यज्ञ-भगवान के दर्शन निमित्त आते हैं। रत्नपुर में महायज्ञ की समाप्ति के बाद ही माघ पूर्णिमा का मेला आरंभ हो जाता है। छत्तीसगढ़ के प्रायः सभी जमीन्दारियों और स्टेटों से उनके शासकों के आने की संभावना है। अतः यज्ञकाल में यज्ञमेला का भी प्रबंध किया जा रहा है। जो लोग इस मेले में दुकान रखना चाहेंगे उन्हें बनी बनाई दुकान किराये से मिल सकेगी। बिना मेला-समिति की आज्ञा के कोई वहां दुकान या फेरी न लगा सकेगा। अतः व्यापारियों और दुकानदारों को मंत्री के पास पत्र व्यवहार कर अभी से अपनी दुकान रिजर्व करा लेना चाहिए।

१०. आपका कर्तव्य—अब आपका कर्तव्य हो जाता है कि इस शुभ और पवित्र कार्य में हृदय और हाथ खोलकर सहायता दीजिए। न जाने आप कितने रुपये नाच तमाशा, सिनेमा, पान बीड़ी और सिगारेट में फूंक देते हैं। न जाने आप कितनी रकम मन या बेमन से भिन्न भिन्न कार्यों के लिये चंदा के रूप में दे देते हैं। आपके ऊपर हमारा कोई दबाव नहीं है। यदि आप सच्चे हिन्दू हैं, यदि आपके हृदय में धर्म के प्रति सच्ची आस्था है, यदि आप सोचते हैं कि इस कार्य में दान देने से आपको थोड़ा भी पुण्य होगा, यदि आपको विश्वास है कि यज्ञादि मंगलमय कार्यों से हिन्दुओं में धार्मिक प्रवृत्तियों की जागृति होगी और उनका भविष्य सुधरेगा तथा उनका कल्याण होगा तब आपका यह निश्चित कर्तव्य हो जाता है कि आप महायज्ञ को सर्वाङ्ग सुन्दर और सम्पूर्णतया सफल बनाने लिए तन, मन, धन से सहायता दीजिए। छत्तीसगढ़ के राजा, जमींदारों से हमारी विशेष प्रार्थना है क्योंकि उन्हीं के बल पर छत्तीसगढ़ का राज्य चलता था और जब उनकी प्राचीन राजधानी में यह शुभ-कार्य हो रहा है तब उन्हें चाहिए कि अत्यन्त उदारतापूर्वक इसमें हाथ बटावें और यज्ञकाल में अपने रनिवास सहित रत्नपुर में पधारकर यज्ञ भगवान का दर्शन करें और आचार्य महोदय का आशीर्वाद ग्रहण करें।

यज्ञ-काल के प्रतिदिन का कार्य-क्रम पीछे छपाकर वितरण किया जावेगा।

यज्ञ तथा उससे सम्बन्ध रखनेवाली किसी भी बात की पूछताछ के लिए आप नीचे लिखे सज्जनों से स्वयं मिलाकर या पत्र द्वारा जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। प्रत्येक रकम जो पटेगी उसकी रसीद दी जावेगी।

१ श्री पं० लेखराम मालवीय, प्रधान मंत्री, श्रीविष्णु महायज्ञ समिति, पो० रत्नपुर, जिला बिलासपुर सी० पी०।

२ श्री लक्ष्मीनारायण दाऊ, कोषाध्यक्ष, श्रीविष्णु महायज्ञ समिति, पो० रत्नपुर, जिला बिलासपुर।

३ श्री पं० बापू साहब शास्त्री (मालगुजार रत्नपुर) उपाध्यक्ष, श्रीविष्णु महायज्ञ समिति, चांटापारा, बिलासपुर।

---

(३)

संवत् २००० समाप्त होने के उपलक्ष में श्रीविक्रम-महोत्सव।

श्री विष्णु महायज्ञ रत्नपुर।

माघ सुदी २ संवत् २००० (ता: २७-१-४४) से आरम्भ।

स्थानः—श्री रामटेकड़ी की तराई और श्री वृद्धेश्वरनाथ मंदिर के बीच की पवित्र भूमि।

❁ कार्य-क्रम ❁

१. माघ कृष्ण १५ मंगलवार ता. २५-१-४४—पूजनीय आचार्य महोदय तथा अन्य विद्वानों का स्वागत और जुलूस।

२. माघ शुक्ल १ बुधवार ता. २६-१-४४— सर्व प्रायश्चित कर्म।

३. माघ शुक्ल २ गुरुवार ता. २७-१-४४—प्रातःकाल से गणपति पूजनादि पूर्वांग, ब्राह्मण वरण, मण्डप प्रवेश, वास्तु पूजन, मंडप पूजन, अग्नि मथन, अग्नि स्थापन, प्रधान पूजन, ग्रहयोगिनी क्षेत्रपालादि पूजन।

अन्यकार्य-२ बजे दिन से सन्ध्यापर्यन्त प्रसिद्ध विद्वान और वक्ता श्री पं. रामरत्न दीक्षित तिरोड़ा निवासी द्वारा श्रीमद्भागवत माहात्म्य वर्णन।

९ बजे रात्रि से ११ बजे पर्यंत प्रसिद्ध कीर्तनकार श्रीविष्णुबुवा कालविंठ हरिदास (काशी-निवासी) का कीर्तन।

अन्य कार्य—श्रीमद्भागवत नित्यानुसार। १ वजे से ३ वजे दिन—श्री पं. जगदीश प्रसाद शर्मा तिवारी बी. ए एल एल. बी. का गीता पर प्रवचन। ३ वजे से ५ वजे दिन—श्री. पं. सत्यव्रत परमहंसजी का भाषण। ८-१० वजे रात्रि—नित्यानुसार कीर्तन और १०॥ से १ वजे रात्रि-रासलीला।

१०. माघ शुक्ल १० गुरुवार ता. ३-२-४४—श्री विष्णु महायज्ञ नित्यानुसार।

अन्य कार्य—श्रीमद्भागवत समाप्ति। १ से ३ वजे दिन—श्री पं. रामभरोसे शुक्ल का प्रवचन, विषय—"जीवन में धर्म का क्या स्थान है?" ३ से ५ वजे दिन—श्री पं. सत्यव्रत परमहंसजी का भाषण। ८ से १० वजे रात्रि-नित्यानुसार कीर्तन। १०॥ से १ वजे रात्रि-नित्यानुसार रासलीला।

११. माघ शुक्ल ११ शुक्रवार ता. ४-२-४४ प्रात.काल ९ से १० तक श्रीविष्णु महायज्ञ आवाहित देवता पूजन, १०-१०॥ उत्तरांग होम, १२-१ पूर्णाहुति, १—३ सामूहिक उत्तर पूजन।

अन्य कार्य—४-६ वजे संध्या-श्री संत तुकड़ो जी महाराज के भजन। ८-१० वजे रात्रि नित्यानुसार कीर्तन। १०॥ से १ वजे रात्रि—रासलीला।

१२. माघ शुक्ल १२ शनिवार ता. ५-२-४४—प्रातः ८ वजे से यज्ञान्त अवभृत स्नान। गौ—ब्राह्मण भोजन। आशीर्वाद—ग्रहण—समारोह। रंक भोजन की समाप्ति जिसका आरंभ प्रथम दिन से हुआ था।

अन्य कार्य—९ वजे सवेरे से ११ वजे तक—संत तुकड़ो जी का भजन। २ वजे दिन से भिन्न २ विद्वानों के भाषण और विक्रमादित्य तथा उनके चलाये हुए संवत्सर पर एक गवेषणापूर्ण निबंध का पाठ। श्रीविष्णु महायज्ञ—स्थायी—समिति की बैठक। ४ वजे से श्री संत तुकड़ो जी महाराज के भजन। ९ वजे रात्रि से १२ वजे तक रासलीला।

१३. माघ शुक्ल १३ रविवार ता. ६-२-४४—२ से ६ वजे संध्या तक भिन्न २ विद्वानों के भाषण। ८ से १० वजे रात्रि तक नित्यानुसार कीर्तन। १०॥ से १ वजे रात्रि तक रासलीला।

१४-१५. माघ शुक्ल १४-१५ ता: ७।८-२-४४ कीर्तन और रासलीला का कार्यक्रम आवश्यकता पड़ने पर दो दिन और चालू रह सकेगा।

सूचना—(१) दर्शकों और श्रोताओं से प्रार्थना है कि वे शांति और गंभीरता पूर्वक प्रत्येक कार्यक्रम में योग दें।

(२) उपर्युक्त कार्यक्रम में आवश्यकता पड़ने पर परिवर्तन किया जा सकेगा।

४. माघ शुक्ल ३ शुक्रवार ता. २८-१-४४—प्रातःकाल ९ से १० तक आवाहित देवता पूजन, १० से १ तक श्री विष्णु महायज्ञ, १ से ३ तक विश्राम, ३ से ५॥ तक श्री विष्णु महायज्ञ, नीराजन, मन्त्रपुष्पांजलिः।

अन्य कार्य— प्रातःकाल ८ वजे से १२ वजे दोपहर तक श्री पं० रामरत्न दीक्षित द्वारा श्रीमद्भागवत सप्ताह प्रारम्भ, बीच में १० मिनट की विश्रांति। पश्चात् २ बजे दोपहर से ६ बजे सन्ध्या तक फिर कथा प्रसंग, बीच में १० मिनट की विश्रांति। रात्रि ८॥ से १०॥ बजे तक श्रीविष्णु बुवा द्वारा कीर्तन।

५. माघ शुक्ल ४ शनिवार ता. २९-१-४४—श्रीविष्णु महायज्ञ-नित्यानुसार

अन्य कार्य—श्रीमद्भागवत-नित्यानुसार।

[सूचना—सन्ध्या ६ बजे से प्रसिद्ध हिन्दू नेता डा० मुन्जे की अध्यक्षता में प्रांतीय हिन्दू-महासभा का अधिवेशन होगा जिसका विस्तृत कार्यक्रम उसके कार्यकर्ता अलग वितरण करेंगे।]

६. माघ शुक्ल ५ रविवार ता. ३०-१-४४—श्रीविष्णु महायज्ञ-नित्यानुसार। अन्य कार्य—श्रीमद्भागवत—नित्यानुसार।

(सूचना—२ बजे दिन से ६ बजे संध्या तक प्रांतीय हिन्दू-महासभा के अधिवेशन का दूसरा दिन। ९ बजे रात्रि से १ बजे रात्रि तक छत्तीसगढ़ विभाग संगीत-सम्मेलन जिसका विस्तृत कार्यक्रम उसके कार्यकर्ता अलग वितरण करेंगे)

७. माघ शुक्ल ६-७ सोमवार ता. ३१-१-४४-श्रीविष्णु महायज्ञ-नित्यानुसार।

अन्य कार्य-श्रीमद्भागवत-नित्यानुसार।

(सूचना—८ बजे रात्रि से १ बजे रात्रि तक हिन्दी के प्रसिद्ध विद्वान और कवि डा० बल्देवप्रसाद मिश्र, एम. ए. एलएल. बी. की अध्यक्षता में छत्तीसगढ़ विभाग साहित्य और कवि सम्मेलन तथा भारतेन्दु साहित्य-समिति का वार्षिक अधिवेशन होगा जिनका विस्तृत कार्यक्रम उनके कार्यकर्ता अलग वितरण करेंगे)

८. माघ शुक्ल ८ मंगलवार ता. १-२-४४—श्री विष्णु महायज्ञ-नित्यानुसार।

अन्य कार्य—श्रीमद्भागवत—नित्यानुसार। १ बजे दिन से ३ बजे तक—श्री पं. जगदीशप्रसाद शर्मा तिवारी बी. ए. एल एल. बी. का श्री रामचरित मानस पर प्रवचन। ३ बजे से ५ बजे तक प्रसिद्ध धार्मिक वक्ता पं. सत्यव्रत परमहंसजी का भाषण। ८ बजे रात्रि से १० बजे तक—श्री विष्णुबुवा कालविंठ का कीर्तन। १०॥ बजे रात्रि से १ बजे रात तक—रासलीला नरियरा मंडली द्वारा।

९. माघ शुक्ल ९ बुधवार ता. २-२-४४—श्री विष्णु महायज्ञ नित्यानुसार।

मन्ये भागवताः सदा सहृदया निर्दूषणान् वो गुणान्
साक्षाद्वागधिदेवतापि सकलान् वक्तुं न तावत्क्षमा।
अन्येषामिह का कथा खलु नृणां मोहाभिभूतात्मनां
सौभाग्यातिशयेन नः शुभकरं जातं भवद्दर्शनम् ॥३॥

काशीतः समुपेत्य वैदिकजनैरस्मिन्महामण्डपे
श्रीमद्भिर्महती कृपा हि विहिता कर्तुं कृतार्थश्च नः।
श्रीमद्विष्णुमखस्य पूर्तिकरणं संप्रार्थयामो वयं
श्रीविष्णुः सुरसंयुतः प्रकुरुताद्विद्वस्य सन्मंगलम् ॥४॥

भावत्कं भवभूतिभाजनपदं ज्ञात्वैव सर्वेऽधुना
संप्राप्ताः सुधियः सुशिक्षणपराः शास्त्रैकनिष्ठाः किल।
तैः साकं सुविवेकनिर्मलधिया कार्यं च संपूर्यतां
संभारैः समुपस्थितैः सविनयं संप्रार्थयामो वयम् ॥५॥

पञ्चपुष्पाञ्जलिरयं जनसंघसमर्पितः।
सानुग्रहं ग्रहीतव्यः श्रीमद्भिः करुणापरैः ॥६॥

माघकृष्ण ३० भौमे
सं० २००० वि०,
रत्नपुर, विलासपुर, (मध्यप्रदेश)

भावत्कः—
श्रीविष्णुमहायज्ञसमितेः
विद्वत्समितेश्च जनसंघ।

नोट—उपर्युक्त अभिनंदन पत्र आचार्य महोदय को माघ कृष्ण १५ सं० २००० को सादर समर्पण किया गया था।



सर्व साधारण से प्रार्थना है कि इस शुभ अवसर पर रत्नपुर पधारकर और कार्यक्रम में योग देकर पुण्य और लाभ उठावें।

निवेदक—

(पं.) सदाशिवराव कृष्ण शेंडे उपाध्यक्ष
(पं.) सखाराम पंत उपाध्यक्ष
(पं.) बापू साहेब शास्त्री ,,
(सेठ) मोतीचंद साहु ,,
(डाक्टर) इन्द्रजीतसिंह ,,
(श्री) होरीलाल गुप्त (व.),,
(श्र) वेंकटराव शिंदे ,, [सत०-समिति]

(श्रीमती) दुलौरिन कुंवर जमींदारिन सा. अ.
(श्री) ठाकुर रामशरणसिंह सरबराकार प्रति०
(पं.) लेखराम मालवीय मंत्री
(पं.) कपिलनाथ द्विवेदी उपमंत्री
(श्री) शंकर प्रसाद अग्रवाल (वकील) उपमंत्री
(श्री) प्यारेलाल गुप्त उपमंत्री
(श्री) लक्ष्मीनारायण दाऊ कोषाध्यक्ष

---

(४)

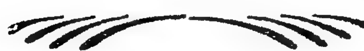
श्रीः

स्वस्ति श्रीकाशिकाराजकीयप्रधानपाठशालायाः
(गवर्नमेन्ट संस्कृत कालेज) वेदविभागे
प्रधानाध्यापकपदमलंकुर्वतां रत्नपुरीय-
श्रीविष्णुमहायज्ञाचार्याणां

पं. श्री भगवत्प्रसादमिश्र वेदाचार्यमहोदयानां

करसरोरुहेषु समर्पितमदः

स्वागताभिनन्दनम्



श्रीमन्तः कमनीयकीर्तिविभवाः सौजन्यधैर्यालयाः
वेदज्ञाननिधानसंग्रहवतां सम्बोधने तत्पराः।
विद्यावारिधिपारगाः सुकविभिर्जेगीयमानोदयाः
मान्या धन्यतमाः प्रसन्नमनसो वःस्वागतं स्वागतम् ॥१॥

एतद्रत्नपुरस्थधार्मिकजनैः प्रेम्णा समारोपिते
धर्मज्ञानसुभक्तिरक्षणपरे यज्ञे महावैष्णवे।
आयाताः खलु वेदबोधनिलया लोकोपकारक्षमाः
स्वस्ति श्रीभगवत्प्रसादसुधियो वः स्वागतं स्वागतम् ॥२॥

मन्ये भागवताः सदा सहृदया निर्दूषणान् वो गुणान्
साक्षाद्वागधिदेवतापि सकलान् वक्तुं न तावत्क्षमा।
अन्येषामिह का कथा खलु नृणां मोहाभिभूतात्मनां
सौभाग्यातिशयेन नः शुभकरं जातं भवद्दर्शनम् ॥३॥

काशीतः समुपेत्य वैदिकजनैरस्मिन्महामण्डपे
श्रीमद्भिर्महती कृपा हि विहिता कर्तुं कृतार्थश्च नः।
श्रीमद्विष्णुमखस्य पूर्तिकरणं संप्रार्थयामो वयं
श्रीविष्णुः सुरसंयुतः प्रकुरुताद्विश्वस्य सन्मंगलम् ॥४॥

भावत्कं भवभूतिभाजनपदं ज्ञात्वैव सर्वेऽधुना
संप्रप्ताः सुधियः सुशिक्षणपराः शास्त्रैकनिष्ठाः किल।
तैः साकं सुविवेकनिर्मलधिया कार्यं च संपूर्यतां
संभारैः समुपस्थितैः सविनयं संप्रार्थयामो वयम् ॥५॥

पञ्चपुष्पाञ्जलिरयं जनसंघसमर्पितः।
सानुग्रहं ग्रहीतव्यः श्रीमद्भिः करुणापरैः ॥६॥

माघकृष्ण ३० भौमे
सं० २००० वि०,
रत्नपुर, विलासपुर, (मध्यप्रदेश)

भावत्कः—
श्रीविष्णुमहायज्ञसमितेः
विद्वत्समितेश्च जनसंघ।

नोट—उपर्युक्त अभिनंदन पत्र आचार्य महोदय को माघ कृष्ण १५ सं० २००० को सादर समर्पण किया गया था।





श्री दुखूराम मालगुजार, गिरधौंन।



श्री मोहनलाल मालगुजार, पेंडरी



पं. गणेशप्रसाद, डंगनिया





रायसाहिब पं. रामसनेही गौरहा, सकरी

(६)

५०) रु. या इससे अधिक दान देने वालों की नामावली



५००) श्रीमती धनराज कुंवर रानी साहिबा कोरबा
४००) श्री पं. गणेश प्रसाद उर्फ बड़कू मालगुजार डंगनिया
३५१) ,, गंगा प्रसाद दाऊ अग्रवाला आरंग
३०१) ,, दीवान लालमनसिंह मातिन
३००) ,, लक्ष्मीनारायण दाऊ रत्नपुर
२२५) दीवान बहादुर दाऊ कल्याणसिंह ताल्लुकदार तरेंगा
२११) श्री पवन कुमार दाऊ अग्रवाला
फर्म-पूरनलाल मदनलाल गोढ़ियारी (रायपुर)
२११) श्रीमती दुलौरिन कुंवर जमींदारिन लाफा
२११) ,, ललाइन बृज कुंवर पेंडरा
२११) श्री लाल अमोलसिंह जमींदार पेंडरा
२११) ,, ठाकुर चित्रभान सिंह सरबराकार जमींदारी चांपा
२११) ,, सुधाराम अजोध्याप्रसाद साहु जूना बिलासपुर
२११) ,, दादू नवलसिंह जमींदार केंदा (कोरी)
२१०) रायसाहब पं. राम सनेही गौरहा (सकरी)
२१०) श्री वेंकटराव जी शिंदे रत्नपुर
२०५) ,, रामनाथ मालजार पेंडरी
२०१) श्रीमती ठकुराइन सूरज कुंवर जमींदारिन करगी खुर्द
२०१) श्री राम कुमार भैरो प्रसाद दाऊ अग्रवाला गोढ़ियारी
२०१) ,, राधेश्याम चोखेलाल दाऊ अग्रवाला आरंग
२०१) ,, रुद्रनाथ दाऊ अग्रवाला आरंग
२०१) विष्णु प्रसाद दाऊ अग्रवाला रायपुर
२०१) श्री सेठ नारायणदास शिवदास सूरज रतन डागा आरंग
२०१) ,, प्रधान भुवनपालसिंह जमीन्दार छुरी
२०१) ,, मोहनलाल कुर्मी मालगुजार पेंडरी
२०१) ,, दुखूराम कुर्मी मालगुजार गिरधौना
२०१) ,, मुरलीधर तिवारी भलपहरी जमींदारी कोरबा
२०१) ,, डाक्टर इन्द्रजीतसिंह अकलतरा
२०१) ,, सेठ बनवारीलाल गोविन्दराम अग्रवाला बिलासपुर
२०१) ,, ,, गुरुमुखराय ,, ,,
२०१) ,, ,, बच्छराज अमोलकचन्द ,, ,,
२०१) ,, ,, राधाकिशन ,,

आय-व्यय का व्यौरा

श्री विष्णु महायज्ञ-समिति रत्नपुर सं. २००० विक्रम

आय		व्यय	
१. चंदा या दान द्वारा—	३५,९६१-)॥।	१. पूजा आर्चा, दान दक्षिणा	१५,४४२=)॥।
		२. अतिथि-सत्कार	५,९९६।।।≡)॥
२. यज्ञ कालीन दान	३,६९७।≡)॥	३. मण्डप-निर्माण, प्रकाश आदि	४,३०६।=)॥
		४. कार्यालय और प्रचार कार्य	१,७२८।।।-)॥
		५. जोड़	२७,४७४।-)॥।
३. सामान बिक्री	३,०८२।।।-)।	६. को-आपरेटिव बैंक में जमा—	१४,५९४=)॥।
		१. अध्यक्ष + कोषाध्यक्ष द्वारा सेविंग एकाउंट में ३०००) करेंट ,, ७०००)	
४. दर्शक निवासस्थानसे	१०॥)		
५. यज्ञ मेला से	१७४।।।-)।	२. श्री प्यारेलाल गुप्त द्वारा ४,५९४=)॥।	
		७. श्री लक्ष्मी नारायण कोषाध्यक्ष के पास नकदी बचत	८५८≡)
६. जोड़	४२,९२६।।≡)॥	८. कुल जोड़	४२,९२६।।≡)॥

नोट— (१) इस आय-व्यय के अतिरिक्त, यज्ञ-काल में और भी चीजें दान में आईं और खर्च हो गईं, जिसका कोई हिसाब नहीं है, जैसे, चांवल ४० बोरा / १०००), दाल १ बोरा / ४०), नमक १ बोरा / १०), घी ३ टीन / १५०), तेल १ टीन / २०), चिवड़ा २ बोरा / ५०), मिट्टीका तेल ३ टीन / १५), यव १५ मन / १२०) और गुड़ २० सेर / ७), = जोड़ १४१२) तथा साग-भाजी, आदि।

(२) रसीद बुक नं. १३/२, १७, २२, ४१, ४९, ५१, १२६, १२८ और १३६ कई तकाजा करनेपर भी लोगों द्वारा वापस नहीं की गई।

(३) श्री विष्णु महायज्ञ स्मारक ग्रंथ की छपाई आदि का खर्च इस में सम्मिलित नहीं है क्योंकि ग्रंथ अभी छप रहा है।

तारीख २४।७।४४ ई
गोविन्द प्रसाद अगरवाला, क्लर्क
पुण्डलीकराव नगरकर ,,
लेखराम मालवीय, मंत्री।
लक्ष्मीनारायणदाऊ, कोषाध्यक्ष हैं

जांचा और सही पाया।

ठा. विजयसिंह बैस,
लाइसेंसड आडीटर।

(६)

५०) रु. या इससे अधिक दान देने वालों की नामावली



५००) श्रीमती धनराज कुंवर रानी साहिबा कोरबा
४००) श्री पं. गणेश प्रसाद उर्फ बड़कु मालगुजार डंगनिया
३५१) ,, गंगा प्रसाद दाऊ अग्रवाला आरंग
३०१) ,, दीवान लालमनसिंह मातिन
३००) ,, लक्ष्मीनारायण दाऊ रत्नपुर
२२५) दीवान बहादुर दाऊ कल्याणसिंह ताहुल्दार तरेंगा
२११) श्री पवन कुमार दाऊ अग्रवाला
फर्म—पूरनलाल मदनलाल गोड़िहारी (रायपुर)
२११) श्रीमती दुलौरिन कुंवर जमींदारिन लाफा
२११) ,, ललाइन बृज कुंवर पेंडरा
२११) श्री लाल अमोलसिंह जमींदार पेंडरा
२११) ,, ठाकुर चित्रभान सिंह सरबराकार जमींदारी चांपा
२११) ,, सुधाराम अजोध्याप्रसाद साहु जूना विलासपुर
२११) ,, दादू नवलसिंह जमींदार केंदा (कोरी)
२१०) रायसाहब पं. राम सनेही गौरहा (सकरी)
२१०) श्री वेंकटराव जी शिंदे रत्नपुर
२०५) ,, रामनाथ मालजार पेंडरी
२०१) श्रीमती ठकुराइन सूरज कुंवर जमींदारिन करगी खुर्द
२०१) श्री राम कुमार भैरो प्रसाद दाऊ अग्रवाला गोड़िहारी
२०१) ,, राधेश्याम चोखेलाल दाऊ अग्रवाला आरंग
२०१) ,, रुद्रनाथ दाऊ अग्रवाला आरंग
२०१) विष्णु प्रसाद दाऊ अग्रवाला रायपुर
२०१) श्री सेठ नारायणदास शिवदास सूरज रतन डागा आरंग
२०१) ,, प्रधान भुवनपालसिंह जमीन्दार छूरी
२०१) ,, मोहनलाल कुर्मी मालगुजार पेंडरी
२०१) ,, दुखूराम कुर्मी मालगुजार गिरधौना
२०१) ,, मुरलीधर तिवारी अलपहरी जमींदारी कोरबा
२०१) ,, डाक्टर इन्द्रजीतसिंह अकलतरा
२०१) ,, सेठ बनवारीलाल गोविन्दराम अग्रवाला बिलासपुर
२०१) ,, ,, गुरुमुखराय ,, ,,
२०१) ,, ,, बच्छराज अमोलकचन्द ,, ,,
२०१) ,, ,, राधाकिशन ,,

५१) श्रीमती दिवानिन रूपकुंवर पेंडरा
५१) ,, रुखमिन ठकुराइन रत्नपुर
५१) श्री कुंवर सत्यपालसिंह छूरी
५१) ,, रतनलाल साव रत्नपुर
५१) ,, दीवान रामशरणसिंह लाफा
५१) ,, ठाकुर मंगल भवनसिंह मालगुजार गेवरा
५१) ,, अयोध्याप्रसाद मालगुजार बसहा
५१) ,, जगन्नाथप्रसाद मालगुजार खैरा (चपोरा)
५१) ,, भागवतप्रसाद मालगुजार नवागांव (महुदा)
५१) ,, तपस्वीजी महाराज वैष्णव चांपा
५१) ,, भगत मालगुजार लेंदा
५१) ,, दयाभाई पटेल बिलासपुर
५१) ,, काशीरामजी ठेकेदार बिलासपुर
५१) ,, सेठ नानगराम मुरलीधर बिलासपुर
५१) ,, पं. विश्वनाथ नर्मदाप्रसाद वाजपेयी बिलासपुर
५१) ,, सेठ लक्ष्मीनारायण नत्थानी बिलासपुर
५१) ,, सेठ अंतूलाल रामेश्वर बिलासपुर
५१) ,, शारदाचरण प्रोप्राइटर मनोहर टाकीज बिलासपुर
५१) ,, पं. मुन्नूलाल नर्मदाप्रसाद बिलासपुर
५१) ,, ठाकुर अर्जुनसिंह पर्सनल असिस्टंट, रायगढ़ नरेश
५१) ,, सेठ पालूरामजी रायगढ़
५१) ,, रामनिहाल साव आरंग
५१) ,, झब्बूलाल दाऊ अग्रवाला आरंग
५१) ,, सेठ बाघमल छबिलालजी गोंड़िहारी
५१) ,, ,, रामकिसन रामसहाय ,,
५१) ,, महंत दूधाहारी-मठ रायपुर
५१) ,, सेठ वनमालीलाल लायकराम गौरेला
५१) ,, ,, मानकराम महादेव गौरेला
५१) ,, ,, दुलीचंद लक्ष्मीनारायण ,,
५१) ,, मेसर्स मुसद्दीलाल छाजूराम ,,
५१) ,, परम हंसानंद शिक्षा मंदिर गोरखपुर
मा० पं० सत्यव्रत परमहंस
५१) ,, पं. चन्द्रिकाप्रसाद मालगुजार बामहू
५१) ,, पं. माधोराव मालगुजार सलखा
५१) श्री मानमोक्ष मदनसिंह पंतोरा
५१) ,, सालिकराम नत्थानी भाटापारा
५१) ,, बैजनाथ प्रसाद पोद्दार माल. बेलतरा
५१) ,, पं. अवधराम मालगुजार मोढ़े

२०१) श्री सेठ मूलजी सिक्का विलासपुर
२०१) ,, गेन्दराम साव जूना विलासपुर
२०१) ,, भगतराम मालगुजार पद्मपुर
२०१) ,, सेठ गोविन्दराम शिवनारायण रायगढ़
२०१) ,, रायबहादुर धनराज बासल विलासपुर
१४०) ,, पं. केदारनाथ मालगुजार डंगनिया
१०९) ,, ,, कैलाशचन्द्र शुक्ल मालगुजार भरारी
१०१) श्रीमती रानी मानकुमारी देवी पंडरिया
१०१) श्री त्रिलोकीनाथ दाऊ अग्रवाला आरंग
१०१) ,, शम्भूदयाल दाऊ अग्रवाला ,,
१०१) ,, जगमोहनलाल रामानन्दलाल साव आरंग
१०१) ,, सेठ गणपतलाल पालचन्द ,,
१०१) ,, ,, कस्तूरचन्द सीताराम सदानी ,,
१०१) ,, ,, डुलीचंद मांगीलाल गोड़िहारी
१०१) ,, ,, शिवबक्स राय विलासपुर
१०१) ,, ,, दीनदयाल शुकदेवप्रसाद विलासपुर
१०१) ,, ,, ठाकुर महिपालसिंह छूरी
१०१) ,, पेंडरा सप्लाई कंपनी गौरेला
१०१) ,, जगतराम मालगुजार असमेना
१०१) ,, रतीराम मालगुजार केंवटा डबरी
१०१) ,, पं. विश्राम प्रसाद मालगुजार सैदा
१०१) ,, पं. लक्ष्मणप्रसाद गौरहा सकरी
१०१) ,, शिवदयाल साव वानी सेकर
१०१) ,, गणेशसिंह मालगुजार तेंदूभाठा
१०१) ,, पं. पुरंजयप्रसाद रतनपुर
१०१) ,, सेठ लक्ष्मीचंद ,,
१०१) ,, खुशालीराम मंडल नवापारा रतनपुर
१००) ,, पं. गंगाराम डंगनिया
१००) ,, शोभाराम मालगुजार सोंठी
९८) ,, पीलाराम साव रतनपुर
७६) ,, आतमाराम साव शिवरीनारायण
७२) ,, सुंदरलाल मालगुजार रांक
६१) ,, सेठ ईश्वरमल भगवानदास गोड़िहारी
६०) ,, पं. रूपचंद मालगुजार सीपत
५५) ,, लक्ष्मणप्रसाद दाऊ अग्रवाला आरंग
५३) ,, श्रीमती रानी साहिबा जमींदारी पेंडरा
५२।) ,, श्रीमान चेतनप्रसाद साव वानी गनियारी

नोट—यह इसलिए चाहिए कि कई ब्राह्मण वरण होने के पश्चात् कहने लगते हैं कि हमें अमुक कार्य दिया जायगा तभी हम करेंगे। उन्हें यह बात वरण होने के लिए पूछताछ करते समय स्पष्ट कर देना चाहिए।

ख—मैं ठीक समयपर यज्ञ-मण्डप में उपस्थित होऊंगा तथा नियमानुसार वहां से उठूंगा।

नोट—कई लोग यज्ञ-आरंभ होने पर यज्ञ शाला में पहुंचते देखे गये हैं।

ग—मैं अपने साथ आवश्यकता हुई तो केवल १ अनुचर लाऊंगा।

नोट—अनुभव है कि कई वरणी ब्राम्हण अपने साथ अपने अनेक संबंधियों या बालकों को ले आते हैं और उनका बहुतसा समय उनकी देख-रेख और खिलाने पिलाने में व्यतीत हो जाता है।

घ—वरण होने के पश्चात् मैं अपना पद दूसरों को देने का प्रयत्न नहीं करूंगा।

नोट—देखने में आया है कि कुछ योग्य ब्राम्हण वरण होनेके पश्चात् अशक्तता या कोई दूसरा कारण बताकर अपने सगे-संबंधियों को अपना प्रतिनिधि बनाकर बिठाने का प्रयत्न करते हैं जो अत्यंत अनुचित है।

(६) पूजा-सामग्री-भंडार सर्वथा अलग रहे तथा आचार्य और वरणी ब्राम्हणों के निवास और भोजन का प्रबंध और उनका भंडार बिलकुल अलग रहे। उनके लिए मुख्य-भंडार से कोई सामान यज्ञ-काल में लाने की आवश्यकता यथासंभव न पड़े।

(७) रसीद-बहियां २५ पन्नों से अधिक की न हों। प्रत्येक पन्ने में रसीद बही का बुक नंबर अलग रहे और रसीद नंबर अलग रहे। दान एकत्र करनेवाले विश्वस्त व्यक्ति नियुक्त किये जांय और रसीद बही देते समय उनसे हस्ताक्षर लिये जांय।

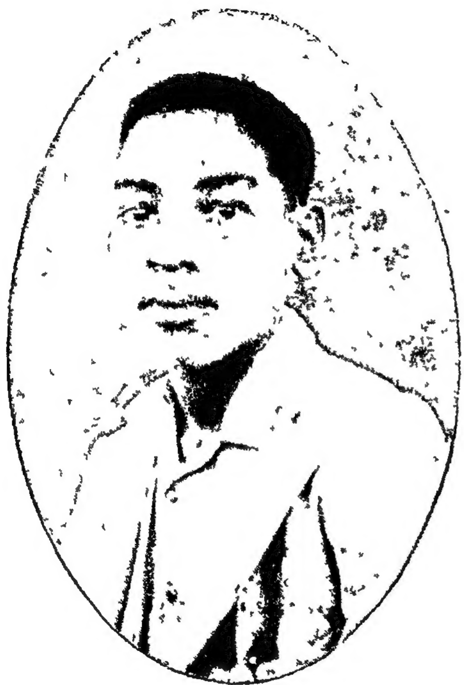
(८) प्रत्येक आयोजन के प्रबंध का बटवारा टुकड़े टुकड़े करके किया जाय। उनके कर्तव्य ठीक २ समझाये जांय। एक व्यक्ति के ऊपर एक जिम्मेदारी देकर फिर दूसरी बात की जिम्मेदारी न लादी जाय।

(९) बर्तनों का खूब प्रबंध रहे। कम पड़े तो बर्तन खरीद लिये जांय और यज्ञ-समिति का उनपर नाम खुदा दिया जाय। पश्चात् वे बेंच दिये जांय।

(१०) प्रत्येक वरणी-ब्राम्हण तथा अतिथियों से निवेदन कर दिया जाय और कार्य क्रम में भी छपा दिया जाय कि जो अलग रसोई का प्रबंध कराना चाहेंगे वे अपने साथ भोजन बनाने का बर्तन अवश्य लेते आने की कृपा करें।

(११) यज्ञ आरंभ होने पर सामग्री का दान स्वीकृत करने के लिए अलग प्रबंध किया जाय। मुख्य भंडार में इन चीजों के जमा कराते रहने से कभी २ वे रजि० में दर्ज नहीं होने पाते और कई प्रकार की गड़बड़ी पैदा हो जाती है।

(१२) स्वयं-सेवकों को कम से कम १ सप्ताह तक उनके कर्तव्य के संबंध में शिक्षा दी जाय।



श्री चोखेलाल (भाई–रा
दाऊ अग्रवाला, आर



श्र र दाऊ अग्रवारा, गोड़िहारी

प्रार्थना



(अनुवादक—काव्य विनोद पं० लोचनप्रसाद पाण्डेय)

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः॥ (ऋग्वेद)

हे देवेश्वर ! कर्ण से हम सुनें कल्याण-गाथा सदा,
प्यारे बान्धव देशके कृषक ये पावें सभी सम्पदा ॥
वार्ता-अप्रिय रोग शोक भय की—अन्याय की देश में—
कोई भी न सुनें कहीं पर कभी स्वामिन ! किसी वेश में ॥
देखें लोग समस्त नेत्रयुग से सर्वत्र ही भद्र ही,
आर्यों में सुख शांति ही लख पड़े, आरोग्य आनन्द ही ॥
अंगों में बल हो पवित्र जिससे हों वीर्यशाली, श्रमी,
पूजें देव ! सभक्ति त्वत्पद, बनें निर्भीक औ संयमी ॥
कीजे यों करुणा कृपालु हम पै, स्वातन्त्र्यकी वायुमें,
बीते जीवन देशबन्धुगणका सोत्साह पूर्णायु में ॥



(१३) आय-व्यय का हिसाब, नौकरों की नियुक्ति और प्रत्येक प्रकार का प्रबंध बड़ी योग्यतापूर्वक किया जाय और प्रत्येक की जिम्मेदारी अलग अलग रक्खी जाय।

(१४) कार्य-कर्ताओं तथा स्वयं सेवकों से शपथ लेनेका नमूनाः—

प्रतिज्ञा-पत्र

मैं . . . उस परमात्मा के, जिसने इस सृष्टि की रचना की है और जिससे कोई बात छिपी नहीं रह सकती, चरणों में सिर नवाकर इस बात की प्रतिज्ञा करता हूं कि मैं इस श्री . . . *यज्ञ में किसी भी पदपर चुने जाने पर अपने जिम्मे का काम तन-मन से करूंगा,* कभी किसी बात का अभिमान नहीं करूंगा और काम करने से जी नहीं चुराऊंगा। यज्ञ के एक एक पैसे का हिसाब रक्खूंगा। यदि यज्ञ-सामग्री या उसके द्रव्यका दुरुपयोग करूं या निज स्वार्थ में लगाऊं तो मुझसा पापी इस पृथ्वी में दूसरा न होगा और मैं इसके लिए दण्ड पाने का अधिकारी होऊंगा।

शुभमिति..

हस्ताक्षर..

